

के संकलन में मिथजी ने जो शैली अपनाई उसे प्रारम्भिक घासोचकों ने हमन घोर बर्ताव का अनुकरण सिद्ध करने का प्रयास किया। अपने नाटकों की भूमिका में मिथजी ने जो संकेत प्रस्तुत किये वे उनकी घोर ध्यान न देकर घासोचक बिनाह प्रेम का घोर यौन आकर्षण के बराबर पर मिथजी की नाट्य कृतियों का मुस्यांकन करते समय इन पर विदेशी प्रभाव की छाया सोचने में व्यस्त हो गये। इस प्रयास से मिथजी की प्रतिभा को स्वीकृति मिली या नहीं किन्तु उनकी स्वाति एक साथ हिन्दी-जगत् में व्याप्त हो गई। वे नाट्यकारों में सुमान्तरकारी लेखक मान लिये गये और उनके नाटकों की बर्बादनेक बर्षों और घनेक संदर्भों में होने लगी। इसमें सन्देह नहीं कि हमन घोर हा में अपने नाटकों में सामयिक समस्याओं को ही आधार-भित्ति बनाया या, मिथजी के सामाजिक नाटकों में भी समस्याओं की उद्घापोह ही अधिक हुईं अतः उन्हें भी समस्या नाटकों में परिचित कर लिया गया। यद्यपि मिथजी ने अपने सामाजिक नाटकों को समस्या तक सीमित नहीं माना। समस्या को व्यापक दृष्टि से देखना-परखना उचित मानकर पारचाय परिमापा के अनुसार अपने नाटकों को समस्यामूलक मानने से उन्होंने प्रयास्यान भी किया। कदाचित् इसी लिए अपने घासोचकों के मन्त्रव्यों से वे पूरी तरह समझीठा न कर सके। मुझे तो यह भी लगता है कि इसीलिए उन्होंने अपने परबर्ती नाटकों की विषय परिधि को व्यापक बनाने के लिए इतिहास-पुराण और संस्कृति से विविध कथानकों का अयन करना आवश्यक समझा।

मैं मिथजी की नाट्य कृतियों को मौलिक प्रतिभा-प्रभुत मानकर मस्यांकन करने का आग्रह रखता हूँ। किसी विदेशी प्रभाव से उन्हें प्रमिभूत या आनन्त जानकर मैं यह स्वीकार नहीं करता कि उनके प्रारम्भिक सामाजिक नाटकों में किसी पारचाय सेसक का अनुकरण है। हाँ युग-विधि की परिस्थितियों को समान रूप से ग्रहण करने में यदि कहीं साम्य समित हो तो इसे अनुकरण ही क्यों समझा जाय।

मिथजी ने जिन समय नाटक लिखता प्रारम्भ किया उस समय हिन्दी में छायावाद-मुप की भुम थी। छायावाद के संसव नाम में मिथजी स्वयं उससे प्रभावित थे और 'मन्त्रार्थगत्' काव्य जिसकर उन्होंने अपनी भावकता का परिचय दिया या। किन्तु मिथजी ने सीधे ही उस सज्ज भावकता से अपना पिह छुड़ाकर बुद्धि-बलिक-मन्त्र सामाजिक धरागत को ग्रहण कर लिया। 'संघासी' जैसे गुट एवं प्रांजल नाटक की रचना उन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन में ही की थी। जिन छह सामाजिक नाटकों के कारण मिथजी की हिन्दी-जगत् में स्वाति मिली है वे

सभी तीस बरों की आयु तक लिखे गये हैं। सामाजिक नाटकों के बाव सार्वीरिक प्रस्थापत्य तथा पारिवारिक संसर्गों के कारण सबमन बारह बरों तक उनकी लेखनी विधाम करती रही। इस विधाम के बाव उनकी लेखनपारा ही परिवर्तित हो गई। सामाजिक समस्याओं के स्थान पर सांस्कृतिक पुनरुत्थान की प्रेरणा से उन्होंने नाटक रचना प्रारम्भ की। इस नाटकों में कुछ चरित प्रधान नाटक भी हैं जिनमें लेखक ने भारतीय महापुरुषों की गौरव-गरिमा को कलात्मक सीढ़ी से चढ़ावा दिया है। भारतीय इतिहास तथा पुराण के उज्ज्वल पात्रों पर भी मिथजी की दृष्टि आई और अनेक सांस्कृतिक प्रसंगों को उन्होंने इन नाटकों में समेटने का प्रयास किया।

आधुनिक हिन्दी नाटककारों पर पाश्चात्य विचारधारा या पश्चात्य जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव सहित कर मिथजी ने अपने परबर्ती नाटकों में सुविचारित रूप में भारतीय जीवन-दृष्टि को प्रमुखता देने का भावपूर्ण प्रयत्न किया है। उनकी मान्यता है कि स्वतन्त्र राष्ट्र के साहित्यकारों को अपनी परम्पराओं में आस्था रखकर ही साहित्य रचने करना चाहिए। अब समय आ गया है कि हम चेतों और हाथ ठाकर उन सम्प्रदाय के ठेकेदारों से कहें कि नहीं, हमें अब अपनी सम्प्रदाय और संस्कृति की आवश्यकता नहीं है। पौष्टिक जीवन के निर्वाह के लिए विहाल में हम दूसरों से भते ही सीधे परन्तु साहित्य कला और चिन्तन में, अब उनका अविच्छिन्न उठना हमारे लिए और सम्मत् की बात होगी। हम जानते हैं कि कला का प्रधान धर्म—मृत्यु से रक्षा है। मृत्यु-भूता नहीं। हमारे लिए धृष्टि के मूस में ही धान्य और अस्थान समिश्रित हैं। धान्य के उद्रेक में ही धृष्टि का कोई भी कार्य संभव है। हमारी अपनी ओर यूरोप की संस्कृति की बही भेद-देखा है। एक ओर जीवन का लक्ष्य प्रयोजन और आभार धान्य है, दूसरी ओर यही सब विषाद धृष्टि और निराशा। वही जीवन-दर्शन में इतना मौलिक भेद है वही कला और संस्कृति में भेद होना स्वाभाविक ही है।

मिथजी व्यक्तिवादी विचारधारा को साहित्य में स्थान देने का बड़े तीव्र स्वर में विरोध करते हैं। उनके नाटकों में भी व्यक्तिवादी धर्म के समर्थक पात्र इठीलिए सम्प्रदाय का नाम प्राप्त नहीं कर पाते निवेद्य की तो बात ही करना व्यर्थ है। मिथजी की धारणा बग चुकी है कि साहित्य में जब तक व्यक्तित्व का मोह नहीं छूटता जब तक मन की भासघाई और कूड़ाई ही लेखक को प्रमित करती रहेगी। धर्म और काम की समस्याओं के समाधान के लिए आज हम मानस और पदार्थ की ओर बड़ी पाषाणरी दृष्टि से निहारते हैं और उनके उत्पन्न रचन के सहारे निष्कर्ष निकालने की चेष्टा करते हैं। इस उस समय ब्रूम जाते

है कि भारतीय साहित्य में धर्म और धर्म की उत्पत्ति की व्याख्या अत्यन्त धीरे-धीरे उपनिषद् काल से ही बनी आ रही है। बृहदारण्यक का उद्धरण तो स्वयं प्राश्न में भी अपनी पुस्तक में इसी संदर्भ में उद्धृत किया है। मिश्रजी के मत में धर्म संघर्ष और इन्द्रात्मक भौतिकवाद हमारी संस्कृति के लिए उपजीव्य नहीं हो सकते। इन एकामी बाधों के सहारे हम किसी शास्त्र समस्या का न तो हम निकाल सकते हैं और न साहित्य में किसी उपलब्धि की प्राप्ति कर सकते हैं। मिश्रजी परम्परा शास्त्र और शास्त्र को छोड़ने की बात करने वालों को चुनौती देकर भारतीय संस्कृति धर्म और चिन्तन की गौरव-गरिमा को समझने का मार्ग व्यक्त करते हैं।

मिश्रजी की साहित्य विषयक मायताओं में परम्परा का मोह देखकर भावुक युग के बुद्धिवादी पाठकों को कुछ भ्रम हो सकता है किन्तु उन्हीं के सामाजिक नाटकों में इस भ्रम का समाधान भी निहित है। विवेक अनुभूति और विचार का भरपूर बल सुदृढ़ होता है तब परम्परा की जड़ता से छुटकारा प्राप्त नहीं कर पाती—मिश्रजी की नाट्य रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। मिश्रजी की नाट्य कृतियों के अनुशीलन से हम सहज ही में उस परिणाम पर पहुँचते हैं कि निस्सन्देह मिश्रजी प्राधुनिक हिन्दी नाट्य के जन्माधारों में अग्रगण्य हैं जिनकी प्रतिमा में हिन्दी नाट्य में युगान्तर उत्पन्न किया है। मिश्रजी के कई नाटक विभिन्न विश्वविद्यालयों में पाठ्य ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हैं। उनकी अभिनयकला कला तथा नाट्य विज्ञान पर समीक्षकों का ध्यान गया है और अभी तक उनके नाटकों के विषय में जो कुछ लिखा गया है वह उनके कृतित्व का समर्थक है। अधिकांश आलोचकों ने उन्हें हिन्दी का मौलिक एवं युग प्रवर्तक नाटककार माना है। किन्तु अभी तक उनकी कृतियों का सर्वांगीण अध्ययन-अनुशीलन प्रस्तुत नहीं हुआ। प्रासंगिक रूप से उनके शिल्प आदि के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है वह उनके कृतित्व को बेहतर हुए व्यपगत है। मूक हार्दिक संतोष है श्री भारतभूषण ने इस विद्या में बड़े अध्ययन एवं अध्ययनपूषक मिश्रजी के नाटकों पर अपने सन्तुष्ट प्रबन्ध में विचार किया है। मैं इन प्रबंध को मूल्यांकन की दृष्टि से पूर्ण कहने की धृष्टता तो नहीं करता किन्तु विवेचन-विरसेषण का एक शुरुआत प्रयास इसे प्रशंस्य मानता हूँ।

श्री भारतभूषण की विनयन-व्यक्ति कड़ी तटस्थ है। मिश्रजी के नाटकों से प्रेमभूत होकर प्रशंसा करना या मद्गम हो सकता उनके स्वभाव में नहीं है। इति कालराज में सहृदय वीरकाल की खोज करने में वे कुशल हैं। अनेक स्थलों पर उन्होंने बड़े विभीक भाव से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए मिश्रजी

[ ८ ]

की मान्यताओं का खण्डन किया है। उनके खण्डन की भित्ति तर्क प्रमाण और विवेक है। मुझे हर्ष है कि श्री भारतभूषण के इस नव प्रबंध से अध्येताओं का ध्यान एक बार फिर मिथजी के नाट्य साहित्य के मूल्यांकन की ओर जायगा और श्री भारतभूषण अपने नये प्रबंध में विस्तारपूर्वक मिथजी की समस्त नाट्य कृतियों का विशद रूप से मूल्यांकन प्रस्तुत कर सकेंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय,

दिल्ली।

१२.१०.६४

विजयेन्द्र स्नातक



# श्रद्धेय मिश्रजी का शुभाशीष

सामेसत मार्ग प्रमाण

३०-२ १४

प्रियवर

मेरे सामाजिक नाटकों की सान्त्वना विषयक आपकी रचना छप चुकी है और यह एक प्रकाशित न होनी अब तक मरे हो सब मंगल कामना के रूप में उसमें न आ जायें। ऐसा निर्णय आप न करें और अपनी यह कृति पाठकों, छात्रों भाषायों के हाथों में जाने दें। उनसे जिसनी यंगल कामना मिले सरस्वती के प्रसार स्वल्प हित युक्तकर ग्रहण करें।

भारतीय परम्परा में कवि व्यक्ति नहीं बिभाता है। यह सत्य पिछली भाषी धरती में इस देश के बड़े से बड़े साहित्यकार मूढ चुके हैं। पश्चिम का कवि पिछले तीन सहस्र वर्षों से केवल कवि रहा है और बराबर अपने व्यक्तित्व का साज डिबार, प्रचार और प्रसार करता रहा है। विदेशी साहित्य के प्रभाव में इस देश का कवि या साहित्यकार भी अब केवल व्यक्ति है और बही सब कर रहा है जो विदेशी साहित्यकार करते आते हैं।

अब बाँधी की हत्या होती है हमारे कवि धीठों की पड़ी सपा बैठे हैं। अब चीन आक्रमण कर रहा है इनका समूह देश को सेकनी-बाग देने का संकल्प लेता है। कोई नहीं सोचता बाँधी की हत्या में इनकी बाँधी में इतना वेन कैसे आ गया? तब की मृत्यु किसे को नाचने वाले देवी। चीन के आक्रमण के पूर्व इनकी सेकनी किसके हित में बसती रही? यह सब कार्य हमारे साहित्यकार अपने व्यक्तित्व के प्रचार प्रसार और राजतन्त्र से लाभ छठने के विचार या सोम में करते रहे हैं। इनके साहित्य और जीवन के मूल्यों में भारतीयता का सर्वथा खोप और विदेशी व्यक्तिवाद की अपासना है। देश के इस बुद्धि में हमारे साठक और साहित्यकार एक स्वर में व्यक्तिवाद की अवबोधकर व्यक्ति की पूजा-अर्चा में लोक का शय कर रहे हैं। व्यक्ति प्रधान हैं लोक नहीं। व्यक्ति-हित प्रधान है लोकहित नहीं। व्यक्ति लोक काल का धर्म नहीं लोक से निम्न सससे बहुत ऊपर है। प्रविष्टा की ऐसी भँवर में जिस जाति के साठक और साहित्यकार एक साथ पड़ गये हैं उस जाति की अवबोधित स्वर्ण तिष्ठ है।



## श्रद्धेय मिश्रजी का शुभाशीष

सम्मेतन मार्ग प्रयाग

३०-२-१४

प्रियवर

मेरे सामाजिक मादकों की धासोचना विषयक आपकी रचना छप चुकी है और वह तब तक प्रकाशित न होनी जब तक मेरे वो शुभ्य भंगल कामना के रूप में उसमें न था आवे। ऐसा निर्णय आप न करें और अपनी यह कृति पाठकों, छात्रों, भाषाओं के हाथों में जाने दें। उनसे बिठवी भंगल कामना मिले सरस्वती के प्रसाद स्वल्प विर भुक्ताकर ग्रहण करें।

भारतीय परम्परा में कवि व्यक्ति नहीं बिभाता है। वह सत्य पिछली घापी घाटी में इस देश के बड़े से बड़े साहित्यकार भुक्त भुक्ते हैं। पश्चिम का कवि पिछले चील सहस्र वर्षों से केवल कवि रहा है और बराबर अपने व्यक्तित्व का साज सिनाद, प्रचार और प्रसार करता रहा है। बिदेसी साहित्य क प्रभाव में इस देश का कवि या साहित्यकार भी अब केवल व्यक्ति है और नहीं सब कर रहा है जो बिदेसी साहित्यकार करते आते हैं।

जब मांसी की हत्या होती है हमारे कवि नीतों की मन्त्री समा देते हैं। जब चील प्राकल्प करता है इनका समूह देश को लेखनी-बाम देने का संकल्प लेता है। कोई नहीं सोचता यात्री की हत्या में इनकी बापी में इतना बेप कैसे आ गया? प्रिय की मृत्यु किस को नाचने पामे हैयी। चील के प्राकल्प के पूर्व इनकी लेखनी कितने हित में बसती रही? यह सब कार्य हमारे साहित्यकार देने व्यक्तित्व क प्रचार-प्रसार और राजतल से लाभ उठाने के बिचार या सोच में करते रहे हैं। इनके साहित्य और जीवन के मूर्खों में भारतीयता का उदया लगे और बिदेसी व्यक्तिवाद की उपासना है। देश के इस भुक्ति में हमारे इनके और साहित्यकार एक स्तर में व्यक्तिवाद की जय गोलकर व्यक्ति की उदया लगे में लोक का लम कर रहे हैं। व्यक्ति प्रधान है लोक नहीं। व्यक्ति उदया लगे है लोकहित नहीं। व्यक्ति लोक का लम ना भय नहीं बोल है प्रिय हस्ते हस्ते उदया लगे है। समिधा की ऐसी मंजर में प्रिय बापि के हस्ते हस्ते उदया लगे एक लाभ पद पय है उक्त बापि की धरापति स्वन्द है।



घापने मेरे सामाजिक नाटकों की प्रशंसा की है । जो नाटक मेरे कवि-कर्म के भीतर घाते हैं । घापने कवि-कर्म के विषय में घापने मुंह खुल भी कहना केवल कुबधि है । धातम प्रचार व्यक्ति का काम है जो बिदेसी साहित्य के प्रमाण के पूर्व किसी कवि ने नहीं किया । साहित्य सकारणी के उद्घाटन भाषण में भी राबाकुप्यन् ने जिस कालिदास को भारत का प्रतिनिधि कवि माना था उस कालिदास ने घापग्रहपूर्वक निषर्च—घर्ष घर्ष काम के योग के लिए ही कवि-कर्म किया था जीवन की प्रशंसा के लिए नहीं और इसी घर्ष में वे व्यक्ति नहीं बिघाटा है । उनके साहित्य में उनके व्यक्तित्व का नहीं उनकी सृष्टि का विस्तार है । दूसरी ओर जिस रोससपियर को उसी भाषण ने इंग्लैण्ड का प्रतिनिधि कवि कहा था जिसकी चार सौ बी जयन्ती पिछले दिनों इस देश में भी धूमधाम से मनायी गयी है वह केवल व्यक्ति है जिसके साहित्य में हत्या धातमहत्या माना बिधि दाह्य व्यापार ओत धाक धाक ओर दहली बाति के प्रति क्रुसित प्रचार व्यक्तित्व का प्रशंसापत्र है जिसकी जयन्ती इस देश में मनाकर कालिदास के कवि-कर्म की कपात किया की जा रही है ।

घापकी पुस्तक पिलन पर बैजूंगा घात ठक मैं कितने पानी में रहा हूँ । कालिदास का नाम जबर भी मैं कालिदास के कितने निकट और रोससपियर के कितने दूर हूँ । मेरी किञ्चित् सफ़लता की कसौटी भी यही होगी । हिन्दी साहित्य के इतिहास में जन्मतम परीधामों के वाद्ययम में मेरे ये नाटक समरदा-नाटक कहे गये हैं । घमिस्तान राकुम्तसम् से बढ़कर सिद्ध समरदा-नाटक इस परती पर दूसरा नहीं घापा । यह मेरा निश्चित मत है । पुस्तक में उपयोग के लिए जो घण्ड जो घाप चाहते हैं इस रूप में स्वीकार करें । चाहें तो इसी का सत रूप में उपयोग करें । बिचारक इस पर भी बिचार कर लेंगे ।

शति धुमम्

स्नेही

महमीनारायण मिथ

प्राक्कथन

पारचाय माध्यमों के तुलनात्मक संदर्भ में हिन्दी नाटक की प्रकृति एवं स्वरूप का सैद्धान्तिक विश्लेषण किया गया है। इसमें नाटक के प्रत्येक तत्त्व की आधारभूत विशेषताओं को भी पृथक् रूप से स्पष्ट करने का प्रयास है। इसके अतिरिक्त उद्देश्य मेर के कारण नाट्यविशेष में होने वाले परिवर्तनों को भी लक्षित किया गया है। द्वितीय भाग में समस्या-नाटक की मौलिक आधारभूत विशेषताओं का विश्लेषण है। इसके अतिरिक्त समस्या नाटक के विशेष नियमों के विश्लेषण में अन्य नाटकों से उसका मेर स्पष्ट करते हुए समस्या नाटक की व्यावर्तक विशेषताओं को उद्घाटित करने का प्रयास रहा है। तृतीय भाग में नाटकों के वर्गीकरण का आधार एवं लक्ष्यव्यक्त कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए विश्व की सम्पूर्ण नाटकों का हिन्द के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। इसके अन्तर्गत केवल सामाजिक नाटकों का चिन्तन-संकटन के आधार पर वर्गीकरण करते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयत्न है कि समुक्त नाटक को समुक्त वर्ग में ही रखने के क्या विरोध कारण हैं।

तृतीय अध्याय ही इस प्रबन्ध का प्रमुख अध्याय है। इसमें प्रत्येक वर्ग के प्रत्येक नाटक की पृथक्-पृथक् समीक्षा की गई है। प्रत्येक नाटक के वस्तु-वस्तु में यह स्पष्ट करने का प्रयास रहा है कि नाटककार इस नाटक में क्या कहना चाहता है? उसने उसे किस माध्यम एवं किस शैली से कहा है? उसमें वह कहाँ तक सफल हुआ है? और उसका सामाजिक मूल्य क्या है? चिन्तन-वस्तु में कथानक विन्यास चरित्र चित्रण और संवाद संयोजन में नाटककार की कुशलता की पारस्परिक दृष्टि से समीक्षा की गई है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रबन्ध में नाटकों के वर्गीकरण के पश्चात् भी प्रत्येक वर्ग की सामान्य प्रवृत्तियों के उल्लेख करने की शैली का अनुसरण नहीं किया गया। इसका मुख्य कारण यह है कि इन नाटकों के वस्तु तत्त्व के विषय में विभिन्न विरोधी मत पाए जाते हैं और ऐसी वस्तु में प्रत्येक नाटक का पृथक् पृथक् विश्लेषण न करने पर मेरा मत भी एक मत मात्र होकर रह जाता। और यदि विभिन्न विरोधी मतों का विश्लेषण एवं निराकरण करने का प्रयास किया जाता तो प्रतिपक्ष विस्तार के कारण इस समुक्त प्रबन्ध का स्वरूप ही शायद बदल जाता। अतः विरोधी मतों की दृष्टि में रखते हुए सम्पूर्ण कृतिकों को विभिन्न दृष्टियों से घनाकृत कर देना आज ही अत्यन्त सम्भव नहीं है।

अन्तिम अध्याय उपसंहार में लक्ष्मीनारायण मुकुन्दजी और यमराजजी नाटक-पारा के अन्तर्ग में विश्व की नाटकों की प्रेरणा की मौलिकता को स्पष्ट करते हुए उन पर उपलब्धित इष्टतम और वाक्यानुक्रम के आरोप का विश्लेषण

करने का प्रयत्न किया गया है। इसी अध्याय में उनके नाटकों की समीक्षा का सार भी संक्षेप में प्रस्तुत कर दिया गया है। हिन्दी नाटक में उनके योगदान की बर्चा करते हुए वस्तु पक्ष एवं विस्तृत पक्ष के साथ-साथ उनके नवीन प्रयोगों की उपादेयता की भी बर्चा की गई है। परबर्ती नाटकों को प्रति देने की दृष्टि से भी हम नाटकों का मूल्यांकन किया गया है। अन्त में हिन्दी नाटक में मिथजी का स्थान निर्धारित करने की दृष्टि से उनके नाटकों की तुलना उनके समकालीन तथा परबर्ती नाटककारों से भी की गई है।

इस प्रबन्ध में मैं मिथजी के नाटकों के महत्त्व को समझने में कहीं तक सफल हुआ हूँ यह निर्णय तो बिचगन ही करने, परन्तु इस रचना में मेरी चिन्तन शक्ति का विकास अचरय हुआ है, मेरे लिए बड़ी कम सन्तोषजनक नहीं। कोई भी तथ्य जब तक मेरे मस्तिष्क में स्पष्ट नहीं हुआ मैंने उसे स्वीकार नहीं किया है। इसी कारण मिथजी के विषय में प्रचलित चारणाओं से कहीं-कहीं भेद मतभेद भी हो गया है। ऐसे स्थलों पर मैंने अपने मस्तिष्क के सम्पूर्ण ऊहापोह को तर्क-वितर्क सहित प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्रादरणीय डा० बिजयेन्द्र स्नातक जी रीजर हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्व-विद्यालय के निदेशन में ही इस प्रबन्ध के प्रकाशन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। उनके संरक्षण में मेरी अमिथ एवं स्तम्भ सेवामी मे समय-समय पर जो मार्ग मार्गा है, उसके लिए मेरा हृदय सदा ही उनके प्रति भड़ा से तत रहेगा। इस प्रबन्ध के लिखे जाने के पश्चात् भी उन्होंने समय-समय पर जो मेरी साहित्यिक रचि को आलोच्य किया है उससे बीचन संदर्भ में मुझे जो आश्वासन मिला है वह अमूल्य है। इसकी भूमिका लिखकर भी उन्होंने मुझे विशेष रूप से उपहृत किया है। उनके इस स्नेह को उनकी धीपचारिकता द्वारा व्यक्त करने में हृदय की संक्रान्त का अनुभव होता है।

वीपुत लक्ष्मीनारायणजी मिश्र का भी मैं विशेष रूप से धात्री हूँ जिन्होंने मेरे सभी प्रबन्धों का समय-समय पर स्पष्ट एवं विस्तृत उत्तर देकर मुझे आश्चर्य के प्रति अपना स्नेह प्रदर्शित किया है। इस पुस्तक के लिए आशीर्वादन धारि जो अम्य लिख भेजने की मेरी प्रार्थना की स्वीकार कर उन्होंने जो मेरे ऊपर कृपा की है इसके लिए मेरा हृदय सदा ही तत रहेगा।

प्रादरणीय डा० लक्ष्मीजी का भी मैं हृदय से धात्री हूँ जिन्होंने एक बार लक्ष्मीनारायण लिखने के सौभाग्य से संबंधित रह जाने पर भी पुनः इसकी स्वीकृति देने की कृपा की। यदि एम० ए० में यह प्रबन्ध न लिखा गया होता तो आज भी मैं ही बरा दूखी ही होती।

घाबरनीय था० हरिमजमसिंहजी चम्पल हिमाली विभाग, भी दुब तेगबहादुर लालबा कासेज साहित्यिक क्षेत्र में मेरे प्रथम गुरु हैं। उन्हीं के चरणों में पाँच वर्ष तक बैठकर मैंने साहित्यिक कृतियों की ओर देखना सीखा है। प्रत्येक क्षेत्र में पूर्वाग्रह को छोड़कर, जनकी सत्य को खोजने की प्रवृत्ति ने मेरे जीवन को अप्रत्यक्ष रूप से विशेष प्रभावित किया है। उनके स्नेह ने मुझे निरुद्ध माने का धक्का देकर इसे भीर भी अनुभूत बना दिया। आज उनको यह पुस्तक समर्पित कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

श्री डा० दयाराम धोम्याजी ने कृतिपय धनुसख नाटकों को अपने सन्ध्यालय में ले बढ़ने के लिए देने की जो कृपा की है उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक के प्रकाशन में श्री एचि वैद्यनाथ पण्डितजी हाउस के संचालक तथा उनके सग्य सहयोगियों की ओर से भी गई है उसके लिए भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मित्र बन्धु परिवार कुटुम्ब तथा विविध क्षेत्रों में सम्पर्क में माने जाने सभी जन मुझे अपने कार्य की वृत्ति में सहयोगी ही दिखाई दिए हैं। उन सबके प्रति आभार स्वीकार करता हुआ मैं प्रभु से प्रार्थना करूँगा कि वे सभी मेरे अनुकूल एवं सहायक बने रहें।

२४/१२ राजेन्द्र नगर

बई दिस्ती-२

भारतभूषण प्रहारा

विजयादशमी २०२१ वि०

## विषय-सूची

प्रथम अध्याय	पृष्ठसूचि	पृष्ठ
भाग (क) लक्ष्मीनारायण विषय—संक्षिप्त जीवन-परिचय		१-६
(ख) मिथली से पुनः हिन्दी नाट्य परम्परा वैचारिक ऐतिहासिक राष्ट्रीय रोमांटिक प्रहसन सामाजिक पारसी रंजमच अनुवित्त वाराह—निष्कर्ष ।		१०-२०
द्वितीय अध्याय	सामाजिक विवेचन	
भाग (क) नाटक परिभाषा नाटक के तत्त्व, संस्कृत नाट्य शास्त्र में पारम्पर्य नाट्यशास्त्र में । विषय सम्यक् का आधार—रस प्रधान बटना-प्रधान चरित्र-प्रधान, समस्या-प्रधान विचार-प्रधान नाट्य चिन्तन । हिन्दी नाटक के तत्त्वों का विवेचन—कथानक—मौलिकता सामग्री जीवन विन्यास, दुःख-मुख्य योजना प्रस्तावना अथवा कथोद्घाटन का महत्त्व । चरित्र-विशेष—मानव मन का विश्लेषण चरित्रों का वर्गीकरण । भाषा-शैली—संस्कृत नाट्य-शास्त्र की कृत्तियों का वास्तविक अर्थ संवाद के गुण । भाव तत्त्व—व्यापकता, तीव्रता विचार तत्त्व—प्रच्छन्न सामाजिक शास्त्र, व्यञ्जना—समुच्चय में विवरण में ।		२१-५२
(ख) समस्या-नाटक अभिप्राय योरे में समस्या-नाटक के विभिन्न अभिधान । वस्तु पक्ष—व्यावर्तक विरोधताएँ । विषय पक्ष—संघर्ष विन्यास एवं चरित्रगत व्यावर्तक विरोधताएँ । निष्कर्ष ।		५२-६३
(ग) मिथली के सामाजिक नाटकों का वर्गीकरण । वर्गीकरण का आधार, मिथली के सम्पूर्ण नाटकों की सूची विन्ध के आधार पर वर्गीकरण विन्ध संयोजन के आधार पर वर्गीकरण प्रत्येक नाटक को विविष्ट वर्ग में रखने के कारण ।		६४-७०

## तृतीय अध्याय सामाजिक नाटकों की समीक्षा

### (क) समस्या नाटक

- (१) संघर्षात्मी—वस्तु-यज्ञ—समस्या विवेचन, पात्र एवं कथानक प्रधान निष्कर्ष : शिल्प-यज्ञ—कथानक विम्यास चरित्र-चित्रण संवाद । ७१ २२
- (२) घापी रात—वस्तु-यज्ञ—समस्याएँ विवेचन व्यय निष्कर्ष : शिल्प-यज्ञ—कथानक विम्यास चरित्र-चित्रण संवाद नवीन प्रयोग निष्कर्ष । ८१-८६

### (ख) विचार प्रधान नाटक

- (१) रासस का यन्त्र — विद्या का स्वल्प वस्तु-यज्ञ—मूर्त श्रुतीक, प्रतिपाद्य प्राग निष्कर्ष : शिल्प यज्ञ—कथानक विम्यास चरित्र-चित्रण संवाद निष्कर्ष । ९०-९८
- (२) मुक्ति का रहस्य—वस्तु यज्ञ—प्रतिपाद्य, विवेचन । शिल्प यज्ञ—कथानक-विम्यास चरित्र चित्रण संवाद निष्कर्ष । ९९ १०२
- (३) राजपोग—वस्तु-यज्ञ—प्रतिपाद्य, विवेचन निष्कर्ष : शिल्प यज्ञ—कथानक-विम्यास चरित्र-चित्रण संवाद । १०६ १११

### (ग) समस्या एवं घटना प्रधान नाटक

- तिमूर की होली—वस्तु यज्ञ—अभिप्रेक्षित विचार अभिप्रेक्षित समस्याएँ, तर्क द्वारा प्रतिपादित समस्याएँ, कथानक का आधार एवं मुख्य अभिप्रेक्ष्य । प्राग व्यय । शिल्प यज्ञ—कथानक विम्यास चरित्र चित्रण संवाद निष्कर्ष । ११२ ११६

### चतुर्थ अध्याय उपसंहार

सबाबंदाजी नाटक परम्परा और नरसीनारायण मिश्र इम्तन राँ का प्रभाव सामाजिक नाटकों के मूल्यांकन का निष्कर्ष हिन्दी नाटक की विभक्ती का योगदान—वस्तु-यज्ञ शिल्प-यज्ञ नवीन प्रयोग । हिन्दी नाटक की प्रगति और विभक्ती । हिन्दी नाटक में विभक्ती का स्थान ।

११७-१२०

### परिशिष्ट

संदर्भ ग्रन्थ सूची हिन्दी संज्ञेयी संस्कृत

१२१ १२२

प्रथम अध्याय

## पृष्ठभूमि

(क) सरमोनारायण मिश्र सक्षिप्त जीवन-परिचय

(ख) मिश्रजी से पूरे हिन्दी भाष्य परम्परा





## लक्ष्मीनारायण मिश्र

### संक्षिप्त जीवन-परिचय

पारबाल्य घासोचना-मदति में लैलक की बीबनी को एक विधिष्ट महत्त्व प्राप्त रहा है। लैलक के सामाजिक परिवेश एवं वातावरण के आधार पर इसके कृतिष् का आकसव और विस्लेषण भी किया जाता है। किसी सीमा तक यह विस्लेषण व्यायसगत भी है परन्तु आज के कटिण जीवन में किसी के जीवन की मानसिक प्रतिक्रियाओं को जानने की न तो सुविधा है और न सामान्य व्यक्ति में इस विस्लेषण की क्षमता ही। यत मैंने बीबनी का अध्ययन केवल अपनी आनकारी बढ़ाने और मानसिक परिशेष के लिए ही किया है धन्यत्वेतन के विस्लेषण के लिए नहीं। इस धन्याय में केवल मिश्रजी के नीतिक जीवन की स्थूल रेखाओं को निरूपेण मात्र से चर्चित करने का प्रयास किया गया है। इस जीवन-कृत का आधार उनके साथ किया गया मेरा पत्र-व्यवहार एवं पदमसिंह धर्म 'कमलध' का 'मैं हलसे मिला' नामक लेख है।

मिश्रजी का काव्य पीप शुक्ल १ सम्बत् १९६० विक्रमी (ईसवी सन् १९०९) को जिला आक्रमबढ़ के बस्ती नामक ग्राम में हुआ। आपके पिता पं० कमलध-प्रसार मिश्र अपने जिले के सन्धान्त और उच्चकुसीन व्यक्ति माने जाते थे। यद्यपि जन्म से आप विधिष्ट बीबी भार्गनी मिश्र ब्राह्मण थे परन्तु आपके कुल के कर्म और संस्कार कई पौढ़ियों से लक्षियों जैसे ही रहे। जनमग सवा तीन सौ वर्ष पहले तक आपके पूर्वज जिला बस्ती के बड़नी नामक ग्राम में एक विस्तृत कुलध के स्वामी थे। इसके पश्चात् बड़नी के पूर्व के नगर राय के राजा से इस वंश का गृह हुआ और इनके पूर्वजों को मूल स्थान छोड़ना पड़ा। वहीं से वे अनेक स्थानों पर रहते हुए देवरिया के मझौली राज्य में आए और वहीं से कई सौ वर्ष के बाद-यास आज के आक्रमबढ़ जिले के पूर्वी भाग में आ गये। वहीं भी आपके पूर्वजों को समाज में विशेष सम्मान और धार प्राप्त था। प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम (१८५७) में आपके अग्रिष्ठामह भी आक्रमबढ़ में कूबर सिंह के दरबार में सम्मिलित हुए थे। सामन्ती संस्कारों में युद्धबापी मोठाहार

धीरे धीरे ही इनके पिताजी के समय तक बसता रहा। बाह्य बर्ण का मूल कर्म बान बना इनके बंध में पूर्णपरा निविष्ट था। उसी बाध की मर्यादा में सहमीनारायण मिश्र ने भी अपने विवाह में किसी प्रकार का बान-बन्ध अपने स्वयं से लेने से इनकार कर दिया। इस प्रकार कई पीढ़ियों से सामन्ती धीरे धीरे बर्ण के संस्कार होने के कारण इस बंध की परम्पराओं में बाह्यपरा धीरे धीरे समाप्त हो एक अपूर्ण सम्मिश्रण हो गया है।

मिश्रजी सात बर्ष की आयु तक रोगी धीरे निर्बल रहे। इनका सरीर इतना दुर्बल था कि परिवार के व्यक्तियों को इनके जीवित रहने में भी सन्देह रहता था। बाध्यता में पड़ने की प्रवृत्ति न होने पर भी पिताजी के मरण धीरे धीरे घात के कारण उनका अध्ययन जारी रहा। विद्यारम्भ उनका घर में पाँच बर्ष की आयु में हुआ। गाँव की पाठशाला से बीबी बेबी धीरे बोरी के मित्रित स्कूल से सातवीं बेबी पास कर के सन् १९१९ में इलाहाबाद के माडर्न हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। यही उनकी अंग्रेजी शिक्षा का आरम्भ हुआ। वरन्तु दूसरे ही बर्ष राष्ट्रीय विचारों के आकर्षण में वे वहीं से स्कूल हिन्दू स्कूल काशी चले आए। यहाँ सन् २१-२२ में हिन्दी के कई प्रतिभावादी छात्र उनके सहपाठी थे जिनमें आज के हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा 'सामन्तीय' ० कमलापति त्रिपाठी आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। काशी के हिन्दू स्कूल से 'एडमिशन' की परीक्षा के बाद उन्होंने उसी विश्वविद्यालय में ई० सन् १९२४ में इष्टर की व्याख्या कीया में प्रवेश लिया। धीरे ई० सन् १९२८ में राजनीति इतिहास धीरे अंग्रेजी साहित्य विषयों के छात्र बी० ए० की परीक्षा पास की।

मिश्रजी का विवाह सन् १९२३ में सम्पन्न हुआ था। विवाह के पाँच बर्ष बाद सन् १९२८ में उनके पहले पुत्र श्री विश्वम्भरनाथ मिश्र का जन्म हुआ। इनका पदचाल पीछे तीस-तीस बर्ष के अन्तर से उनके यही इतिहास मिश्र धीरे रवीन्द्रनाथ मिश्र का जन्म हुआ। धीरे तदुपरांत अन्तिम आत्मक रवीन्द्र की आत्मकथा में ही छोड़कर उनकी कर्मपत्नी सन् १९३६ में परलोक विचार गई। पत्नी के देहाश्रय के समय मिश्रजी की अवस्था कुल ३९ बर्ष की थी।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं दृष्टिकोण की सोचने की बाह्य धारा में आरम्भ से ही रही। इसलिए छान जीवन से ही विभिन्न विषयों की गुरुत्यों का पता अपने ज्ञान बन्धन की समृद्ध करते रहे। भारतीय साहित्य के प्रति तो आपसी दृढ़ आस्था थी ही बिदेसी साहित्य को भी अपने ज्ञानबर्धन के लिए पढ़ते रहे। पुनर्जीवितकालों से लेकर योरोप के अग्रणी बड़े नाटक

कारों के नाटक भी थे पढ़ चुके हैं। मनोविज्ञान इतिहास बलाघातन ब्रह्म समाजघातन के प्रधान ग्रन्थों से भी थे पुनतया परिचित हैं। परन्तु बिदेसी साहित्य के ये ग्रन्थ उनके व्यक्तित्व को अभिभूत नहीं कर सके। उनका प्रभाव ब्रह्म करने वाले ग्रन्थ हैं—वेद, उपनिषद् भीमा श्रीमद्भागवत, संस्कृत धीर माया के काव्य ग्रन्थ पतञ्जलि का योगसूत्र धीर वात्स्यायन का कामसूत्र। इस विस्तृत अध्ययन धीर चिन्तन के कारण ही भारतीय जीवन प्रणाली का वैज्ञानिक धीर सर्वसम्मत रूप आपके मस्तिष्क में स्थिर हो गया है।

युवावस्था में भी बिम्बरी के हृदय में राष्ट्र चिन्तना कितनी गहरी थी स्वतन्त्रता की कितनी उत्कट अभिलाषा थी यह 'संग्रामी' नाटक के राज नीतिक प्रश्नों से स्वयं सुचारित हो रहा है। उनके विचारों धीर सरगमियों से अंग्रेज सरकार को समझ हुआ धीर पुष्पेश्वर सदा उनके पास बने रहे। १८९५ में जब वे क्षय के असाध्य रोगी के रूप में लखनऊ के सबसे बड़े चिकित्सा विद्यालय में भर्ती हुए तभी बिदेसी सत्ता ने भी उन्हें निकम्मा समझकर कुछ काल के लिए सम्मोच किया। परन्तु सन् १८९३ में पुनः उन्हें राजपुत्र बनाकर आबमन्य कैद में गजरबन्द कर दिया गया।

साहित्य-क्षेत्र की वैज्ञानिक प्रतिभा के कारण मिश्रजी की लिखने का बरसा ११ १२ वर्ष की अवस्था में ही जन गया था। निम्न स्तर में छिपे-छिपे 'संग्रामी' के पत्रों में वे अपनी साहित्यिक क्षति को कृप्य करते रहते थे। उसी से प्रेरणाग्रित हो वे बैठे-बैठे कविता की तुल्य जोड़ते रहते। बिम्बरी तुल्यवन्दी हुई इसका स्मरण अब मिश्रजी को भी नहीं है। दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

“आकलन गुरतरि नीर में सब मनुज के धीं सोहते,  
मानो बिलस आकाश में गजान के मन मोहते।”

संस्कृत हिन्दू स्कूल काशी के साहित्यिक वातावरण में ही बिम्बरी का साहित्य की ओर वास्तविक अर्थों में मुखाग्र हुआ धीर वैदिक की परीक्षा बैठे-बैठे सन् २१ २४ में आपने छायावादी कविता पुस्तक 'अन्तर्बन्ध' की रचना कर ली। धीर इसका प्रकाशन भी उन्होंने बिम्बरी की मित्रपूजन सहाय धीर यी राम ब्रह्म बेनीपुरी द्वारा पुस्तक भण्डार लहेरियासराय की ओर स हो गया। 'अन्तर्बन्ध' के प्रकाशन के साथ ही छायावाद के अग्र्य यद्यपि कवियों का उत्थान हुआ। 'प्रताप' भी का आधुनिक रूप बाह्य भिन्न गया। इसके पश्चात् आप

नाटक रचना में प्रवृत्त हुए। इष्टर की सामाजिक चिन्ता के भीतर ही आपने 'अयोध्या' नाटक की रचना की।

कठिन जीवन में ही भारतीय एवं विदेशी साहित्य के विविध ग्रन्थों के अध्ययन से उनके मस्तिष्क में भारतीय जीवन प्रणाली का ब्रह्मानिक एवं तर्क सम्मिश्र रूप स्वरूप होने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि हमारा नवदुर्लभ समाज स्वयं के अविमान को त्याग कर परिचय के अन्वयानुसार से वस्त्र की ओर आ रहा है। आज एवं छायाएँ पाश्चात्य जकातीय में कई प्रकार के मनोविकारों से परत हो रहे हैं। इन तथ्यों को उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने बड़ी गहराई से अनुभव किया। हम को ठेस पहुँची थीर इसका मूल स्वरूप समाज के सामने रखने के लिए उन्होंने 'संस्थाही नाटक की रचना बी० ए० के विद्यार्थी जीवन में ही कर दी। उस समय की भावनाओं के आवेग को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित स्वयं कहते हैं 'समस्या-नाटकों की रचना विद्यार्थी की है। उसी प्रकार जैसे प्रेम।'

इस पश्चात् उन्होंने जमना 'उदास का मस्तिष्क मुक्ति का रहस्य' 'उज्ज्वल' मिथुन की होनी और आधी रात — पाँच सामाजिक नाटक प्रारम्भ किये। इसी बीच २० अगस्त १९३५ को उनके सगे अनुज गिरिजाशंकर की वारस हुए। छात्रों के उत्तम पर गहरी नीद में डूबे हुए ही और वे स्वयं शयन के असाध्य रोगी के रूप में चिकित्सालय में भर्ती हो गए जिससे उनकी सेरानी में भी बिधायक गया। माई की हत्या के एक वर्ष के भीतर ही उनकी धर्मपत्नी भी चल बसी। और हमारे साहित्यकार के आचरण अनुपम और धर्म के सभी स्रोत समा गए। सन् ३४ में उन्होंने आधी रात लिखा था। तत्पश्चात् १२ वर्ष की सभी अवधि बीतने पर नारद की बीमा' लिखा गया। इस प्रकार सन् ३४ से सन् ४९ तक के बारह वर्षों के लिए हिन्दी साहित्य उनकी प्रतिभा में अन्विष्ट रहा।

सन् ४९ के पश्चात् मृत्यु रूप से आपकी निराली जी भारतीय के चरणों में एक से एक उत्तम नाटक अर्पित करती रही है। सन् ३४ तक आपने छह सामाजिक नाटक लिखे थे परन्तु ४९ के पश्चात् के साठवर्षिक नाटककार बन गए। उनके छह ऐतिहासिक एवं द्वा प्रेरणित नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। पुनः-प्रवर्तक मनीषिया की आचार्य बनावर भी उन्होंने तीन बीकनीयुन नाटक लिखे और पुरानी-नए न भी अरुणी क्वालि प्राप्त की। महाभारत के अन्त पर आधुन

महाकाव्य की रचना भी उन्होंने प्रारम्भ की थी जिसके बाई सत्र सन्नी दोष हैं। महाकाव्य बाँधी की हस्ता के पश्चात् है उस काव्य की एक पंक्ति भी न लिख सके, मानो उनकी प्रेरणा का मोल ही मूल गया हो। इन अधूरी रचना को पूर्ण करने के प्रतिनिधित्व मिश्रजी का दो नाटक और निम्नलिखित का विचार है।

घापकी प्रतिभा का प्रमुख गुण है—मौलिकता। इस मौलिकता के कारण युग की दिशा ढोने में घाप सदा अग्रणी रहे हैं। छायावादी कविता सभी संकुचित हो रही थी कि घापका 'अन्तर्गत' प्रकाशित हुआ। नाटक क्षेत्र में अमत्या-प्रधान नाटकों के प्रथम प्रणेता भी घाप हैं। इसके पश्चात् भारतीय रसवादी धारा को हिन्दी नाट्य साहित्य में प्रतिष्ठापित करने का कार्य भी घापको है। बीकनी को आधार बनाकर नाटक लिखने में भी केवल घाप ही सफल हुए हैं।

घापका व्यक्तित्व प्रबल ही नहीं प्रखर भी है। घापके साहित्य कला जीवन दर्शन आदि के प्रति विचार सर्वथा निष्ठावर्तक स्पष्ट हैं। 'बद होकर हैं तो प्रत्यक्ष प्रवाह परिपूर्ण करने की माँति उनकी शायी का रूप होता को चमत्कृत कर देता है।' घापके प्रबल व्यक्तित्व का आभास इससे भी मिलता है कि घाप वास्तुनिधि निरंतर समय परिवर्तन नहीं करते। 'घापके तर्कों में भी घापके व्यक्तित्व की प्रबलता अनुमानित की जा सकती है। घाप जिस बात को कहना चाहते हैं इतने तर्कपूर्ण ढंग से कहते हैं कि घापका विरोधी भी उन तर्कों की प्रबलता नहीं कर सकता। नाटकों की प्रेमिकाओं में घापकी सुन्दर तर्कपूर्ण शैली के स्थान होते हैं। इन तर्कों के सुन्दर नियोजन का कारण है घापकी धारम के प्रति ईमानदारी। ऐसा प्रतीत होता है कि घापने अपने सभी विचारों को अनुसूति में आत्मसात् कर लिया है इसीलिए किसी भी तर्क में विचलित नहीं।

घापके व्यक्तित्व में वही इतना प्रबल था है वही अनेक नवीन विचार को प्रवृत्त करने की उद्योगता भी है। यही कारण है कि घापके विचार उत्तरोत्तर विकसित होते हुए पुष्ट होते गए। घापने अपने नाटकों के विषय विधा और उद्देश्य को जैसे उचित समय का बिना हिचकिचाहट के परिवर्तित किया। वास्तव में बुद्धि के निष्पक्ष पर कार्य को परखने वाला व्यक्ति कभी भी कर्तव्यहीन नहीं हो सकता। वह अपने तर्कों का विचार ही प्रबल प्रतिपादन को दुराग्रही नहीं रहा मायगा।

घाप सभी दिशा परिवर्तन करने वाले कलाकारों को प्रारम्भिक कार्य में आलोचकों द्वारा उचित सम्मान नहीं मिलता। इसीलिए उन्हें अपनी प्रतिभा द्वारा साहित्य-समय के साथ-साथ अनगिनत का भी निर्माण करना पड़ता है। बहसचर्चा से

१ 'मि एन्डे विन्ग' जर्मन भाषा 'अमिता' पृष्ठ नं० १४३

२ वही पृष्ठ १४३

भी इसका अनुमन किया। उसका कथन है—

‘प्रत्येक महान एवं मौलिक लेखक को जितने भी संभव महान प्रकाश मौलिक है अपनी मौलिकता का आस्वादन कराने के लिए जनता की समीक्षा का निर्माण करना चाहिए, अपनी धीरे-धीरे जाने का दृष्टिकोण प्रदान करना चाहिए।’

मिश्रजी भी इस विद्वत्त्व के शिकार बने। वह एक संयोग की बात है कि भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए इस साहित्यकार को केवल प्रकाशवादी हीती के कारण आचार्य शुक्ल जैसे विद्वान आलोचक ने विदेशी प्रभाव में देखा। और सभी से सभी आलोचक आपको उसी दृष्टि से देखते रहे। सहानुभूति और सह-बलता से विचार करना तो दूर कई आलोचक तथ्यों की भी प्रवृत्ति कर गए। श्री अजरतलदास ने अपने इतिहास ‘हिन्दी माध्य साहित्य’ में मिश्रजी के ‘प्रयोग’ नाटक पर प्रकाशवादी के ‘अग्रदूत’ की छाया डलाई जबकि ‘प्रयोग’ ‘अग्रदूत’ से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था। आलोचना में व्याप्त न मिलने के कारण मिश्रजी को अपने नाटकों की भूमिकाओं में स्वयं अपना पक्ष प्रस्तुत करना पड़ा। प्रकाशवादि प्राप्त आलोचना-सामग्री में केवल इन नाटकों की भूमिकाएँ ही नाटकों को समझने में सहायक होती हैं। परन्तु सूर्य का प्रकाश कब तक मेघाच्छन्न रहता। समय के साथ-साथ विद्वानों ने आपके नाटकों की महत्ता को स्वीकार किया। आपके कई नाटक उच्च कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुए। आप कई साहित्यिक अभिवेक्षणों में समापति निर्वाचित किए गए। अखिल भारतीय कामायनी सम्मेलन के संयोजक श्री वचनारायण आचार्य और स्वानताम्पस श्री बैबीसंकर का उपबुलपति हिन्दू विश्वविद्यालय बाराबन्सी तथा उक्त सम्मेलन के सदस्य मण्डल की ओर से आपकी सन् १९२८ में एक मानपत्र भेंट किया गया। उसी मानपत्र की दो वक्तिया—

“अन्तर्गत की ज्योति है

प्रति किया ‘आलु की बूँद-बूँद।

ये साहित्य के इतिहास की एक बटना स्वीकार कर मिश्रजी की युगप्रवर्तक प्रतिभा का उचित सम्मान दिया गया।

मिश्रजी स्वतन्त्र रूप से साहित्य-साधना करते हैं। जीविता के लिए मोफरी

१ “Every great and original writer in proportion as he is great or original, soon creates the taste by which he is to be relished, he must teach the art by which he is to be seen.”

मरुमीनारायण मिश्र सश्लिष्ट जीवन-परिचय

करना उन्हें अभीष्ट नहीं। आप सहज सहानुभूति व मिलने की स्थिति में भी अपने जीवन और आदर्श दोनों की रखा साहित्य के माध्यम से करते रहे यह प्रामुख ही है।

‘माछीयता’ उनका प्राण है पर बहिर्बाहिता के बे जोर शत्रु है। उनकी भारी पीयता की अपनी मौलिक व्याख्या है। जिसमें वे अपने हंग से युग की उस समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव मानते हैं। बिनके लिए हम पाश्चात्य संस्कृति की ओर देखते हैं। स्पष्टता उनका सबसे बड़ा गुण है। उनके सर्व प्रकाश्य होते हैं और उनके पीछे पर्याप्त चिन्तन और मनन की शक्ति रहती है।<sup>१</sup>



भी इसका अनुभव किया। उनका कथन है—

‘प्रत्येक महान एवं मौसिक लेखक को जितने संशय में वह महान मयका मौसिक है, अपनी मौसिकता का साक्षात्करण कराने के लिए जनता की अभिरुचि का निर्माण करना चाहिए, अपनी धीरे-धीरे जाने का दृष्टिकोण प्रदान करना चाहिए।’<sup>१</sup>

मिश्रजी भी इस विद्वाना के धिकार बन। यह एक संयोग की बात है कि भारतीय संस्कृति के रंग में रंगे हुए इस साहित्यकार की केवल मयार्चवादी रीति के कारण भाषार्थ पुनः नये विद्वान् भाषोचक ने विदेशी प्रमाण में देखा। और सभी से सभी भाषोचक आपकी उसी दृष्टि से देखते रहे। सहानुभूति और उच्च वयता से विचार करना तो दूर कई भाषोचक सभ्यों की भी मयहेलना कर गए। श्री बजरत्नरास ने अपने इतिहास ‘हिन्दी नाट्य साहित्य’ में मिश्रजी के ‘अशोक’ नाटक पर प्रसादजी के ‘अशोक’ की छाया बताई जबकि ‘अशोक’ ‘अशोक’ से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका था। भाषोचना में ग्यामन मिलने के कारण मिश्रजी को अपने नाटकों की भूमिकाओं में स्वर्ण अपना पद्य प्रस्तुत करना पड़ा। असावधि प्राप्त भाषोचना-सामग्री ने केवल इन नाटकों की भूमिकाएँ ही नाटकों को समझने में सहायक होती है। परन्तु सूर्य का प्रकाश जब तक मेघाच्छन्न रहता। समय के साथ-साथ विद्वानों ने आपके नाटकों की महत्ता को स्वीकार किया। आपके कई नाटक उच्च कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों के रूप में स्वीकृत हुए। आप कई साहित्यिक अधिवेशनों में समापति निर्वाचित किए गए। अखिल भारतीय कामायनी सम्मेलन के संयोजक श्री पद्मनारायण भाषार्थ और स्वावसाध्यस श्री बेबीरकर और उपकुलपति हिन्दी विद्वानिद्यालय बाराबंसी तथा उच्च सम्मेलन के सदस्य मध्यम की ओर से आपको सन् १९३८ में एक मानपत्र भेंट किया गया। उसी मानपत्र की दो पक्तियों—

“‘अशोक’ की लोचि ले,  
प्रति किया ‘अशु’ की बूँद-बूँद।”

में साहित्य के इतिहास की एक पटना स्वीकार कर मिश्रजी की पुण्यवर्त्तक प्रतिमा का उचित सम्मान दिया गया।

मिश्रजी स्वतन्त्र रूप से साहित्य-साधना करते हैं। जीविता के लिए नीकरी

१ “Every great and original writer in proportion as he is great or original, must create the taste by which he is to be relished, he must teach the art by which he is to be seen.”

सहमीनारायण मिथ्य संक्षिप्त जीवन-परिचय

करना उन्हें समीप नहीं। आप सहज सहानुभूति से मिलने की स्थिति में भी अपने जीवन और आदर्श दोनों की रक्षा साहित्य के माध्यम से करते रहे यह अद्भुत ही है।

भाष्यता उनका प्राण है पर बड़बुदादिवा के बे जोर शत्रु हैं। उनकी भार तीव्रता की अपनी मौलिक व्याख्या है। जिसमें वे अपने ज्ञान से युग की उस समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति सम्भव मानते हैं बिनाके लिए हम पाश्चात्य संस्कृति की ओर देखते हैं। स्पष्टता उनका सबसे बड़ा गुण है। उनके ठेक सवाद्य होते हैं और उनके पीछे पर्याप्त चिन्तन और मनन की गफित रहती है।<sup>१</sup>

## मिश्रजी से पूर्व हिन्दी नाट्य परम्परा

हिन्दी नाटक को जन्म के साथ ही चारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे प्रतिभाशाली और श्रावणात् कलाकार का ध्यान प्राप्त हुआ। उनका धारम्भ से ॥ उसका बहुमुखी विकास प्रारम्भ हो गया। चारतेन्दु काल में ही नाटकों की कई श्रेणियाँ हो गई जो समय-साक्षात् को प्रस्तुति कण्ठी ॥ उत्तरोत्तर विकास करती गई। इस काल के नाटकों को प्रमुख रूप से इन कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—पौराणिक ऐतिहासिक राष्ट्रीय रोमांटिक सामाजिक और धर्मव्यासक (ग्रहसक)।

### पौराणिक धारा

भारतवासी नाटकों की दो धारणें थीं—पौराणिक और ऐतिहासिक। उन्नीसवीं शती में पौराणिक धारा प्रबल रही। इसमें रामलीला और रासलीला के प्रत्यक्ष प्रचार का विशेष योग है। उन्नीसवीं शती के मध्यकाल में सिधे पण नाटक जैसे—विश्वनाथ सिंह की रीमा नरेस का 'भालनर रघुनन्दन' मधु का 'हुमान नाटक' कृष्ण चर्मा बाबु का 'रामलीला बिहार नाटक' हरिराम का 'बालकी बरिठ' गोपालचन्द्र का 'नहुष' आदि इस धारा के मशहूर प्रमाण हैं कि रामलीला आदि से प्रभावित नाटिक जनता प्रारम्भ में पौराणिक नाटकों की ओर स्वाभाविक रूप से उन्मुख हुई। इन नाटकों की रचना प्रमुखतः दो वर्गों की दृष्टि से की जाती थी—एक तो अपने पूर्वजों का स्मरण बिनाकर प्राचीन गौरव को बहाल करने के लिए और दूसरे पौराणिक चरित्रों के आधार पर प्रबल भारतीय भावों की पुनः प्रतिष्ठा करने तथा गौरीय युग-वेदना को प्रतिमासित करने के लिए। इस नाटक-धारा में नाटककारों के लिए भी कम आकर्षण न था। कलात्मक चमक सुवर्ण थी या और सरस थी। कला विकास के लिए प्रत्येक घटना को एक-एक दृश्य धारणा अंक में रखकर प्रसिद्ध घटना के दृश्य की पूर्ति कर दी जाती थी। कलात्मक में मौलिकता दिखाने का ध्यान ही न था। चरित्र-विशेष में मनोवैज्ञानिकता दिखाने की न तो आवश्यकता समझी

ਸਿਖਸੀ ਤੇ ਪੂਰ ਹਿੰਦੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦਰਸ਼ਨ

विकास संस्कृत नाट्यशास्त्र की पद्धति के अनुसार कार्यावस्थाओं तथा सन्धियों के नियमों के आधीन छिद्रित प्रति है हुआ। कथानक समकाल में सम्बद्धता और बटनाओं में समानुपात के बाव को मरिष्ठ करते हुए डा० श्रीहृष्यनाथ सिद्धी हैं 'तीन सौ बरों तक मुक्तकों के सम्पत्त होने के कारण हिन्दी कवियों का मरिष्ठक और प्रतिभा कुछ ऐसे सोच में डल गई थी कि वे जीवन के केवल किसी विशेष वर्ग की समस्याएँ के मातृभाषों पर ही दृष्टि डाल पाते थे। इसलिये जब इन कवियों ने नाटक लिखना प्रारम्भ किया तो वे जीवन की कुछ प्रमुख बटनाओं का संकलन एक सम्पत्त कथा की रूप में कर डते जिनमें न तो कार्यों की एकवर्षता होती न कथानकों का प्रवाह प्रवाह। उनमें कुछ कुछ ऐसे भी होते जिनका नाटक से कुछ विशेष सम्बन्ध ही न होता और यन्त्रक ऐसे पुराने भी होते जिनका केवल उल्लेख मात्र हो पर्याप्त होता। उदाहरण के लिए रामाह्वयदास के प्रसिद्ध नाटक 'महाराजा प्रतापसिंह' या 'रावस्थान केसरी' में प्रथम प्रक के द्वितीय दृश्य और चतुर्थ प्रक के प्रथम दृश्य नाटक के मुख्य कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं रखते और बहू बिना किसी बाधा के नाटक से निकाले जा सकते हैं।'

चरित्र-विशेष की दृष्टि से भी इस युग के नाटकों का विशेष महत्त्व नहीं। 'ऐसा जान पड़ता है कि नाटक के पात्र स्वयं न तो कल सोच ही सकते हैं न उनका कोई व्यक्तित्व ही है वे गुने और बहरे-से बड़े रहते हैं और कवि नाटक-कार ही उनके पीछे बड़े होकर बोला करते हैं।' संवादों की दृष्टि से तो इन नाटकों की स्थिति और भी शोचनीय है। 'साधारणता भाषण नाटकीय कार्यों की श्रुतिका और उपसंहार के रूप में—कार्य के परिणाम के रूप में ही प्रयुक्त होते हैं।' 'संसार सम्वादात्मिक और संसृत है। उनमें न तो समानुपात का बोध (Sense of proportion) है न निर्देशन (direction)। हाँ। उनमें रीतिकवियों की नाट्यव्यवस्था और रूप की सुन्दरता ही थी। अन्धवर्गीय नाटिका से अन्धवर्गीय के विषय का उद्धार प्रस्तुत करते हुए डा० श्रीहृष्यनाथ अपने इतिहास में लिखते हैं 'ऐसा मान्य होता है कि अन्धवर्गीय और अतिरिक्त रीतिकाल की कोई कवि है जो समय-असमय की उपेक्षा करके केवल मुग्ध मुक्तकों की रचना करने का बहाना निकालकर कविता पढ़ रही है। इनमें उक्ति-वैविध्य तो प्रचुर है, परन्तु नाटक के लिए जिस महाकाव्यत्व और कीमती भावनाओं की व्यवस्था

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा० श्रीहृष्यनाथ पृ. १०७

२. पृ. १, २, ३

३. पृ. १, २, ३

४. पृ. १, २, ३

तपयुक्त होती है वह इनमें नहीं।<sup>१</sup>

भारतेन्दु यथस के नाटककारों ने संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुकरण से प्रारम्भ किया और समय की गति के अनुसार वास्तविक नाट्यशास्त्र एवं कला की रीति के प्रभाव से नाटकीय विधानों में अनेक परिवर्तन किये। नाट्यी के पालन में विविधता आ गई। प्रस्तावना का भी कई नाटकों में लोप हो गया। अंकों की संख्या और दृश्यों का विभाजन औपचारिकताबद्ध ही होता था।

इस भारत में कला के विकास के प्रथम दर्शन बलीदास भट्ट के 'बुद्ध-जनम' (१९१२) में होते हैं। इसी स्मृत के बोधिसत्वस्तम पर्यंत के 'वरमाता' मातङ्गनाथ चतुर्वेदी के 'कल्याण-मुक्त' और सुबर्चन दत्त 'अंजना' आदि नाटकों में भी इस विकास का स्पष्ट परिचय मिलता है। इनका वस्तुविम्वार सरल एकदम और सुमन्यव होने के कारण सफल है। कथानक में संघर्ष का स्वरूप भी अधिक स्पष्ट है। अतः इस नाटककारों की दृष्टि कथानक सौन्दर्य और कर्म-विकास को धीरे धीरे अधिक गई है तथापि इनमें अरिषों का सुन्दर सूत्रन है। संभाषणों में समाधिवाद का प्रियण हुआ है।

इस भारत में कला का अरम विकास प्रभाव के नाटकों में हुआ। प्रसादजी के प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं—'राजवंशी' (१९१३) 'विद्या' (१९२१) 'प्रजापति' (१९२२) 'जनमेजय का नामयज्ञ' (१९२६) 'स्कन्दपुराण' (१९२८) 'ब्रह्मपुराण' (१९३१)। यद्यपि लक्ष्मीनारायण मिश्र का प्रथम सामाजिक नाटक 'अंधा' (१९२७) में प्रकाशित हो गया था तथापि विषयों के सामाजिक नाटकों के समकालीन होने के कारण स्कन्दपुराण और ब्रह्मपुराण का विवेचन भी पूर्व परम्परा के प्रसंगों करना ही लक्ष्मीनारायण समझ गया है। प्रसादजी के नाटकों में इतिहास के पृष्ठभार पर सांस्कृतिक सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक आदि विभिन्न स्तरों की अलग-अलग गतिविधियाँ प्रस्तुत की गईं। उनके व्यापक जीवन-दर्शन और विभिन्न युव-समस्याओं में उनकी विषयवस्तु को नवीन महत्त्व प्रदान किया।

इन नाटकों में मुख्य कथानक के प्रतिनिधित्व पाँच-छह कथाओं के समावेश के कारण कथानक का कर्म-विकास बढ़ा बढ़ता ही गया है परन्तु प्रसादजी की अप्रतिम प्रतिभा इसका बहुत अंशों तक सुमन्यव विवाह करने में सफल हुई है। नाटकों में संघर्ष के स्वरूप एवं उसमें उत्तरोत्तर बढ़ते वाली तीव्रता के कारण भी एक अद्भुत सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। अरिष विषय में प्रभाव के नाटकों ने हिन्दी

नाटक में युगान्तर स्थापित किया है। इन्हीं नाटकों में पात्रों को पहली बार व्यक्तित्व प्राप्त हुआ है। प्रसाद ने अपने पात्रों को अधिक से अधिक सहानुभूति की और उनके व्यक्तित्वों तथा बाह्य लक्षणों को अत्यन्त मार्मिक ढंग से चित्रित किया। वस्तुतः इन नाटकों की सफलता का एक प्रमुख रहस्य बन्ध से भी कठोर और शिरीष पुष्प से भी कोमल पात्रों के चरित्रांकन में ही है। इन नाटकों में काव्यत्व के समावेश के कारण एक अपूर्व मार्मिकता पा गई है। नाटकीय दृष्टि से यह उनकी कमजोरी है परन्तु इसी कमजोरी में उनकी महत्ता अनुस्यूत है। कठोर से कठोर और कोमल से कोमल भाव की व्यञ्जना के तो यह प्रकृत शिखी हैं।

प्रसाद के नाटकों में आकर नाटकीय विभाग भी कुछ स्थिर रूप ग्रहण करने लगे थे। हिन्दी की आदर्शवादी आरा की एक अपनी परम्परा सुस्थिर होने लगी। इस काल के नाटककारों ने पादशास्य नाट्य कला का सार्थकवाद और रसमन्त्र की सुविधाएँ तो ले लीं परन्तु संस्कृत का कवित्वमय आभास नहीं जाने दिया। पादशास्य प्रभाव से प्रस्तावना का अन्त हुआ और नाटक में कथानक-वैचित्र्य और कथानक-सौन्दर्य की प्राण प्रतिष्ठा हुई। अकों की दूरियों में विभाजित किया गया परन्तु कवित्व की रसा के लिए सघनीय और गानों का उपयोग किया गया। नाटकीय विभागों में रसमन्त्र और कथानक-वैचित्र्य के लिए अनेक प्रयोजन किए गए परन्तु कवित्व आदर्शवाद और काव्य ग्याय के विषय में इन्होंने संस्कृत नाटकों का आदर्श ही ग्रहण किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्रजी के आधिर्भाव के समय में आदर्शवादी आरा अपने चरम विकास पर स्थित थी।

### राष्ट्रीय भावना की नाटक-आरा

भारतेश्वर ने राष्ट्रीय भावना के प्रचार के लिए 'प्रेमयोगिनी' 'भारत दुर्दशा' आदि नाटक लिखे थे। इनकी परम्परा भी लुप्त नहीं। अम्बिकाशरण व्यास का 'मोक्षद्वार' और 'भारत सौभाग्य' ब्रह्म बहादुर मस्न का 'भारत सत्तना' जयशंकर प्रसाद का 'भारत दुर्दिन' बहीनारायण चौधरी का 'भारत सौभाग्य' इस आरा की प्रारम्भिक काल की रचनाएँ हैं। वस्तुतः नाटक प्रचार का माध्यम नहीं इसलिए राष्ट्रवाद के परिष्कृत स्वरूप की छाया तो आये के नाटकों में प्रबल है। परन्तु इसका स्कूल प्रचार उत्कृष्ट साहित्यिक नाटकों में कम ही दृष्टिगत होता है। प्रसाद के नाटक तो मानो राष्ट्रवाद की आचार-भूमि पर ही लगे हैं।

## रोमांटिक नाटक-धारा

इस धारा के प्रचलन में पारंपारिक संस्कृति पारसी रंगमंच तथा उर्दू एवं 'लिटिकासीन' ग़ुलामी प्रेम का धारणात्मक प्रभाव है। इन नाटकों के कथानकों पर परबर्ती प्रेमोन्मत्तताओं का प्रभाव भी देखा जा सकता है। इनमें मायक नायिकाओं को प्राप्त करने में अपूर्व साहस दिखाते हैं और नियोग में निरहामि की तीव्र क्वासा में जलते हैं। इनकी नायिकाओं पर तो यह प्रभाव और भी स्पष्ट है 'प्रेममोहिनी' और 'मयक मंजरी' आदि नायिकाएँ टिपिकल रीतिकासीन हैं जो टिकासीन बहलबाजी, खेडबाड़, तीरेनजर और इधारेबाजी की कला में प्रवीण हैं। फिर भी इनका प्रेम ऐकान्तिक और एकमिष्ट है।<sup>१</sup>

भारतेन्दु के नाटकों में इस धारा का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। 'बन्दावनी नाटिका' में कुछ सीमा इस बोली के प्रेम का संधान पाते हैं परन्तु बन्दावनी नाटिका स्वच्छन्द प्रेम का नहीं भक्ति का काव्य है।<sup>२</sup> इसे धार्मिक प्रेम की कोटि में रखा जा सकता है। इस धारा के प्रमुख नाटक हैं—'साक्षात् धीनिवास दास का 'रजबीर प्रेममोहिनी' (१८८०) और 'तपस्य सवरण' (१८८३) धन्विकादत्त व्यास की 'जसिता' (१८८४) धर्मसिंह गोविमा की 'महम मंजरी' (१८८४) कियोरीलाल गोस्वामी की 'मयक मंजरी' आदि। इन नाटकों का प्रमुख उद्देश्य भी लोगों को उपदेश देना ही है। रजबीर और प्रेम मोहिनी की भारतेन्दु लिखित प्रस्तावना में सुबहार इनका स्पष्ट उल्लेख करता है। वस्तु विन्यास 'हरिष-निकम' मंचाद आदि की दृष्टि से इन नाटकों में भारतेन्दु काल के अन्य नाटकों से कोई वैशिष्ट्य नहीं।

'वस्तु' प्रेम मानव की एक सामान्य प्रवृत्ति है और संसार के अधिकांश नाटक इसी का आधार बनाकर लिखे जाते हैं। प्रेम के स्वरूप में युग विन्तन के अनुसंग परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक विचारधारा इसका विस्तेषण अपने दृष्टिकोण से करती है। भारतम्भु काल में रीतिकासीन परम्परा के अन्वेषों के कारण रीतिकासीन रोमांस के छिन्न प्रेम की स्पष्ट भावक मिलती है। युग के विकास के साथ परबर्ती नाटकों में प्रेम के स्वरूप में भी अन्तर था पथा। त्रिवेदी युग के मुधारबाद में इस धारा का स्वरूप आदर्शवाद में बदल गया जिसकी स्पष्ट छाप प्रभाव का नाटकों में मिलती है। लक्ष्मीनारायण मिश्र के सामाजिक नाटकों में भी स्वच्छन्दतावादी पात्रों का समावेश हुआ है परन्तु इनकी स्वच्छन्द

१ हिन्दी नाटक : डा. बन्धनसिंह पृ० ४

२ हिन्दी साहित्य इन्स्टीट्यूट दिल्ली, पृ० ४०५



प्रकृति रीतिकानीय रोमांच से सर्वथा भिन्न है। इस स्वच्छन्द प्रकृति का विवेचन दो पारंपार्य शिक्षा और पारंपार्य संस्कृति के सम्पर्क के प्रतिरिक्त विज्ञान और उद्योग के विकास से उत्पन्न व्यक्तिवाद उपयोगितावाद और बुद्धिवाद के सम्बन्ध किया जा सकता है।

### ग्रहसन

ग्रहसन भारतेन्दु-युग के नाटकों की प्रधान विशेषता है। संस्कृत के ग्रहसनों का मुख्य उद्देश्य हास्य-विमोच की सृष्टि करना था परन्तु हिन्दी में इनका उद्देश्य सत्ताकीर्ण सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक कुरीतियों और दोषों पर हास्य मिश्रित व्यंग्य करना हो गया। सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से वैचारिक अंधता का यह युग इनकी सर्वना के अनुकूल ही था। एक ओर नवीन विचारों के आसक्त में प्राचीन कठिनों और परम्पराओं पर श्रद्धा किए गए, दूसरी ओर पारंपार्य सम्यता के सम्बन्ध में उठने वाले सोग भी व्यंग्य और हास्य के आलम्बन बने। पहले प्रकार के ग्रहसनों के आलम्बन हुए अन्धविश्वासी कर्मिवादी वर्ग की ओर में अपना अस्मू सिद्ध करने वाले एवं पुरोहित वर्गद्वारा वेदवादादी मुख्य और दूसरे प्रकार के ग्रहसनों के मुख्य आलम्बन हैं पारंपार्य संस्कृति में दूरे हुए नवविधित। इस काल के लेखकों की चिन्ताधिसी ने इन नाटकों के विकास में विशेष सहयोग दिया।

इस काल के अवर्तन का श्रेय भी भारतेन्दु को ही है। उनके 'बैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (१८७१) 'विपश्य विपसीयवम्' (१८७५) 'अम्बर नमरी' (१८८१) नाटक बहुत लोकप्रिय हुए। इसके प्रतिरिक्त देवकीनन्दन विपाठी का 'जब नार सिंह की' (१८८१) 'बैल का टके को' 'एक एक को दीन दीन' (१८७२) 'कलियुगी भवेऊ' (१८८५) राजाधरमोस्वामी का 'बूढ़े मूँह मुँहास' (१८८७) किशोरीलाल गोस्वामी का 'बीपट भेट' (१८९१) और प्रताप नारायण मिश्र का 'कल कौतुक' भी अधिक प्रसिद्ध हुए। इनमें भारतेन्दु की के नाटकों के व्यंग्य अपेक्षाकृत अधिक तीव्र एवं हास्य उल्लेखोक्ति का और दृष्टि है।

द्वितीय काल में ग्रहसनों के विषयवस्तु और शैली का बहुत कुछ विकास हुआ। प्रमुख विषय वे एवं पुरोहित और वेदवादादी मुख्य प्राधि। इसके प्रतिरिक्त इस काल के ग्रहसनों में नकील तथा काट्टरों और जनोपार्जन के दृष्टित उपायों सुधारकों तथा प्रचारकों नए फैसल के प्रेमी नवयुवकों और नवयुवतियों राजबहादुरों और आगरेदी मैजिस्ट्रेटों वैद्याधों तथा उनकी बेवफाई, ब्राह्मणों के पातक तथा साधुओं के नीच व्यवहार और अविचार प्रादि पर हास्य और

विषयों से पूर्ण हिन्दी नाट्य परम्परा

व्यंज की सृष्टि की गई है।<sup>१</sup>

इस काल के प्रमुख प्रहसन हैं श्री० पी० श्रीवास्तव के 'उलट फेर' दुमहार धारमी 'गढ़बढ़भण्डा' 'भरवानी घोरत', गोविन्दबस्मम पन्त की 'कजूस की खोपड़ी' बलीमाव भट्ट का 'भबड़ बौधों' बिबाह बिबाधन' मिस धमरीवा' बेचन रानी उग्र का 'उग्रक' तथा 'बार बेचारे' श्रीर सुदर्शन बा 'घानेरी बैबिस्ट्र' आदि। श्री० पी० श्रीवास्तव के नाटकों में पूरक हास्य की सृष्टि है। सुदर्शन भट्ट और उग्रजी की रचनाओं में छक्करोटि के तथा छिप्ट हास्य और तीखे व्यंज की कमी नहीं परन्तु इन्होंने बहुत बड़े प्रहसनों की रचना की है। 'इन प्रहसनों ने अपने काल में यथार्थवादी नाटकों के लिए मार्ग प्रशस्त किया था। इस काल के समस्त-नाटकों के लिए जनता का तैयार कर दिया।'<sup>२</sup>

### सामाजिक नाटक

मारोन्नु कास के सामाजिक नव-जागरण में नाटककार सामाजिक समस्याओं पर विचार करने के लिए भी प्रवृत्त हो गए थे। उत्पत्तीन समस्याओं का मुख्य केन्द्र नारी-समस्या की जिसके मूल में प्राचीन आदर्शों और नवीन विचारों का सम्मिश्र मुधारवसी दृष्टिकोण था। एक ओर पतिविष्ठा की प्रतिष्ठा की गई तो दूसरी ओर बाल-विवाह पद-प्रथा का विरोध और स्त्री शिक्षा तथा 'बिबाह बिबाह' आदि का समर्थन किया गया। इस काल के प्रमुख सामाजिक नाटक हैं बालकृष्ण भट्ट का 'जैसा काम वैसा परिणाम' (१८७७) रामाकृष्ण दास का 'दुःखिनी बाला' (१८८०) लाला बहादुरदास वैद्य का 'कमल मोहिनी मधुरविह नाटक' (१८८९) और बाबू गोपाल राम महमरी का 'बिबाह बिबाह'। 'जैसा काम वैसा परिणाम' में एक ओर बहू नारी के पतिव्रत की प्रतिष्ठा की गई है वहीं दूसरी ओर बड़े प्रभावोत्पाक रूप से मरिदापान और वैश्यामन के बुरे परिणामों को दिखाया गया है। 'दुःखिनी बाला' में बाल-विवाह की मानसिक परिस्थिति का चित्र स्पष्ट करते हुए बिबाह बिबाह की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। प्रविधि की दृष्टि से यह नाटक विशेष महत्व नहीं रखते। परन्तु इनसे यह स्पष्ट थाभास मिलता है कि नाटककार सामाजिक समस्याओं पर विचार करते हुए उनके समाधान के प्रति भी जागरूक होने लगे थे।

१. हिन्दी पत्रक सप्तिह का जालोचनार्थक प्रतिपाद : देवपाल कपरा 'बिबाह'

१० १८१

२. हिन्दी पत्रक सप्तिह का जालोचनार्थक प्रतिपाद : देवपाल कपरा 'बिबाह'

१० १८१

डिबेही-युग में अन्य सामाजिक नाटक भी लिखे गए। इनमें जमुनादास मेहरा का 'पाप परिणाम' मिश्र बन्धुधर्म का 'नेत्रोग्मीलन' (१९१५) मुंसी प्रेमचन्द का 'संघाम' (१९२२) लक्ष्मणसिंह का 'गुलामी का मजरा' (१९२४) जयलाल प्रसाद जतुर्बेदी का 'मधुर मिसन' (१९२३) धीर धमानन्द का 'समाज' (१९३०) उल्लेखनीय हैं। 'पाप परिणाम' से बेरमायमन एवं स्वच्छन्द प्रेम प्राप्ति अनेक दुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है। 'समाज' में अछूतों-छात्र के सम्बन्ध में प्रेम की समस्या का चित्रण किया गया है। 'संघाम' में प्रेमचन्द ने जमींदारों और किसानों के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इन नाटकों में यथार्थवादी आकाशचरित्र है और सभी चरित्र यथार्थ और सच्चे हैं।

कसा की दृष्टि से यह नाटक कोई महत्त्व नहीं रखते। उनकी यथार्थवादिता ही उनकी दुबलता है। 'यथार्थवादी नाटकों में नाटककार एक सामान्य चरित्र लेकर प्रतिदिन के जीवन का यथार्थ चित्र खींचने का प्रयत्न करता है। उन्हें पद पद पर यथार्थ जीवन के अनुकरण की बुन में जीवन के अनावश्यक पक्षों के चित्रण की प्राप्ति सर्वदा बनी रहती है और कोमल उद्गारों तथा भावुक सन्तों के लिए उपयुक्त अवसर नहीं होता। यथार्थवादी नाटकों को प्रभावपूर्ण अन्तिमामी और आकर्षक बनाने के लिए एक अत्यन्त आवश्यक बात अर्थत्व और आसन्निकता (Significance) है। आसन्निकता से रहित यथार्थवादी नाटक इतना ही अन्तर्गत (Prosaic) और प्रभावहीन होता है जितना कवितापूर्ण भाषों तथा कोमल उद्गारों से रहित यथार्थवादी नाटक। इन सामाजिक और राजनीतिक नाटकों में अन्तिमामी तथा अन्तरीय आसन्निकता का अत्यन्त अभाव मिलता है।'

### पारसी रंगमंच

इन नाटक-काराओं को प्रभावित करने वाली दो भाटाएँ हैं—पहली पारसी रंगमंचीय भारा और दूसरी अंगुबाह की भाटा। पारसी रंगमंच का आगमन भारतवर्ष में हिन्दी के साहित्यिक नाटकों के आधिपत्य के साथ ही हुआ। १८७० ई. में थोरेजिनस थियेट्रिकस कम्पनी की स्थापना हुई। इस परम्परा न बरेकू रंगमंच के स्थान पर थोरेजिनस रंगमंच की भारतीय आकाशचरित्र के अनुकूल अस्थापना की। नाटकों का आकाशचरित्र सर्वकाम्य की शीर्षी खेड़काड़ और अछूत तथा आकाशचरित्र प्रेम रक्षा कथागत पारसी की प्रेमकथाओं अथवा साहित्य की रोमांचकारी घटनाओं नाटकों और आकाशचरित्रों तथा पुराणों की मनीरवक कथाओं

से सिधे और मनोरंजन की सामग्री जगता में प्रचलित बैरगाओं नीच माध-यानों तथा मोर्छों से उभायी थी। इस परम्परा में मनोपार्जन के लक्ष्य में नाट्यकला का वास्तविक स्वरूप न उभर सका। इससे एक हासि यह हुई कि जनसाधारण में नाटकों के प्रति धारणा से ही एक मतवत धारणा बन गई और वे इसे धार्मिक भावनाओं का प्रेरक तथा निवास की सामग्री मानने लगे। इसी संस्कार के कारण राष्ट्रीय रंगमंच न बन सका और उसी के फलस्वरूप साहित्यिक नाटकों का विकास भी द्रुतगति से न हो पाया। इस चार में धीसखी सताखी में आकर जन साधारण को आकृष्ट करने के लिए पौराणिक आख्यानों की भी आधार बनाया गया परन्तु कला के स्वरूप में विशेष भन्तर न आया। याने चल कर समन्वित क निर्माण के कारण तो इसका विकास ही मन्द पड़ गया।

### अनुवाद नाटक

अनुवाद करने की प्रवृत्ति हिन्दी नाटक-क्षेत्र में प्रारम्भ से ही चल पड़ी थी। ये अनुवाद अधिकतर संस्कृत बंयसा और अंग्रेजी नाटकों से होते थे। भारतेन्दु-नाथ में संस्कृत नाटकों के अनुवादों में हिन्दी नाटक-क्षेत्र को प्रभावित किया और संस्कृत नाट्यशास्त्र के स्थूल नाटकीय विधानों—नाम्ही सूत्रधार प्रस्था बना आदि का पालन हुआ। बंयसा से गिरिधर घोष और डी० एन० राय के नाटकों का अनुवाद हुआ। गिरिधर घोष पारम्पर्य के चर्चार्थवादी नाटकों से प्रभावित थे और डिबेन्द्रनाथ राय ईश्वरपीथर के तथा संस्कृत नाट्यशास्त्र के अतिवृत्त बंयसाकरण में। हिन्दी में नाट्यकला में गिरिधर घोष का अनुकरण न हुआ परन्तु डिबेन्द्रनाथ राय के ऐतिहासिक नाटकों का विशेष प्रभाव पड़ा। वास्तव में पादपाठ्य नाट्य-कला का हिन्दी नाटक पर सीधा प्रभाव न पड़ कर डिबेन्द्रनाथ राय के माध्यम से ही पड़ा। अंग्रेजी नाटकों का भी अनुवाद हुआ परन्तु इससे अंग्रेजी साहित्य की जानकारी तो बढ़ी पर नाट्य-कला पर सीधा प्रभाव न पड़ा। हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी-साहित्य-शास्त्र का प्रभाव अंग्रेजी-जानने वालों द्वारा ही पड़ा। अनुवादों में तो अंग्रेजी न जानने वालों की अंग्रेजी-साहित्य का परिचय मात्र करवाया।

इस प्रकार मनी चाराओं की कला के बाह्य तथा आन्तरिक स्वरूपों के विवरण के बरबाद एक बात स्पष्ट होती है कि जिस नाटक के स्वरूप को स्थिर करने के लिए भारतेन्दु नाथ में-मिथल मिथल प्रयोग हुए उसकी चर्चार्थवादी चार का स्वरूप १८११ ई० के लगभग 'बुद्ध-बन रहन और चरमाता आदि नाटकों' के निर्माण के साथ स्थिर और पुष्ट रूप धारण करने लगा। इस स्वरूप का धर्म

विकास प्रसार की माटम-कला में हुआ। इसमें आदर्शवाद और स्वच्छन्दतावाद के साथ कवित्वपूर्ण वातावरण का अपूर्व समन्वय है और व्यक्ति-वैविध्य, अमृत हृन्द तथा सर्वत्र इसकी प्रयुक्त विशेषताएँ हैं। यथार्थवादी चारा की अवस्था निम्न स्तर पर होने पर भी विकास के लिए बीच वर्तमान, है। पुन-चेतना के विकास ने इसमें विशेष सहयोग दिया और यथार्थवादी चारा में लक्ष्मीनारायण मिश्र के साप्ताहिक नाटकों का आबिर्भाव हुआ।

द्वितीय अध्याय

## सैद्धान्तिक विवेचन

- (क) नाटक
- (ख) समस्या-नाटक
- (ग) मिश्रजी के नाटकों का वर्गीकरण



## नाटक परिभाषा और तत्त्व

नाटक क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर से देखने में जितना सरल और स्पष्ट प्रतीत होता है, साहित्यिक दृष्टि से उसे किसी निश्चित परिभाषा में बाँधना जितना ही कठिन है। विश्व-साहित्य में नाटक बड़े आने वाले सभी रूपों में इतना प्रबल है कि इनके आधार पर नाटक के साहित्यिक स्वरूप की परिभाषा स्तुत करना भी अपने आप में एक कला है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में इसके दो भेद हैं और प्रत्येक भेद के अलग-अलग रूप विभाग एवं विशेषताएँ हैं और इन भेदों की भी पुनः के अनुरूप निम्न-विषय परिभाषाएँ की गई हैं। डा० दशरथ गोखले समूचे संस्कृत नाट्यशास्त्र के सर्वोत्तम के पश्चात् इसी परिभाषा भेद को लक्षित करते हुए लिखते हैं "विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने युग के अनुरूप नाटक की परिभाषाएँ दी हैं अतः कई दृष्टियों से इसके स्वरूप की रचना हो सकी है।"<sup>१</sup> संस्कृत के सभी नाट्य रूपों में ये भेद वर्ण्य विषय पात्र एवं पात्रों को लेकर होने के कारण बाँझ हो अधिक हैं कोई तात्त्विक विरोध नहीं क्योंकि सभी नाट्यरूपों का उद्देश्य मन-मुग्ध ही है। परन्तु वास्तव्य नाट्यशास्त्र में यह अन्तर तात्त्विक भी है। नाटक के उद्देश्य में मूर्तत्व न होने के कारण उस की परिभाषा तथा स्वरूप में भी स्वाभाविक रूप से भिन्नता पाई जाती है। वही नाटकों के कई वर्ग बन गए हैं। इन्हीं वर्गों का विवेचन करते हुए बर्मनी के प्रसिद्ध आलोचक जार्ज जीन लाचन लिखते हैं "आचार्यों द्वारा नाटक की परिभाषा निश्चितन एक दर्शन विभिन्न रीतियों से की गई है, किसी का कथन है, कि नाटक कार्य का मति देने वाले चरित्र पर आधारित हुना चाहिए, दूसरे ने इसे मानव चरित्र का नहीं प्रत्युन् काय एवं जीवन का अनुकरण मानते हुए चरित्र चित्रण को कार्य की घरेला गीत सिद्ध किया। तीसरे ने इसे मानव संकल्प और बचावों के मध्य संघर्ष कहा। हम्पाथि स्क्वायि।"<sup>२</sup> इस प्रकार नाटक के उद्देश्य को

<sup>१</sup> मद्रास मीठा डा दशरथ गोखले पृ० १०५

<sup>२</sup> Drama has been strictly defined by the signalists in a dozen different



लेकर पारचात्य नाट्य साहित्य में नाटकों के कई नमूने मिल गए हैं। उसमें से प्रभुत्व होने पर रूप विधान में भेद हुआ स्वाभाविक है। इस रूप-विधान की विभिन्नता के ऐतिहासिक कारणों का विश्लेषण करते हुए रोमरूढ़ पीकाक लिखते हैं, "समाज व्यवस्था व्यक्तियों की परिस्थितियों के भेद के कारण नाटक के प्रत्येक वर्ग ने अपना मौलिक रूप-विधान चुना है जिससे सिद्ध होता है कि नाटक प्रत्येक व्यक्तियों के लिए अनेक विषय रहा है।"

इसमें अधिक वैधिम्य के विश्लेषण में न उमझते हुए कुछ सामान्य आरम्भिक विधेयताओं के आधार पर नाटक के स्वरूप को इस प्रकार देखा जा सकता है

'नाटक में कार्य एवं नति से युक्त एक कथा हो सत्यता एवं मानवीय आधार पर पात्रों का चरित्रांकन हो धर्मनिरपेक्ष के लिए उपयुक्त संवाद-एवं वृत्त-विधान हो और अन्त में इन सबके संयोजन का कुछ उद्देश्य हो धर्म हो वा कि प्रेक्षक के हृदय एवं नस्तिष्क को स्पर्श करे।'

इन्हीं स्मृत विधेयताओं के आधार पर नाटक के स्वरूप को समझा जा सकता है और नाटक की कला के परीक्षण एवं विश्लेषण को अधिक वैज्ञानिक एवं सुबोध्य बनाने के लिए नाटक को कुछ तत्त्व निर्धारित किए जा सकते हैं। इन्हीं तत्त्वों के आधार पर नाटक को समीक्षा की जाती है। परन्तु इन तत्त्वों के निर्धारण के बारे में भी विद्वानों का मतभेद नहीं है। फिर भी हिन्दी नाटक को कृष्टि में रखते हुए हिन्दी नाटक पर प्रभाव डालने वाले नाट्यशास्त्रों (संस्कृत एवं पारचात्य) के आधार पर इन तत्त्वों का निर्धारण किया जा सकता है।

हिन्दी के अधिकारी विद्वानों के अनुसार संस्कृत नाट्यशास्त्र में नाटक के तीन तत्त्व हैं—वस्तु, नेता और रस। परन्तु विद्वत् सीताराम चतुर्वेदी इन तत्त्वों पर भाष्य करते हुए अनेक नाट्यशास्त्रों में लिखते हैं —

"बहुत से भाष्यायों में वस्तुवस्तु के वस्तु नेता रसस्तेषां भेदको' [वस्तु, नेता अर्थात् नायक और रस के कारण उनके (वपकों-उपकर्मकों के) भेद किए गए

ways. Drama says one "must be based on character and the action proceed from character" Drama stipulates another "is not an imitation of men but of an action and of life, character is subsidiary to action. Drama promulgates still another is the struggle of will against obstacles and so on and so on.

—The European Theories of Drama Page 03

Each type have an original way of associating dramatic form with a view of the life held by the society or an individual and from them we learn forcibly that Drama has been many things to many people

—The Art of Drama Ronald Peacock, Page 154

है] इस व्यापार पर वस्तु, नेता और रस को मूल से नाटक का तत्त्व मान लिया है। वास्तव में कथकों और उपकथकों का श्रेष्ठ इसी व्यापार पर है कि इनमें या तो किसी प्रकार की विशेष वस्तु है या कोई विशेष प्रकार का नायक है या किसी विशेष प्रकार का रस है। जैसे प्रकरण का नायक 'धीरधातु' होता है। नाटक की कथावस्तु इतिहास-प्रसिद्ध होती है। और घट में करुण रस की प्रधानता होती है। घट वस्तु नेता और रस को कथकों का तत्त्व मानने की भूल नहीं करती चाहिये।<sup>१</sup>

यह सम्बन्ध तत्त्व निर्धारण के लिए तत्त्व का धर्म स्पष्ट करते हुए निकलता है। "किसी वस्तु को तत्त्व कहने का यह अभिप्राय है कि यदि उनमें से एक तत्त्व भी निकल जाय तो वस्तु निरर्थक हो जाए। तन्मयी से किसी वस्तु के अस्तित्व का बोध होता है।"<sup>२</sup> उन्होंने तत्त्व की इस परिभाषा के आधार पर नाटक के तीन तत्त्व माने हैं—कथा, संवाद और रस निर्देश। सामान्य प्रचलित देश-काल चरित्र विभिन्न और ऐसी को तत्त्वों के सम्बन्ध में रस के कारण का विवेचन करते हुए ने निकलता है—"कथा के दो कारण होते हैं घटना और पात्र। कथा काय है, घटना और पात्र कारण है इसलिए कथा ही मूल तत्त्व है। देश काल कोई तत्त्व ही नहीं है। यह तो कथावस्तु और पात्र दोनों में निहित है। कोई भी घटना या पात्र किसी विशेष देश या काल से ही सम्बन्ध होने कथा स्वयं उनका विवरण देवी। देश और काल वस्तु के ही अंग हैं वे कोई अलग तत्त्व नहीं। ऐसी भी कोई तत्त्व नहीं है। यह तो संवाद का सामन है। ऐसी और संवाद का अलग तत्त्व मानना ही बड़ा भागी भ्रम है और उद्देश्य तो साम्य है वह तत्त्व देने को सक्ता है।"<sup>३</sup>

परन्तु यदि तत्त्व से यही अभिप्राय लिया जाय और अस्तित्व-बोध कहने काय कम से कम तत्त्वों को ही तत्त्व माना जाय तो पण्डितजी के इन तत्त्वों को भी और सीमित किया जा सकता है। संवाद और रस-निर्देश के स्थान पर अभिनय को तत्त्व मान लेना से नाटक का अस्तित्व स्थिर रहेगा क्योंकि अभिनय के नाटिक भेद में अन्तर्गत तथा साहित्यिक और धार्मिक में रस-निर्देश स्वयं या कार्य है। इस प्रकार भी तत्त्व हुए कथा और अभिनय। किन्तु तत्त्वों के आधार पर देश तत्त्वों को काटा गया है तन्हीं तत्त्वों को यदि बोझ और 'जीवा' जाय तो एक ही तत्त्व रह जाएगा और यह साहित्यिकपक्षकार विवेचना की परिभाषा से भिन्न नहीं

१. अभिनय सम्प्रदाय में भीतरम भण्डारी, पृ० ७२

२. यही पृ० ७२

३. यही पृ० ७२

होना। अर्थात् 'तदुपारोपितु स्वकम् अथत् रंगमंच पर किसी पात्र का राम या सीता का आरोप करके जो अभिनय दिखाया जाता है उस समस्त प्रक्रिया को अपक की सजा दी जाती है।'<sup>१</sup>

इस प्रकार स्वक से एक ही तत्त्व यह आया 'आरोपित अभिनय की प्रक्रिया'। इसमें वस्तु तत्त्व स्वयं ही समाहित हो जाता है क्योंकि वह आरोप पात्र की किसी घटना आदि का ही होता है।

वास्तव में तत्त्व की यह परिभाषा ही आत्मक है। तत्त्व अस्तित्व का बोध करने के लिए नहीं प्रत्यक्ष क्लृप्तिक सौष्ठव को प्रकट करने के लिए कवि के लिए अवसर है। नाटक किसी भी कथा का संचार के माध्यम से पात्रों का अभिनय मात्र नहीं है। यह सब मिलाकर भी बिना सौष्ठव के नाटक नहीं बन सकते। अतः यह अस्तित्व-बोध ही कैसे जब जबके मिल जाने पर भी नाटक का अस्तित्व नहीं बनता। अतः यह मानना पड़ेगा कि तत्त्व तो नाटककार को सौष्ठव प्रकट करने के लिए निर्दिष्ट दिखाएँ हैं जिनमें वह अपनी प्रतिभा के बल से नाटक में क्लृप्तिकता ला सकता है। कथावस्तु की मौलिकता और विन्यास चरित्र चित्रण में मूढमत्ता भाषा में स्वाभाविकता एवं चरित्र ही नाटक में काव्यत्व के मापदण्ड हैं। जिनकी अधिक कुशलता से इन तत्त्वों का घटन किया जाएगा एवं इसमें सौष्ठव होगा अतः ही नाटक अधिक सफल कहा जाएगा। इस दृष्टि से ही नाटक के तत्त्वों का निर्धारण किया जाना चाहिए।

अथर्वक के वस्तु नेता रसस्तेषा भेदको को यदि स्वक के भवों के आधार पर ही कहा मान लिया जाए तो मानना पड़ेगा कि नाटक के तत्त्वों का इस प्रकार का प्रत्यक्ष विस्लेषण संस्कृत नाट्यशास्त्र में नहीं हुआ। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने इन विद्या में विचार ही नहीं किया। नाटक के विन-विन घटो की विवेचना उन्होंने विस्तार से की है। उन्हीं में क्लृप्तिकता दिखाई जाए, ऐसा उन्हें हृष्ट या इसलिए उन्हें ही संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का तत्त्व मानना मुक्तिपुत्र होता है।

संस्कृत नाट्यशास्त्र में कथावस्तु का विचार प्रति विस्तार से किया गया है। अतः कथावस्तु नाटक का प्रथम तत्त्व हुआ। चरित्र-चित्रण के विवेचन में नाटक में सम्भावित प्रत्येक पात्र यहाँ तक कि बास-बाधियों के भी वर्म और स्वभाव का विचार से उल्लेख किया गया है ताकि चरित्र-चित्रण में स्वाभाविकता न आए। नायक-नायिका भेद के प्रति विस्तार के मूल में चरित्र चित्रण में प्रभा बोधकता वाला ही तो है। अतः चरित्र-चित्रण को तत्त्व में मानना किठनी

वही भूष होगी। अतः दूसरा तत्त्व हुआ चरित्र-चित्रण।

नाट्य-कृतियों का विवेचन भी पाचार्यों ने मनोयोग से किया है। इन कृतियों को वर्तमान आलोचना शास्त्र की भाषा में 'माया-सीसी' नाम से अभिहित किया जा सकता है। अतः तीसरा तत्त्व हुआ 'माया-सीसी'।

अभिनय का भी नाट्यशास्त्र में विवेचन है। भरत ने इसका विस्तार से विवेचन किया है परन्तु यह सांग विषय रंगनिर्देशक का है। भरत मुनि स्वयं नाटकों का संघासन एवं निर्देशन भी करते थे इसलिए उनका इस तत्त्व को विस्तार देना स्वाभाविक है। अभिनय की सम्पू्ण विवेचना पढ़ने के पश्चात् उसे कवि (नाटककार) के उपयोग का वहीं कहा जा सकता। काव्यिक सात्विक और आहार्य ता स्वरा स्पष्ट है कि नाटककार से अधिक सम्बन्ध नहीं रखते। आधिक अभिनय में भी स्वर व्याकरण और छन्द की दृष्टि से अनुकरण की विधि ही बताई गई है। 'भरत मुनि ने वाणी के अभिनय में स्वरशास्त्र व्याकरण तथा छन्दशास्त्र का परिचय कराया है जिससे कि अभिनेताओं को स्वरदि का पूरा पूरा ज्ञान हो जाय। जोसने और पाठ करने की विधियों का भी उल्लेख हुआ है और रसों के अनुकूल छन्दों और रागों का भी निर्देश किया गया है।' अतः अभिनय का सम्बन्ध रंग निर्देशक से मानना ही अधिक युक्तिसंगत है। कवि का काम तो पात्रों की क्रियाओं और संवाधों में स्वाभाविकता का देना मात्र है ताकि वे अभिनेय बन सकें। इसमें संवाधों का छोटा होना उनकी अभिनेयता रसानु-कूलता आदि माया-सीसी के अन्तर्गत आने और एक-बोझना दृश्य-विधान आदि कला-विन्यास के विषय हैं। अतः अभिनय को संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार तत्त्व मानना युक्तियुक्त नहीं।

देव-काल के चित्रण को भी अन्त में अधिक महत्त्व नहीं दिया गया परन्तु नाटक के कथानक में संबोधता और पात्रों में स्वाभाविकता की ओर बितना ध्यान दिया गया है उससे यह स्पष्ट है कि उन्होंने इस तत्त्व की अवहेलना नहीं की। अतः इन अग्रपक्ष विवेचन के कारण इसे संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक का तत्त्व नहीं माना जा सकता।

उद्देश्य के विवेचन के लिए संस्कृत नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित काव्य के प्रयोजन और रस भीमांसा का विवेचन करना पड़ेगा। उद्देश्य के विषय में पादशास्त्र पाचार्यों में कितना हो भिद रहा हो, भारतीय पाचार्य अपनी सांस्कृतिक एवं धार्मिक परम्पराओं के कारण सदा एकमत रहे हैं। समय-समय सभी पाचार्यों

में अपने स्वयं के धारम्य में काव्य के प्रयोजनों के बारे में विचार किया है। उस क मर्तों का निश्लेषण करने के पश्चात् हम प्रयोजनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।<sup>१</sup> कुछ काव्य प्रयोजन जैसे धामन्य प्रीति, सद्यः परनिवृत्त धर्मव्यवहार आदि व्यक्तिगत उदात्त सिद्धियाँ हैं और रस के परिपाक से सम्पन्न होती हैं। 'येप सोकोपदेशजननं व्यवहारविद् विवेतरयत्ये' बर्म इति आदि सामाजिक उदात्त सिद्धियाँ हैं जो लोकमनस के धर्मगत जाती हैं और काव्य में स्वयं व्यञ्जित होती हैं। जैसे तो धामन्य को ही मूमभूत प्रयोजन माना गया है<sup>२</sup> परन्तु फिर भी येप व्यञ्जित होने वाले प्रयोजनों की व्यवहेमना नहीं की गई। यद्य रस-सृष्टि को ही मुख्य उद्देश्य मानते हुए स्वयं सामाजिक लोकमनस को भी योज उद्देश्य मानने में कोई बाधा नहीं।

रस के विषय में एक बात और भी विचारणीय है रस की अपने कुछ रूप में लोकमनस की प्राप्ति से युक्त है। प्रसारकी रस के इमी लोकमनस रूप की व्याख्या करते हुए लिखते हैं— 'रस में लोकमनस की रूपमना प्रकटन रूप से व्यञ्जित है। सामाजिक स्वरूप रूप से वही किन्तु धार्मिक सूक्ष्मता के आधार पर।

रसवाद में वाचनारमकतया स्थित मनोवृत्तिवाँ जिनके द्वारा चरित्र की सृष्टि होती है। सामाग्रीकरण के द्वारा धामन्यमय जना की जाती हैं। इसलिये वह वाचका का संशोधन करके उनका साधारणीकरण करता है। इस संशोधन के द्वारा जिस अभिन्नता की वह सृष्टि करता है उसमें व्यक्ति की विविधता विविधता हट जाती है और सब ही सब तरह की मानवाधों को एक चरित्र पर हम एक मानवीय वस्तु कह सकते हैं। सब प्रकार के भाव एक दूसरे के पूरक बन कर चरित्र और वैविध्य के आधार पर रूपक बनाकर रस की सृष्टि करते हैं और रसवाद की यही पूर्णता है।<sup>३</sup> इसलिये यदि इस

१ अतः— बर्म वदरव्यनुष्यं विंति बुद्धिं निवेमन् ।

लोकोपदेशजननं नामवदन् मनसति ॥ (वाचनारम्य)

वाचन—वर्णनकामलोकेषु वैवचर्यं कलायु यः ।

मोति करोति कर्षिं च तानुं नाम निवेमन् ॥ (अध्यात्मरस)

मन्त्र—कर्म वदते कर्मज्ञो ज्येष्ठाभित्ति शिरेरवयवे ।

मन्त्र पर निवृत्तये अन्त्यात्मिकोपदेशबुद्धिः ॥ (काव्यप्रकाश)

कुण्ड—बहुर्वर्णं कलात्मकमप्यभिन्नं यद्विद्वत् ।

वाचनम् एवेयं च-तत्त्वमकाशं विद्वन्ने ॥ (वक्तोक्तिमीश्वर)

२ मन्त्र प्रयोजन मीतिनृत्तं उक्तमकार्येण एवात्यन्तमन्यवृत्तं विविधं वेद्यन्तरा-  
मन्त्रः । (काव्यप्रकाश २।२ की हृति)

३ अर्थात् रसवाद कर्म और कला तथा भाव निवेमन् १। २। २६

माधार पर रस को भी सौकर्ममय की उदात्त सिद्धि मान लिया जाय तो अनुचित न होगा।

अतः निष्कर्ष निकला कि काव्य में साकर्ममय के लिए दो तत्त्वों का नियोजन होता है एक भाव तत्त्व जो कि प्रमुख है एवं जिसके परिपुष्ट हान पर रस परिपाक होता है। बा अपने ध्यान के ध्यासाधन में ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जाता है। दूसरा विचार तत्त्व जो स्पष्टतः सौकर्ममय व सामाजिक सांस्कृतिक आदि बाह्य कर्षों को पुष्ट करता है, परन्तु काव्य में प्रकटन एवं निपुड रहता है और व्यञ्जना के माध्यम से व्यक्तित्व होता है। दोनों के अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक का सम्बन्ध व्यक्ति से है दूसरे का समाज से। जैसे ता अपने उदात्त स्वभाव में व्यक्ति और समाज का द्वैत जन्म नहीं कहा जा सकता परन्तु द्वैतत्व के लिए एक विभाजक रेखा (जैसे ही बहू स्तूत हो) माननी ही पड़ती है। अतः संस्कृत नाट्यशास्त्र के उद्देश्य की चर्चा में व्यक्तिगत ध्यान और सौकर्ममय की भावना दोनों की ही सम्मुख रचना युक्तियुक्त होमा। एक का आधार भाव है तो दूसरे का निपुड विचार। अतः उद्देश्य के अन्तर्गत दो तत्त्व हुए भाव तत्त्व और विचार तत्त्व। इस प्रकार संस्कृत नाट्यशास्त्र में कुल चार तत्त्व मानना समीचीन है—वस्तु चरित्र-चित्रण भाषा-शैली तथा उद्देश्य (जिसमें भाव तत्त्व तथा विचार तत्त्व का समावेश है)।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में अस्तु ने आसरी के छह धर्म माने हैं—कथानक चरित्र-चित्रण पर रचना विचार तत्त्व दृश्य विधान और गीत।<sup>१</sup> इसमें विचार तत्त्व अपने व्यापक अर्थ में भाव तत्त्व को भी समाहित किए हुए है। 'विचार तत्त्व का अर्थ व्यापक है इसमें बुद्धि तत्त्व का आबाम्ब होते हुए भी भाव तत्त्व का अन्तर्गम है।'<sup>२</sup> पर इन्का और पीठ ना भाषा शैली व अन्तर्गत आते हैं। दृश्य विधान को स्वयं अस्तु ही अधिक महत्त्व नहीं देते। उनका कथन है 'नाटक मूलतः काव्य है रंग-कीमत्त से उसके आकर्षण में बुद्धि घबराती है किन्तु मूल प्रभाव के लिए वह अनिवाह नहीं।'<sup>३</sup>

अर्थात् पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में विद्वानों ने नाटक के छह तत्त्व माने हैं—वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, शैली, रस-काम और उद्देश्य। इसके अतिरिक्त इन्द्र अर्थात् भाव प्रतिपाद का भी अधिक महत्त्व प्राप्त होने के कारण किसी-किसी ने हमको भी अलग में तत्त्व मान लिया है।

१. मूक्तिका अस्तु का काव्यशास्त्र भा० अनेक,

२. अर्थ, ५० सं० ११०

३. अर्थ, ५ सं० ११६

ने अपने राज्य के आरम्भ में काव्य के प्रयोजनों के बारे में विचार किया है। उन के मतों का विश्लेषण करने के पश्चात् हम प्रयोजनों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।<sup>१</sup> कुछ काव्य प्रयोजन जैसे धानम्ब प्रीति सद्य परनिर्बुद्ध धन्वश्चयस्कार आदि व्यक्तिगत उदात्त सिद्धियाँ हैं और रस के परिपाक से सम्पन्न होती हैं। शेष लोकोपदेशजनन, व्यवहारविद् विवेसरसत्तये<sup>२</sup> धर्म हित आदि सामाजिक उदात्त सिद्धियाँ हैं जो लोकमंगल के धर्ममंत प्राप्ती हैं और काव्य में स्वतः व्यञ्जित होती हैं। जैसे तो धानम्ब को ही मूलभूत प्रयोजन माना गया है<sup>३</sup> परन्तु फिर भी शेष व्यञ्जित होने वाले प्रयोजनों की व्यवहेसना नहीं की गई। अतः रस-सृष्टि को ही मुख्य उद्देश्य मानते हुए स्वून सामाजिक लोकमंगल को भी धीन ध्वंस्य मानने में कोई बाधा नहीं।

रस के विषय में एक बात और भी विचारणीय है रस भी अपने कुछ रूप में लोकमंगल की भावना से युक्त है। प्रसादवी रस के इसी लोकमंगल रूप की व्याख्या करते हुए लिखते हैं— 'रस में लोकमंगल की कल्पना प्रच्छन्न रूप से अन्तर्निहित है। सामाजिक स्वून रूप से नहीं किन्तु दार्शनिक सूक्ष्मता के आधार पर।

रसवाद में वासनात्मकतया स्थित मनोवृत्तियाँ जिनके द्वारा चरित्र की सृष्टि होती है। साधारणीकरण के द्वारा धानम्बमय बना भी जाती हैं। इसलिये वह वासना का संशोधन करके उनका साधारणीकरण करता है। इस समीकरण के द्वारा जिस अभिन्नता की वह सृष्टि करता है उसमें व्यक्ति की विविधता विशिष्टता हट जाती है और तब ही मात्र तरह की भावनाओं को एक घटाव पर हम एक माननीय वस्तु कह सकते हैं। सब प्रकार के भाव एक दूसरे के पूरक बन कर चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर रूपक बनाकर रस की सृष्टि करते हैं और रसवाद की यही पूर्णता है।'<sup>४</sup> इसलिये यदि इस

१. पाठ— धर्म धानम्बप्रानुषं हित बुद्धि ध्वंसनम्।

लोकोपदेशजननी साधनमैतत् प्रकल्पति ॥ (नाट्यशास्त्र)

व्याख्य—धर्मार्थकायमोक्षेषु वैचित्र्यं कल्पानु य।

धृति करोति कति य सानु काव्य निवेद्यम् ॥ (काव्यप्रकाश)

व्याख्य—कल्प वासने चरित्रो ज्ञानवादिरे शिवेत्तरसत्तये।

सद्य पर निबुद्धे कल्पप्रतिपत्तिलोपदेशमुख ॥ (काव्यप्रकाश)

कुण्डक—चतुर्के कलात्मकमप्यभिप्रेत्य तद्विहस्य।

वाक्यान्तु रमेन ज-सत्यमलकाय कित्तवने ॥ (कलोक्तिप्रोक्षितम्)

२. सधन प्रयोजन प्रीतिपूर्त सकलव्ययवै रसात्मावलस्यमूर्त वैचित्र्य वैचित्र्यमालम्बम्। (काव्यप्रकाश १।२ की वृत्ति)

३. कर्माकर प्रसाद काव्य और काव्य तथा काव्य निरूप्य ५ सु० ८६

भावार पर हम को भी साधर्म्यमय भी उचित सिद्धि मान लिया जाय ता धनुचित न होमा ।

अतः निष्कर्ष निकला कि काव्य में साधर्म्यमय के लिए दो तर्कों का नियोजन होता है एक मात्र तर्क जो कि प्रमुख है एक जिसके परिपुष्क होने पर हम परिपाक होता है जा अपने प्रामाण्य के साक्षात्कार में बहुमान्य महान्तर कहा जाता है दूसरा विचार तर्क जो स्पष्टतः लोकमनस के सामाजिक सांस्कृतिक आदि बाह्य कर्षों को पुष्क करता है परन्तु काव्य में प्रच्छन्न एक निगूढ रहता है और व्यञ्जना के माध्यम से व्यक्त होता है । दोनों के अस्तित्व को धन्योकार नहीं किया जा सकता । एक का सम्बन्ध व्यक्ति से है दूसरे का समाज से । यदि तो अपने उचित स्वरूप में व्यक्ति और समाज का हित मिल नही कहा जा सकता परन्तु बिभक्तपक्ष के लिए एक विभाजक रेखा (जो ही वह स्वरूप हो) माननी ही पड़ती है । अतः संस्कृत नाट्यशास्त्र के उद्देश्य की दृष्टि में व्यक्तिगत प्रामाण्य और लोकमनस की भावना दोनों को ही सम्पूर्ण रचना मुक्तिपुक्त होना । एक का आधार मात्र है तो दूसरे का निगूढ विचार । अतः उद्देश्य के अन्तर्गत दो तर्क हुए मात्र तर्क और विचार तर्क । इस प्रकार सम्पूर्ण नाट्यशास्त्र में कुल चार तर्क मानना समीचीन है—वस्तु चरित्र-विषय भाषा-शैली तथा उद्देश्य (जिसमें मात्र तर्क तथा विचार तर्क का समावेश है) ।

पारम्पर्य नाट्यशास्त्र में धारस्तू ने सातवी के छह वर्ग माने हैं—कथानक चरित्र विषय पद रचना विचार तर्क दृश्य विधान और नीति ।<sup>१</sup> इसमें विचार तर्क अपने व्यापक धर्म में मात्र तर्क को भी समाहित किए हुए है । “विचार तर्क का धर्म व्यापक है इसमें बुद्धि तर्क का प्राधान्य होते हुए भी मात्र तर्क का अन्तर्भाव है ।”<sup>२</sup> पद रचना और नीति का भाषा शैली के अन्तर्गत आते हैं । दृश्य विधान को स्वयं धारस्तू ही अधिक महत्त्व नहीं दत्त । उनका कथन है ‘माटक मूलतः काव्य है, रस-श्रीमान में उसके आकर्षण में बुद्धि प्रबल होती है किन्तु मूल प्रभाव के लिए वह अनिवार्य नहीं ।’<sup>३</sup>

अधर्षीन पारम्पर्य नाट्यशास्त्र में जिसमें ने नाटक के छह तर्क माने हैं—वस्तु, चरित्र-विषय कथोपकथन शैली देश-काल और उद्देश्य । इसके अतिरिक्त अन्य धर्मार्थ पाठ-प्रतिपाठ का भी अधिक महत्त्व प्राप्त होने के कारण किसी-किसी ने इसको भी ध्यान में रख मान लिया है ।

१ नृसिंह धारस्तू का काव्यशास्त्र भा० नयेन्द्र,

२ पृ० १ स० ११७

३ पृ० १ स० १२४



हिन्दी नाटक संस्कृत और पाश्चात्य दोनों नाट्यशास्त्रों से प्रभावित है। संस्कृत नाट्य परम्परा इसकी पट्टक सम्पत्ति है और पाश्चात्य नाटकों की इस पर गहरी छाप है। अतः दोनों के प्रभाव के अन्तर्गत हिन्दी नाटक का विकास हुआ। संस्कृत नाटक के उद्देश्य तत्त्व के दो प्रमुख रूपों में से हिन्दी नाटककार ने भाव तत्त्व को उद्देश्य के स्थान पर एक साधन मान लिया है। केवल विचार तत्त्व ही उसका अभिप्रेत रह गया है। संस्कृत नाटक का भाव तत्त्व को अपनी रस सिद्ध प्रवृत्ति में जड़ाना उद्देश्य कहलाता था अतः हिन्दी नाटककार द्वारा विचार को दूर करके भाव तत्त्व में ही सीमित कर दिया गया। इस प्रकार उद्देश्य में विचार की स्थिति प्रथम और भाव की द्वितीय हो गई। अतः हिन्दी नाटक के तत्त्व का विवेचन करते हुए उद्देश्य के अन्तर्गत भाव और विचार को अलग अलग मानना अधिक समीचीन होगा। अतः हिन्दी नाटक के पाँच तत्त्व हुए—व्यापक चरित्र-विशेष भाषा शैली भाव तत्त्व तथा उद्देश्य। उद्देश्य के अन्तर्गत विचार तत्त्व आया था कि प्रकट होने पर ही काव्य की वस्तु बनता है।

### गिस्स-संगठन का आधार

नाटक का निम्न उद्देश्य सभी तत्त्वों में संश्लिष्ट रूप में व्यक्त होता है। परन्तु कभी-कभी नाटककार अपने अभिप्रेत को स्पष्ट करने के लिए किसी एक तत्त्व को प्रमुखता आधार बनाता है और शेष तत्त्वों को भी उसी के अनुकूल स्पष्ट करता है। इसके कारण नाटकों के गिस्स-संगठन में भी अन्तर हो जाता है। भिन्न भिन्न तत्त्वों को प्रमुखता देने के कारण नाटकों के गिस्स-संगठन के आधार पर कई वर्ग बन गए हैं। इन विभिन्न गिस्स-संगठनों में प्रत्येक तत्त्व के स्वरूप में भी स्वाभाविक अन्तर आ जाता है जैसे व्यापक एक तत्त्व है परन्तु रससृष्टि के उद्देश्य में इसका स्वरूप भिन्न होता है। चरित्र-विशेष को प्रमुखता देने समय इसका स्वरूप भिन्न विचार प्रेषण में भिन्न और समस्या विस्तारण में सर्वथा भिन्न। अतः तत्त्वों के विवेचन से पूर्व यह जान लेना आवश्यक होता है कि उस नाटक के तत्त्व किस आधार भूमि पर खड़े हैं? नाटककार का गिस्स-संगठन में क्या दृष्टिकोण है? उसने अपने अभिप्रेत को व्यक्त करने के लिए किस तत्त्व को प्रधानता दी है? आदि। इसके अभाव में नाटक का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। एक गिस्स-संगठन में जो गुण हैं वही दूसरे में दोष हो जाता है। जैसे व्यापक में सीमित संघर्ष रस प्रधान नाटक का गुण है परन्तु पटना प्रधान नाटक में यह नाटक के शीर्षक का परिचायक है। अतः तत्त्वों के विवेचन से

पूर्व विभिन्न आचार कृमियों पर आधुन नाट्य-विचारों का विवेचन अधिक समीचीन होना ।

रस-प्रधान शिष्य-संगठन

संस्कृत नाटकों में तत्त्वों के संगठन का आधार रस था । पाठक या प्रसक्त के हृदय को रसनिर्भर कर उसकी कृमियों का उद्घाटीकरण ही नाटककार का प्रयुक्त उद्देश्य था । आचारणीकरण द्वारा नाटक में व्यक्तित्व प्रच्छन्न विचार उसके आच-व्यव की वस्तु बन जाए इस उद्देश्य से ही नाटककार उच्च रससिक्त कर अभिव्यक्त करता था । यद्यपि रस का विचार करते हुए रस परिष्कार के अनुकूल ही सारी सामग्री चुटाई जाती थी । इसी कारण से संस्कृत नाटकों में कथामय विन्यास में तीव्र संघर्ष का अभाव है, चरित्र विवेचन में मुख्यतः कम एक आदर्श चरित्रों का चयन किया गया है । संसार में भाषा के लिए रस के अनुकूल कृति के लिए आदर्श है । दुर्योधन एवं धृष्टकेतु के विभाजन में भी प्रयुक्त आधार यही है कि महात्मक एक मायिक स्थितियों की वृद्ध रूप में रसा जाए पावे ।

हिन्दी नाटक ने यद्यपि पूर्वतः रस के आधार पर शिष्य-संगठन नहीं किया परन्तु चित्तन-बल में भाव भी रस का प्राधान्य ही आदर्श है । समाज में व्याप्त बौद्धिकता एवं सामयिक समस्याओं के प्रभाव के कारण चरित्रात्मक करते हुए अथवा चरित्रात्मक का चयन करते हुए विचारों का सृष्टि मिश्रण हो जाना स्वाभाविक ही है जिसके कारण हिन्दी नाटककार द्वारा अभिव्यक्त भाव रस की स्थिति तक नहीं पहुँचता । तत्त्वों की अलग-अलग विशेषताएँ बताते हुए यह स्पष्ट कर दिया जाएगा कि इन संगठन के अन्तर्गत अन्य तत्त्वों का स्वरूप क्या होता है ।

यही स्पष्ट भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हिन्दी नाटक का यह भाव प्रधान स्वरूप यूनानी लोकान्तिकाओं के भाव प्रधान शिष्य-संगठन से भिन्न है । यूनानी लोकान्तिकाओं का प्रयुक्त आधार कथन भाव का उद्घाटन था । कारण तथा भाव के उद्घाटन द्वारा ही मनोविचारों का विवेचन उनका सिद्धांत था । हिन्दी नाटक संस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा के कारण यूनानी लोकान्तिकाओं के प्रभाव से विमुक्त रहा ।

चरित्र प्रधान शिष्य-संगठन

जब नाटककार अपने अभिव्यक्त की अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त रूप से चरित्र के माध्यम को अपनाता है और केवल तत्त्वों का संगठन ही उसी के अनुकूल करता है तो वह नाटक शिष्य की दृष्टि से चरित्र-प्रधान नाटक कहलाएगा । भारतीय नाट्यशास्त्र में चरित्र-विवेचन की शिष्य-संगठन का आधार मानने वाले

नाटककार इतनी सूक्ष्मता से चरित्र-सृष्टि करते हैं कि उसमें मार्मिकता एवं सौन्दर्य स्वयमेव अन्तर्भूत हो जाता है। मानव स्वभाव की अन्तःप्रवृत्तियों और स्वभाव का निरूपण ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है। विद्येय परिस्थितियों में मानव स्वभाव की पहरी छानबीन के कारण उनके साहित्य में स्वाभिरुचि आ जाता है। इस वय स प्रभावित हुआ कि हिन्दी नाटककार भीम-वीरविश्वपरक चरित्र-सृष्टि की ओर आकृष्ट हुए। परन्तु जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है हिन्दी नाटक के चिन्तन-मग्न में धाव भी साध्य रूप से रस का ही प्राधान्य है। अतः यह चरित्र सृष्टि भी आचार्यों की आलोचना में मुक्त नहीं। मधुसूदने काजपदी इसकी तुलना भारतीय रस तत्त्व के साथ करते हुए लिखते हैं— नाटक में चरित्र-चित्रण और स्वभाव निरूपण अन्ततः साधन हो है साध्य नहीं। मनोविज्ञान के आधार पर मनुष्य की सूक्ष्म विशेषताओं का चित्रण कितना ही मार्मिक क्यों न हो काम्य में वस्तु चित्र मात्र है। वह काव्योपयोधी नहीं होता जब कवि वा नाटककार की मूर्धन्यता मात्र-सत्ता या कला का प्रयत्न करके धावे काम्य में अन्तर्मुक्त हो जाए। मानव प्रकृति की यथार्थवादी खोज अन्ततः विज्ञान का विषय है व्यक्ति-विचारक अपने ही इसे काम्य के लिए सब कुछ मान लें। परन्तु वह सारी मार्मिकता तथा वैज्ञानिकता कवि कल्पना का समुचित अंग न होने पर निरर्थक भी हो सकती है। इस प्रतिपाद तथ्य को भी स्वीकार करना ही होगा।<sup>१</sup>

प्रसादजी ने भी व्यक्ति-वैचर्य के अन्तर्गत किए गए चरित्र चित्रण को रस में व्यापार्य पहुँचाने के कारण साधन ही माना है। उनका कथन है—“यह विचारणीय है कि चरित्र-चित्रण का प्रधानता देने वाले ये दोनों पक्ष रस से कहाँ तक सम्बन्ध होते हैं। इन दोनों पक्षों का रस से सीधा सम्बन्ध तो नहीं दिखाई देता क्योंकि इसमें बर्तमान युग की मानवीय मान्यताएँ अधिक प्रभाव डाल चुकी हैं जिसमें व्यक्ति अपने की विरुद्ध स्थिति में पाता है फिर उसे साधारणतः धर्मद वाली कल्पना रस का साधारणीकरण कैसे हृदयवन्त हो? वर्तमान युग बुद्धिवादी है आघातत उसे बुद्ध को प्रत्यक्ष मान बना पड़ा है। उसके लिए संघर्ष करना प्रतिपाद-आ है।

भारतीय आचार्यों को निराशा न भी करे रस या उसमें क्या-सहानुभूति की कल्पना से अधिक भी रसानुभूति। उन्होंने प्रायः आचना में धर्मद निर्वाकार मानव लेने को मुक्त माना।”<sup>२</sup> और इस भारतीय रचना का भारतीय दर्शन से सम्बन्ध स्पष्ट करते

१. आधुनिक साहित्य मधुसूदने काजपदी कृष्ण सं. १९१६

२. काम्य और कला तथा अन्य विषय अवरोधक प्रकाश कृष्ण सं. १९२७

हृदय के निष्कर्ष निकालते हैं कि "आत्मा की अनुभूति व्यक्ति और चरित्र-वैशिष्ट्यों को लेकर ही अपनी मूर्ति करती रही है। भारतीय दृष्टिकोण इस के लिए हम चरित्र-वैशिष्ट्यों को सामन्य मानता रहा है साम्य नहीं।"

व्यक्ति-वैशिष्ट्य के अन्तर्गत किए गए चरित्रांकन की सामाजिक उपयोगिता भी है। यह मानव स्वभाव की गहराइयों को प्रकट कर समाज में उनके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है। जोरी के चरित्रांकन द्वारा विज्ञान के प्रति समाज की सहानुभूति उत्पन्न करना इसका प्रयत्न उदाहरण है। परन्तु यह क्या और सहानुभूति भी भारतीय दर्शन के अनुकूल न होने के कारण प्राक् नहीं ऐसा स्पष्ट मत प्रस्तावकी का रहा—“सामाजिक इतिहास में साहित्य-मूर्ति के द्वारा मानवीय बातनाओं को संशोधित करने वाला पश्चिम का सिद्धान्त व्याचारों में चरित्र द्वारा मैदान पाया, तो साहित्य में संशोधन का काम कर लिया। क्या और सहानुभूति उत्पन्न कर देना ही उसका ध्येय रहा है और है ही। वर्तमान साहित्यिक प्रेरणा जिसमें व्यक्ति-वैशिष्ट्य और यथार्थवाद मुख्य है—मूल में संशोधनारम्भ ही है। वहीं व्यक्ति से सहानुभूति उत्पन्न कर समाज का संशोधन है और वहीं समाज की दृष्टि से व्यक्ति का किन्तु क्या और सहानुभूति उत्पन्न करके भी वह दुःख को अधिक प्रतिबिम्बित करता है निराशा को अधिक प्राप्य देता है। भारतीय दर्शन में जिसका अग्रद-मुख की सृष्टि मुख्य है।"

इस तारे विवेचन से स्वतः स्पष्ट होता है कि हिन्दी नाटक परम्परा में रस की स्थिति का उल्लेख स्पष्ट रूप के कारण चरित्र-चित्रण की स्थिति अपेक्षाकृत भोग ही रही। इसमें चरित्र-चित्रण की दृष्टि न वास्तव्य प्रभाव प्रकट पड़े।

**कथानक अथवा चरित्र-प्रधान सिद्ध-संशोधन**

वास्तव्य आदर्शवादी में कथानक को आधार रख मानने वाला एक प्रमुख वर्ग है। सबसे प्रथम धारस्तु ने इस महत्त्व प्रदान करते हुए नासरी की आत्मा कहा था। उनका कहना है, 'कथावस्तु नासरी की आत्मा है। इसके कारण है नासरी व्यक्ति नहीं जीवन की अनुभूति है। जीवन कार्य-व्यापार है। बिना कार्य-व्यापार के नासरी नहीं हो सकती जबकि बिना चरित्र-चित्रण के ही नहीं। चरित्र-व्यक्ति मापन विचार और पदावली से अधिक काल-विक्रम प्रभाव चरित्रों का कथानक कुण्डल पैदा करता है। स्थिति-विपर्यय

१. अग्र और क्या तथा अन्य विषय १० पृष्ठ

२. वही, १० पृष्ठ

धीरे प्रत्यभिज्ञान भी कथानक के ही अंग हैं।<sup>१</sup> इसी वर्ग के अन्य परम्परी विद्वानों ने भी कथानक के महत्त्व का वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादन किया है। उनका प्रबल तर्क है कि (Action speaks louder than the words) कार्य शब्दों की अपेक्षा अधिक ब्रह्माणी होता है। रोमरूथ पीकार्ड कथानक के महत्त्व का अन्वेषण करते हुए लिखते हैं—“कथानक में जो भाव निहित हैं। यह नाटकीय संयोजन है और साथ ही साथ धर्म एवं उत्तरेय की ओर संकेत का साधन भी।” इस प्रकार यह धारणा उत्पन्न एवं विचार उत्पन्न दोनों का प्रेरक है। मैट्यू आर्नस्ट ने कथानक के अर्थ पर अत्यधिक जल दिया है। उनके विचार से कथानक यही अत्यन्तम होता है जो मानव की मूल वृत्तियों एवं भावों को प्रभावित करे और काम के बन्धन से मुक्त होकर शास्त्र सनेहनाओं से सम्बन्ध हो।<sup>२</sup>

हिन्दी नाटककार ने वस्तु की अधिक महत्त्व देने वाले वर्ग से भी प्रभाव ग्रहण किया। वास्तव में संस्कृत नाट्यशास्त्र में भी वस्तु को कम महत्त्व प्राप्त नहीं परन्तु यह रक्षाधीन है। अतः हिन्दी में भी वस्तु उत्पन्न को उस से अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। आचार्य नन्ददुलारे बाबेयी भारतीय नाटक और पाश्चात्य नाटको के अन्तर्गत उत्पन्न की तुलना करते हुए लिखते हैं—“भारतीय नाटक नाट्य-व्यापार की तीव्र और गतिशील बनाने के पक्ष में उत्तम न थ। वे नाटक में रमना जानते थे अतः नाट्यो के साथ हीक सचाना नहीं।”<sup>३</sup>

परन्तु हिन्दी नाटक में वस्तु उत्पन्न रक्षाधीन होते हुए भी पाश्चात्य साहित्य के इस वर्ग से किंचित प्रभावित हुआ। अतः हिन्दी नाटक के वस्तु उत्पन्न का क्या स्वयं बना यह नाटक के उत्पन्न की आलोचना में स्पष्ट किया जायगा।

१ मुनिका अर्थ का काव्यशास्त्र अध्याय १० से १३

२ Plot has two aspects. It is a concept of dramatic construction, and also a device for the pointing of vision or the meaning.

—Ronald Peacock The Art of Drama Page 194

३ For Arnold, then as for Aristotle, the plot is the first thing .....

.... His first task is to select an "excellent action. But what actions, he asks, are the most excellent? And he replies "those which most powerfully appeal to the great primary human affections; to those elementary feelings which subsist permanently in the race and which are independent of time."

—James : The Making of Literature, Page 266

४ आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे बाबेयी, पृ० से २३१

### समस्या-प्रधान सिद्ध-संगठन

पारंपार्य नाट्यशास्त्र में तथाकथित यथार्थवादी नाटककारों ने नाटक के आधार तत्त्व को सबसे बढत दिया। वे सौम्यवादी दृष्टिकोण से किंचित अधिक सामयिक समस्याओं की ओर उन्मुख हुए। प्रेक्षक को आनयित करना उनके लिए केवल अपनी बात को सुनाने के लिए रोक रखने का साधन था। बर्नार्ड शा का इस बारे में स्पष्ट कथन है कि नाटक वह कुछ भी है जो मोता-मण्डली को दो-धड़ाई पकटे तक पथोरवित कर सके।<sup>१</sup> इससे नाटक का स्वरूप सर्वथा बदल गया। इसमें बौद्धिकता का समावेश हो गया। नाटक का प्रचलन विचार तत्त्व व्यक्त हो गया और सामान्य तत्त्व जो व्यक्त था केवल स्थूल साधन रह गया।

इस तरह का हिन्दी नाटक पर घटवधिक प्रभाव पड़ा और हिन्दी में भी समस्या-नाटका की एक धारा चल पड़ी। हिन्दी की मूलवर्ती नाटक-धारा पर भी इसका प्रभाव पड़ा, जिसमें रस तत्त्व का प्रमुख रहा। परन्तु नाटक में सामयिक तत्त्वों का विक्षेपण भी होने लगा। सामाजिक कथानक को लेकर लिखे जाने वाले नाटकों में बाह्य-प्रधान नाटकों को छोड़कर, सामयिक उपबोधिता का तत्त्व अधिक प्रबुद्ध हो गया। इनकी पृष्ठभूमि में बुद्धिवादी तर्क से परम्परा नाटक में वे मार्ग के आधारित होकर ही आए। इस प्रकार हिन्दी नाट्यशास्त्र में विचार तत्त्व जो कि संस्कृत नाट्यशास्त्र में प्रचलन एवं नियुक्त रहता था अधिक व्यक्त एवं प्रस्फुटित हो गया और एक स्वतन्त्र रूप से तत्त्व कहलाने का अधिकारी हो गया। वास्तव में इनो विचार तत्त्व का पर्याय ही वास्तव्य तत्त्वों में कहलाने तत्त्व है। इसके स्वरूप का विस्तृत विवेचन इसी अध्याय के दूसरे भाग में अवश्य से किया गया है।

### विचार-प्रधान सिद्ध-संगठन

पारंपार्य नाट्य साहित्य में एक कर्म है जो नाटक में आधारभूत तत्त्व अनुभूत विचारों का प्रयण मानता है। इस कर्म के प्रमुख नाटककार टी० एस० इल्लि-मट का मत है कि एकीकृत विचारों का सफल प्रयण ही नाटक की सफलता की कमीटी है। वह इस तत्त्व को इतना अधिक महत्व देने हैं कि चरित्रों की असम्बद्धता को भी इस मूल्य पर सह जाने के परा में है।<sup>२</sup>

इसके बारे में इल्लिजट साहब तर्क देते हैं कि लेखक उनी कथानक का कथन

१ "A play is anything which interests an audience for two hours and a half on the stage of the theatre."

२ "Mr Elliot means, it may allow characters to behave inconsistently but only with effect to deeper consistency"

—Drama From Ibsen to Elliot Williams

करता है जिसके साथ जनकी अनुभूति का साम्य होता है। यद्यपि वह उस विचार को अभिव्यक्त करने के लिए यथार्थ जीवन में से वास्तवों का चयन करता है और उनमें अपनी अनुभूति का आरोप करता है। परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वह पात्र सेकक की अनुभूति को पूर्णतः अभिव्यक्त करने में असमर्थ होता है। इसलिए यदि उसे स्वतन्त्र कर दिया जाय तो नाटक के विचार के एकीकरण में बाधा पहुँचती है। उनका स्पष्ट मत है कि नाटक जीवन नहीं जीवन का एकीकृत विचार है। इसलिए वास्तवों के चरित्र-विवरण की सम्बन्ध की संवेष्टा करके भी उसमें समाहित विचार का सफल निर्वाह होगा आवश्यक है।

यद्यपि इस वर्ग का प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी नाटक पर नहीं पड़ा होगा क्योंकि इस वर्ग की प्रविधि की अन्य विशेषताओं का हिन्दी पर अधिक प्रभाव नहीं है तो भी हिन्दी नाटक में युग के प्रभाव के कारण विचार को प्रमुखता स्वाभाविक रूप में मिल गई है। विचार प्रेषण में उसके विविध पक्षों को प्रस्तुत करने के लिए कथानक के विस्तार को सहज रूप से समझा जा सकता है विशेष दृष्टिकोण वाले चरित्रों की चरित्र-मुद्रा आदि अनेक बातें इस वर्ग के नाटकों में देखी जा सकती हैं। इस वर्ग के आविर्भाव एवं विकास के लिए हिन्दी रंगमंच की अविकसित स्थिति भी एक कारण है। हिन्दी के अधिकतर छोटे नाटक रंगमंच की दृष्टि में रखकर नहीं लिखे गए। यद्यपि नाटकों के वाद्यों हो जाने पर मंच प्रभाव के कारण चित्रण का यह विकास स्वाभाविक ही है। एकीकृत विचार जिसकी अनुभूति नाटककार ने की है अपनी सफल अभिव्यक्ति के कारण पाठक के हृदय में बैठ जाने के लिए स्वाभाविक रूप से संवर्ध होता है। इन नाटकों के चित्र में अव्यक्ति विचार को लेकर ही होती है। इनमें अनेक चरित्र आदि के आधार पर अव्यक्ति रूढ़ि से कई रीति दिखाई देते हैं जिसके कारण नाटक का उचित मूल्यांकन नहीं हो पाता। महर्षी नारायण मिश्र के अनेक नाटक इसी वर्ग के सम्मर्त होते हैं।

## हिन्दी नाटक का तत्त्व

पाश्चात्य नाटक की भिन्न-भिन्न आधार मूल्यों के विस्तार के बाद वह बात सर्वथा स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी नाटक के आधार तत्त्व रूप में रस को ही अपनाया परन्तु वह भिन्न-भिन्न प्रभावों के कारण एक ऐसा भिन्न हो गया, जो संस्कृत के आधार तत्त्व रस से भिन्न है जिसमें कथानक इत्यादि रस के अनुकूल नहीं। कथानक में संवर्ध की मात्रा कुछ अधिक है चरित्र-विवरण में व्यक्ति-विवरण का प्रयोग हो चुका है विचार तत्त्व अधिक प्रच्छन्न नहीं और सीसी एवं भाषा में वाद्यों मूल्यों के अनुशासन के साथ-साथ तर्क की प्रधानता हो गई है।

हिन्दी नाटक के विकास में ध्यान की स्थिति यही है। इसके सम्मुख आचार्य नाटक के रूप में यद्यपि संस्कृत नाट्य परम्परा ही है जिसमें विशेषकर 'अभिज्ञान शाकुन्तल' 'उत्तर रामचरित' और 'मृच्छकटिक' आदि प्रमुख हैं और जिस पर हिन्दी नाटक को घबरे भी है, तथापि इसके विकास में शीघ्रपीयर इंग्लिश का आदि का भी पूरा-पूरा योग है।

हिन्दी नाटक की आचार्य भूमि संस्कृत एवं आचार्य दोनों नाट्यशास्त्रों से प्रभावित हो एक स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण करती हुई चली। अतः इसके उत्पत्ति में सहनरूप उन नाटकों के उत्पत्ति से भिन्नता पाई जाती है।

### कथानक

कथानक की प्रथम विशेषता उसकी मौलिकता है। मौलिकता से अभिप्राय कथा के विषय से नहीं अपितु उसकी व्यक्तिकता के कौशल से है। कथा का विषय यदि इतिहास लोककथा या जनश्रुति से लिया गया है तो यह केवलक की कथा की हीनता का परिचायक नहीं क्योंकि नाटककार का काम तो इतिहास में नाटकीयता लाकर अपनी मौलिकता का प्रदर्शन करना है। महाभारत के शकुन्तला आख्यान की कामिनीय की प्रतिभा ने सर्वथा कायाकल्प करके एक नवीन रूप दे दिया यही उसकी मौलिकता है।

कथानक की दूसरी विशेषता उसकी पूर्णता है। नाटककार अपने ही विषय का चमक करता है जो उसके उद्देश्य का सकलता से बहान कर सके। उसकी पूर्णता उसके समुचित चरित्र में है। इस व्यक्तिकता के बारे में प्रसिद्ध विद्वान् श्री जैन जोत्सन लिखते हैं 'कथानक केवल एक और सम्पूर्ण कार्य की अनुकूलि है। इसके अंत इस प्रकार समुचित अनुपात में परस्पर अनुसूत एवं प्रविष्ट होते हैं कि किसी भी प्रकार से बिना समग्र कृति को क्षति पहुँचाए किसी अंग का विच्छेद एवं परिवर्तन सम्भव नहीं।'<sup>१</sup>

कथानक के विभास की ओर संस्कृत एवं आचार्य दोनों नाट्यशास्त्रों ने अधिक ध्यान दिया है। संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक में एक कार्य होता है। उस कार्य की सम्पन्नता तक के क्रिया-व्यापार को मुख्यवस्तु एवं प्रमुख

१ The fable is called the imitation of one entire and perfect action whose parts are so joined and knit together as nothing in the structure can be changed or taken away without impairing or troubling the whole of which there is a proportionable magnitude in the members. (Ben Jonson Timber Discoveries made upon Man and Matter)



रूप से दिखाने के लिए उसे पाँच भागों में विभक्त किया गया है—प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्ति, विफलता और फल। इस कार्य-व्यापार की क्रिया के साथ बाह्य संघटन भी सम्बद्ध रहे इसलिए कथानक के बाह्य संगठन के भी पाँच भेद किए गए हैं—(जिन्हें धर्मप्रकृतियाँ कहते हैं) बीच विन्दु, पताका, प्रकटी और मार्ग। इस बाह्य कथानक संगठन और आन्तरिक कार्य-व्यापार का विकास समान गति से एवं सम्बद्ध रूप से हो इसलिए दोनों के समानान्तर भागों की परस्पर मिलान के लिए समतुल्य स्थलों (सन्धियों) की योजना की गई है। यह सन्धियाँ कार्य की गति और वस्तु के विकास को परस्पर सम्बद्ध रखती हैं। ये सन्धियाँ भी पाँच हैं—मुक्त प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्बहुष। इस विवरण से स्पष्ट है कि नाटक के वि. पास की ओर संस्कृत छात्राचार्य ने विशेष ध्यान दिया। इस वस्तु विमर्श से स्पष्ट है कि कथानक में एक कार्य होता है, बाधाएँ आती हैं, संघर्ष होता है और उसके पश्चात् कार्य की सिद्धि होती है। परन्तु हमका पाश्चात्य नाटक के संघर्ष के स्वरूप से एक मौखिक भेद है।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में संघर्ष कथावस्तु का प्राच माना गया है। इसके बिना कोई कथा नाटक की कथा (नाटकीय कथा) का रूप ही नहीं धारण कर सकती। श्री हडसन इसके महत्त्व को प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं 'नाटकीय कथानक के लिए संघर्ष कंसा भी हो एक स्वीकृत अनिवार्य तत्त्व है। संघर्ष के प्रारम्भ से ही वस्तुतः कथानक का प्रारम्भ होता है और इसकी समाप्ति के साथ ही कथानक सम्पन्न होता है।'<sup>1</sup> इसके स्वरूप की कक्षा करते हुए वे लिखते हैं कि 'प्रत्येक नाटकीय कथानक का उद्भवन किसी संघर्ष से होता है, जो कि दो व्यक्तियों या दो भयका हितों के टकराने से उत्पन्न होता है।'

इस प्रकार कथानक में संघर्ष का तत्त्व दोनों ही नाट्यशास्त्रों में माना गया है परन्तु फिर भी इस संघर्ष के स्वरूप में एक मौखिक भेद है और इसी कारण कथानक के विमर्श में भी भेद हो जाता है। भारतीय नाटक में संघर्ष का तत्त्व केवल प्रयत्न नामक कार्यविस्था से लेकर प्राप्ति नामक कार्यविस्था तक ही

<sup>1</sup> Some kind of conflict is however the datum and very backbone of a dramatic story. With the opening of this conflict the real plot begins, with its conclusion the real plot ends.

—Hudson. An Introduction to the Study of Lk. P. 199

<sup>2</sup> Every dramatic story arises out of some conflict—some clash of opposed individuals, or passions or interests.

—Hudson. An Introduction to the Study of Lk., Page 199

अनिश्चित स्थिति में बसता है। इसका पन्था तो प्राप्ति की धारा के कारण संघर्ष के स्वरूप में अन्तर या बाधा है। परन्तु पाश्चात्य नाटकीय तो यह संघर्ष कथा के आरम्भ के साथ आरम्भ होता है और कथा के अन्त के साथ इसका अन्त होता है और अधिकांश प्रसिद्ध कथानका में तो यह व्यक्तिगत का कारण बनता है और भलाई और बुराई के मध्य का यह संघर्ष नामक और प्रति मायक के माध्यम से होता है।<sup>१</sup> इससे स्थिति अन्त तक अनिश्चित रहती है। इस प्रकार दोनों संघर्षों की तुलना करते हुए एक को बिनाम कहा जा सकता है ता दूसरे का हान। एक में जीवन का स्वाभाविक संघर्षमय चित्र है तो दूसरे में केवल जीवन का दुःखमय चित्र। और इस दुःख में कौतूहल और विशेष रूप से उत्साह की स्थिति का होना अनिवार्य है। हम बारे में भी रोमन्स पीकाक का कथन है कि नाटकीयता के वास्तविक ससज तनाव और कौतूहल हैं दुःख नहीं। प्रायः ये दुःख से ही उत्पन्न होते हैं परन्तु सर्वत्र ऐसा नहीं होता जैसे क्रिकेट के खेल में दुःख है परन्तु तनाव और कौतूहल नहीं। वह केवल उसी स्थिति में प्रकट होता है जबकि एक-यात्रा रैड से ही खेल का निर्णय होने वाला हो अथ कबल बड़ी स्थिति नाटकीय होवी। दूसरी ओर एक रेलगाड़ी एक टूटे हुए पुल की ओर पूर्ण गति से आ रही है इसमें कोई दुःख नहीं परन्तु तनाव की अपेक्षा हानि के कारण यह स्थिति नाटकीय हो सकती है।<sup>२</sup>

इस प्रकार भारतीय नाटक के संघर्ष का आधार विकास और पाश्चात्य नाटक के संघर्ष का आधार तनाव एवं कौतूहल-सुखक दुःख है।

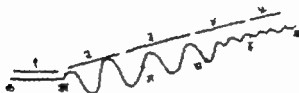
१. In the most elementary and still most popular type of story such conflicts takes a personal form; the collision is between good and evil as embodied respectively in the hero and the villain, of the piece.

—Hudson An Introduction to the Study of Literature Page 199

२. It is commonly held that conflict makes drama, but surprise and particularly tension are the truer symptom. They both arise from conflict, of course but not always, and conflict is only dramatic when they do. A cricket match involves a conflict, yet with most variable tension, as foreign spectators are apt to observe; it is only a dramatic conflict at particular movements when the pace increases and puts the game in the balance. On the other hand what is more dramatic than a train moving at speed towards a broken viaduct? Yet there is only sense expectation here, no conflict."

—Ronald Pascoe The Art of Drama, Page 160.

संघर्ष के इस मूल भेद के कारण दोनों के कथा-विन्यास में भी भेद पा जाता स्वाभाविक है। संस्कृत नाटक में कार्य की गति की विवेचना पीछे की जा चुकी है उसकी पाँचों कार्यावस्थाओं—आरम्भ प्रवृत्त प्राप्ति निर्यात और कलागम को रेखाचित्र द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है —

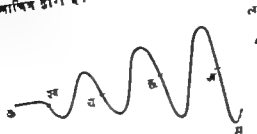


कथा का आरम्भ (१) रेखा से माना गया है जिससे केवल काम के लिए सौम्य भाव होता है और प्रवृत्ति की दृष्टि से इसी स्थिति में सभी प्रमुख पात्रों एवं घटनाओं के बीजों का समावेश होता है। कलागम का रेखा बिन्दु कुछ ऊँचा इसलिए माना है क्योंकि कार्य का अर्थ ही है जो कठिन हो प्रयत्न-साध्य हो इसलिए कार्य की सिद्धि को आरम्भ के बिन्दु के ऊपर माना है। (२) रेखा में प्रवृत्त आरम्भ होता है। रेखा की बढ़ती संघर्ष की द्योतक है। रेखा ऊपर की ओर बढ़ती है तो सफलता की सूचक है और नीचे की ओर असफलता की। अतः संघर्ष की तीव्रता है य बिन्दु पर पहुँचकर प्राप्ति का ही स्थिति हो जाती है। संघर्ष की तीव्रता कम हो जाती है और इस प्रकार सफलता की यात्रा बढ़ती जाती है और अन्त में कलागम की स्थिति प्राप्त हो जाती है।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में कार्य की गति का क्रम सर्वथा भिन्न है। उसमें उन्नति बढ़ता जाता है और अन्त में सभी नायक सफल होता दिखाई देता है सभी प्रतिनायक और अन्त में संघर्ष की तीव्रतम स्थिति पर पहुँचकर नायक सफल होता है या प्रतिनायक और नाटक समाप्त हो जाता है। इसी क्रम के विधान की ओर लक्ष्य करते हुए चीन चैपलिन 'नाटक के संक्षिप्त शास्त्रीय विवेचन' (Summary of Poetic of the Drama) में लिखते हैं कि 'काम्यो और वाच्यो दोनों के उत्तम कथानक में एक से अधिक प्रमुख पात्र नहीं होते ये पात्र कार्य उसी से सम्बन्ध होते हैं। इस ही 'वर्गीकृत' (Unity of Action) कहा जाता है। प्रथम अंक में कथा के प्रमुख तन्त्र स्पष्ट किए जाते हैं दूसरे में उत्तम आरम्भ होती है तीसरे में व्यापकता बढ़ती है चौथे

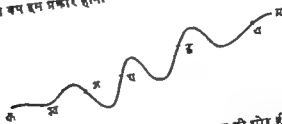
# सैद्धान्तिक विवेचन नाटक

में स्थिति निगमाग्रद हो जाती है और अन्तिम अंक में बाँट लुप्त होती है। इस विन्यास को रेखाचित्र द्वारा इन प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है



क बिन्दु से बचा आरम्भ होती है यदि म पर आकर कथा की परिसमाप्ति होती है तो यह त्रययी पूर्ण और यदि म पर ता कामची। प्रथम अंक क ल में कथा क सब तन्तु स्पष्ट हो जाएँ इसलिए ब ल रेखा नीची है। ल ख में उस भ्रम बढ़ जाती है ख ल में व्याकुलता और ल ख में समय अन्तिम सीमा को स्पर्श करता है यदि कथा नासदी है तो म पर कथा समाप्त होगी और यदि कामची है तो म पर।

हिन्दी नाटक का विन्यास इन दोनों प्रभावों से युक्त है और संस्कृत नाटक की भाँति उसका विषय युक्त है इसलिए उस यदि रेखाचित्र द्वारा दिखाना हो तो उसका रूप इन प्रकार होगा



नाटक सुगम्य हान के कारण यह रेखा सरा ऊपर की ओर ही प्रवृत्त होगी।

- 9 In their tragedies and comedies a good plot never had more than one principal action, to which the others are related. This is what is termed "Unity of action" & & & In the first act the principal points of the story are made clear; in the second complication arises; in the third, the trouble deepens; in the fourth, matters look desperate; in the fifth the knot is loosed.

—The European Theories of Drama B. H. Clark ;

कथ में कथा के तन्तु बाध इत्यादि स्पष्ट होंगे। सब प्रयत्न है कि वह व्याख्याता को ब्रियतापित और मंगल फलदायी है। स्पष्ट है इसमें कार्य में सफलता तो निश्चयी है क्योंकि वह सब से ऊपर है और सब से घाति परन्तु सचार्थ की भाषा रस की स्थिति के लिए पूर्णतया अनुकूल नहीं और न ही वह द्रष्टृ की स्थिति तक पहुँची है।

नाटक के सीमित आकार के कारण नाटककार को कथानक के अन्त में विशेष रूप से बुद्धिमत्ता दिखाने की आवश्यकता होती है। कथा के सभी दुःख संघर्ष पर दिखाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इतिवृत्त से प्रेक्षक को रहस्य नहीं किया जा सकता और न ही उनमें नाटकीयता होती है। इसलिए नाटककार दुःख रूप में दिखाने के लिए महत्वपूर्ण एक प्रसिद्धि दुःखों को छुटका है। वेद की वह सचा-स्वात सुचना देता रहता है। कथा के मुख्य भाग में सब दुःख भोजन बिनाह जोडाकर्म राज्य किम्बदन्त नगर का वेदा इत्यादि दुःख प्रमुख रूप से आते हैं। संस्कृत नाट्यशास्त्र में इनके दुःख-कथा में दिखाना ब्रजित है। इनके विशेषण से स्पष्ट होता है इन वर्जनाओं में से कुछ अस्वीत हैं जिन अस्वीत नस्वीत अन्तर्गत आते हैं कुछ अस्वीत हैं जैसे भोजन अन्तर्गत अनुकूलन आदि कुछ नास्वीत रूप में अस्वीत हैं जैसे सब दुःख, शाप आदि कुछ अस्वीत की सीमा से बाहर की हैं जैसे नगर का वेदा आदि। इन वर्जनाओं से स्पष्ट है कि वे रस विरोधी हैं या अस्वीत की सीमा में अस्वीत। अतः संस्कृत नाट्यशास्त्र में इसे मुख्य भाग में रखा गया है।

पाश्चात्य नाट्यशास्त्र में कथानक में नाटकीयता का कुछ प्रधान होता है अतः इस प्रकार की वर्जनाएँ वहाँ प्रत्यक्ष रूप से नहीं हुईं। यद्यपि महान नाटककारों की कृतिओं में वे स्वतः ही नहीं आ पाए।

हिन्दी नाटक ने इस दृष्टि से पाश्चात्य नाटक का अनुसरण किया और नाटक में बुद्धिमान आनिमन आदि के दुःख भी व्यक्त कर दिखाने दिए गए। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि वह नाटक व्यावहारिक रूप से संघर्ष पर नहीं खेने गए और इसी कारण उनमें भारतीय संस्कृति और वर्धन के विरोधी तत्वों की छानबीन न हो सकी।

मुख्य भाग की प्रेक्षक के सम्मुख आने के लिए संस्कृत नाट्यशास्त्र में अर्थो-पक्षों की योजना थी। दो अर्थों के बीच के बीच का मत जैसे कोई बटना बटी हो तो उस प्रेक्षक का किम्बदन्त द्वारा ब्रजित जाया का। परन्तु पाश्चात्य नाटकों में रस के व्यापार का प्रयत्न ही नहीं उठता अतः दुःख भाग में ही इसे पाशों के तबलों के माध्यम से ही कहना दिया जाता है। हिन्दी नाटक ने इस मुख्य भाग की पाशों के सम्मुख आने के लिए दो भाग अपनाए हैं। कुछ नाटक

कार्तों ने नाटक के अंकों का छोटे-छोटे दृश्यों में विभाजित कर कथा के प्रविर्भाव भाग को रंगमंच पर ही बिना दिया है। निम्नान्तर्ह हिन्दी का नाटककार रम का बातावरण बनाए रखता था परन्तु इतने छोटे दृश्यों से रस की स्थिति का क्या जित करने के स्थान पर अंकों में ही पात्रों के संवादों द्वारा प्रत्यक्ष भावक मुख्य भाग का कहलबाया है। परन्तु यह स्थिति भी रम के बातावरण के अनुकूल नहीं थी और इसमें कथानक की गति में भी स्थिरता छाती है। इस प्रकार संस्कृत और पादशान्य नाट्यशास्त्र के मिश्रित प्रभाव के कारण हम विश्वास में कोई समन्वित रूप सम्मुख नहीं आया। अतः यह मानना पड़ेगा कि मुख्य और प्रधान कथा के नियोजन का कोई मुख्यवस्थित एवं निश्चित विधान हिन्दी नाटक में नहीं आया। केवल बड़ी नाटक सफल हैं जिनमें या तो मुख्य भाग ही कम है या दृश्यों को अधिक बढ़ा बनाकर टन्ही में रम का बातावरण बना लिया गया है।

कथानक घटन में सरलता एवं भावपन्थता का गुण होना भी प्रति प्राथम्यक है। समिनीत होन के लिए तो यह गुण अनिवार्य हो जात है। कथानक के आरम्भ में ही यदि सारी वस्तु-स्थिति स्पष्ट न हो तो प्रेक्षक उसका पुष्टता धारण नहीं उठा सकता। आरम्भ का सरल एवं स्पष्ट कर देन के लिए ही संस्कृत में प्रस्ता-बना की यात्रा की जाती थी। उसमें प्रेक्षक वस्तु स्थिति को समझ जान के कारण मोचन की प्रतीक्षा रममाण हो जाता था। प्राच्य नाटकों में भी इस प्राथम्यकता के महत्त्व को समझा गया। हममें ने नाटक के आरम्भिक अंश में ही पात्रों का एक चरित्रों की स्थिति का पाठकों को स्पष्ट कर देन का मुख्य नाटककार सम्मुख रखा है। उनका कथन है कि आरम्भिक परिचय या विवरण (Exposition) का दृश्य ही यह है कि वह प्रेक्षक का ऐसा स्थिति में पहुँचा दे कि वह उस नाटक के सभी घटीष्ट बताना स मुक्त हो जाए और यह प्राथम्यक है कि प्रेक्षक यथानीय जान जाए कि ये पात्र कौन हैं और काय क आरम्भ से पूर्व ही यह स्पष्ट हो जाए कि यह किन सम्बन्ध में परस्पर सम्मुख लगे हैं। आरम्भिक दृश्य में प्रविर्भाव व्याख्यात्मक होना चाहिए।

2. The purpose of the introduction or exposition is to put the spectator in possession of all such information as is necessary for the proper understanding of the play he is about to witness—and as it is essential that he should learn as quickly as possible who and what they are, and what the relations in which they stand to one another before the action begins, the opening scene or scenes of any drama must be largely occupied with explanatory matter

निक हिन्दी नाटक ने प्रस्तावना की बहानिक एवं उपयोगी औपचारिकता उड़ा दी जिसमें वस्तु स्थिति को नाटककार स्वयं ही तटस्थ भाव से नाटक के पूर्व स्पष्ट कर देता था। अप्रचलित ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित नाटकों में तो यह धीर भी आवश्यक है क्योंकि वही तो वस्तु-स्थिति से भी साधारण पाठक अनभिज्ञ होता है।

कथानक की मूल विशेषता यह होनी चाहिए कि उसका आधार जीवनगत घटनाओं से कहीं भिन्न न हो जाए। पाश्चात्य नाटक जिसमें कि कीतूहल संघर्ष दृष्ट प्रादि घमाचारण घटनाओं पर बस दिया जाता है वह भी इसका मूल आधार जीवन ही मानते हैं। यह घमाचारण घटनाएं मानव जीवन की सीमा से परे नहीं होनी चाहिए। इस बारे में रोनल्ड पीकाक लिखते हैं कि 'यदि आपने नाटक की बिना का अध्ययन किया है तो इसमें अनुबर्त्ता वस्तुओं सहित जीवन का सम्बन्ध स्वीकार करें।'<sup>१</sup>

### चरित्र-चित्रण

चरित्र चित्रण के विधान में भारतीय धीरे पाश्चात्य दृष्टिकोण से अन्तर जानने से पूर्व मानव चरित्र के मूल मन का विश्लेषण कर लेना अधिक युक्तिपूर्ण होता। मन ही मानव के कर्म और बचन दोनों की मूल प्रेरणा है। मन में अनेक भाव विद्यमान रहते हैं जिनको दो वर्गों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—प्रथम बुद्धवृत्तियों का वर्ग जिसमें काम क्रोध मोह लोभ अहंकार, ईर्ष्या प्रादि आते हैं द्वितीय सत्प्रवृत्तियों का वर्ग जिसमें दया क्षमा ग्याय अहिंसा कल्याण कर्म प्रादि का समावेश होता है। प्रत्येक क्रिया में प्रवृत्त होने से पूर्व मानव-मन में यह द्वैत-दानव-युद्ध होता है। इस सत्प्रवृत्ति और बुद्धवृत्ति के सामूहिक युद्ध के प्रतिरिक्त कभी-कभी सत्प्रवृत्तियों का भी अन्त-संघर्ष हो जाता है जैसे दया और ग्याय के मध्य संघर्ष और इसी प्रकार बुद्धवृत्तियों में भी जैसे क्रोध और लोभ में संघर्ष।

इन प्रवृत्तियों की सफलता-असफलता इनकी आधारभूमि-संस्कारों की प्रबलता पर निर्भर करती है। प्रत्येक प्रवृत्ति के आधार संस्कार होते हैं जिनके दो वर्ग हैं—एक जन्मजात संस्कार का कि व्यक्ति अपनी बुद्धि के स्वतन्त्र उपयोग से पूर्व समाज से एवं माता-पिता से ग्रहण कर लेता है। यह संस्कार अपर्याप्त प्रबल

१ If you choose drama as your form, you accept its evocation of life, with conquest obligations.

होते हैं। दूसरे वह जो मनुष्य परिस्थिति के अनुसरण से स्वयं बुद्धि द्वारा ग्रहण करता है पर्याप्त परिस्थितिजन्य। इन सम्बन्धों की प्रकृति का साधारण पर इनके भी तीन-तीन वर्ग किए जा सकते हैं—एक प्रथम संस्कार जो प्रतिभूत परिस्थिति में भी स्थिर रहता है दूसरे दूसरा संस्कार, जो प्रतिभूत परिस्थिति में मूलग्राम हो जाते हैं और तीसरा मध्य काटि के संस्कार जो प्रतिभूत परिस्थिति में दब जाते हैं और परिस्थिति के अनुकूल होने पर पुनः जाग्रत हो जाते हैं। परिस्थिति-जन्य संस्कार बहुत दुर्लभ होते हैं परन्तु अविरत संस्कारित होने पर वे प्रथम वर्ग जाते हैं। इस सारी संस्कार मूर्ति को साधारण बनाकर जब नाटककार अपने पात्र का चित्रण करता है तो उसमें स्वाभाविकता सहज ही छा जाती है। इसलिए प्रायः सफल एक मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण उस ही कहा जाता है जिसमें नाटक-कार पात्र का व्यक्तिगत विमर्श करने के पश्चात् उसे स्वतन्त्र कर दे उसमें बीच-बीच में हस्तक्षेप करके उस करने मजबूत की और लाना चरित्रों के मानवीय व्यक्तिगत को संक्षिप्त कर देता है।

कम में प्रवृत्त होने से पूरा मानव के हृदय में सम्पूर्ण और परिस्थिति के मध्य झुकाव होता है। इस झुकाव के स्वभाव को विज्ञान के पश्चात् ही उस कम में प्रवृत्त विज्ञान से एकदम विरोधी कम भी स्वाभाविक दिशाई देने लगते हैं और यदि कम की मति संस्कार के अनुकूल ही है तो भी अन्तर्मुख दिशा में से मानव के व्यक्तिगत में समीक्षा आती है। अतः अन्तर्मुख दिशा का नाम ही स्थितियों में आह्वयक है। इस अन्तर्मुख को विज्ञान में उन्मेषासना को तो कोई कल्पनाई नहीं होती क्योंकि वहाँ वह स्वयं पात्र के हृदय के अन्त को स्पष्ट कर सकता है। नाटक में वह अवस्था बन जाने के कारण अत्यन्त नाट्यमय का साधारण ने स्वयं का विचार दिया जा। स्वयं के अन्तर्मुख पात्र अपने चरित्र के मुख्य लक्षणों का स्वयं उद्घाटन करता है जिससे चरित्र एक रहस्य बन रहा प्रेक्षक की भावानुभूति को तात्पर्य के लिए सहज प्रेरित करता है। दार्शनिक तथाकथित दार्शनिकों नाटककारों ने इसे स्वाभाविक बनाकर, अन्तर्मुख को प्रकट करने के लिए पात्र की अन्तर्मुख क्रियाओं एवं मूक विचारमय स्थिति को साधन बनाया। परन्तु स्वाभाविकता के लिए बाली का लक्ष्य कम के लक्ष्य से अधिक विस्तृत हान के कारण उनके चरित्रों को स्पष्ट होने के लिए बुद्धि का आश्रय लेना पड़ता है। हिन्दी नाटक की मूलवर्ग परम्परा में अभी स्वतन्त्र की ही अधिक शक्ति दिया जाता है।

चरित्र दो प्रकार के कहे जाते हैं—स्थिर (flat) और गतिशील (round) स्थिर चरित्र वे होते हैं जिनके जगजग संस्कार इतने प्रबल होते हैं कि वह



प्रतिकूल परिस्थिति में भी बचते नहीं। उनमें उद्देशन हो सकता है परन्तु बिना उन्हीं की होती है। यथिधीन चरित्र वे होते हैं जिनके जन्मजात संस्कार इतने प्रबल नहीं होते कि वे प्रतिकूल परिस्थिति के चपेड़ों को सह सके। इनके चरित्र विद्वेषण में अधिक सहनशीलता की आवश्यकता है। अन्तर्द्वन्द्व का स्वरूप बिना की तरह स्पष्ट हो जाने पर ही परिवर्तन स्वाभाविक प्रतीत होता।

चरित्रों के गुण-स्वभाव आदि के अनुसार भी चरित्रों के दो वर्ग किए जाते हैं— बर्त प्रतिनिधि चरित्र तथा व्यक्तिवादी चरित्र। जैसे तो प्रत्येक चरित्र बड़े बड़े और बड़े-बड़े विद्वेषणाओं का समन्वित रूप है परन्तु यदि नाटककार ने उस चरित्र की बर्तगत विद्वेषणाओं के उद्घाटन में ही कीलक दिखाया है तो वह बर्त प्रतिनिधि चरित्र कहलाएगा और यदि उसकी व्यक्तिवादी विद्वेषणाओं को ही बल दिया गया है तो वह व्यक्तिवादी चरित्र कहलाएगा।

संस्कृत नाटकों में प्रायः स्थिर चरित्रों का ही अधिक आश्रय लिया गया है। इसके कई कारण हो सकते हैं प्रथम मानव चरित्र के जन्मजात संस्कारों को मोड़ने के लिए इसके प्रत्येक पहलू पर विस्तृत अन्तर्द्वन्द्व दिखाए जाने से ही स्वाभाविकता बनी रह सकती है जोकि नाटक के सीमित आकार में सम्भव नहीं। दूसरे स्थिर चरित्रों में आदर्श निर्वाह भी अधिक सम्भव है। परन्तु इससे उनकी कला की हानि नहीं हुई क्योंकि उन्होंने स्थिर चरित्र—बाहेर वह कितना आदर्श पुरव क्यों न रहा हो की मानवीय आधार पर ही ग्रहण किया है। साहित्य की किसी अन्य विधा में चरित्र के मानवत्व पर इतना बल दिया जाय सम्भव नहीं परन्तु नाटक में चरित्र को अन्तर्द्वन्द्व बिना दिखाए से कला की हानि होती है। उदाहरण के लिए मर्यादा पुण्योत्तम राम जैसे चरित्र को सबभूति सब सम्पद का बच करते दिखाते हैं तो उनका हृदय दया के भाव से भर जाता है वही दूसरी ओर उसी कटना के वर्णन में बाणभीक राम के व्यक्तित्व को पूर्णतः छटपटा रक्त रक्त कीरता के भाव को प्रवर्धित करते हैं और इसके हृदय में देवताओं द्वारा पुण्यवटि भी बरका होते हैं। रामायण के राम आर्य नेता उदात्त भाति रसक और आदर्श पुरुष हैं उनमें आद्य सम्पदा मूर्तिमान होकर आती है। सत्तररामचरित के राम व्यक्ति के रूप में आते हैं। वे राजा हैं किन्तु राजा के साथ वह अपना निजी गुण-गुण भी रखते हैं।<sup>१</sup>

अतः स्पष्ट हुआ कि संस्कृत नाटकों में पूर्णतः स्थिर चरित्रों में भी अन्तर्द्वन्द्व बिना नाटककार उन्हें मानव भूमि के अधिक निकट से घासा है।

## सैद्धान्तिक बिबेचन नाटक

पारबाल्य नाट्यमात्र में यतिहीन चरित्रों को भी महत्त्व प्राप्त है। अतः हिन्दी नाटक पर हमका भी प्रभाव पड़ा। हिन्दी नाटक की आरम्भवाणी ऐतिहासिक सांस्कृतिक धारा में प्रमुख चरित्र यद्यपि स्थिर ही है परन्तु कई उपप्रमुख चरित्रों को दृष्टिगोचर भी निरूपित किया है।

संस्कृत नाटकों में ब्रह्मचरि और व्यक्तिवादी चरित्र—जनों के समन्वित गुणों से युक्त चरित्रों का निर्माण बड़ी कठिनता में हुआ। चरित्र अपनी ब्रह्मचरि विशेषताओं में युक्त है और राजा है तो उसके साथ राजघराने के अनुकूल है परन्तु फिर भी हम जनों की विशेषताओं की सीमा के अन्दर ही उसमें व्यक्तिवादी विशेषताओं का प्राणोप हुषा जिसके कारण उसके चरित्र में महानता प्राप्त है और सीमाएँ भी हैं। दुष्कृत राजघराने का हाथ के कारण ब्रह्मचरि विशेषताओं में पर नहीं है परन्तु उसके व्यक्तिवादी की भक्त भी स्पष्ट है।

प्राज्ञ व्यक्तिवादी का प्राधान्य इन के कारण ब्रह्मचरि विशेषताओं में पर मोक्ष के लिए अधिक प्राधान्य है। सामाजिक नाटकों में यह स्वाभाविक भी कहा जा सकता है क्योंकि प्राज्ञ समाज भावदृष्टि में पूर्ववर्ती ब्रह्मचरि एक स्वच्छन्द है। प्राज्ञ व्यक्तिवादी प्राज्ञ समाज के परधान प्राधान्य सामाजिक अधिकारों को समझने के परधान प्राधान्य स्वच्छन्द रीति से प्राप्त सकता है। इसमें यदि प्राज्ञ बर्ण बनाए भी जाए तो वह अधिक व्यापक होवे और पुराने बर्ण युक्त बर्ण प्राप्त हो जाय। जिसमें स्वच्छन्द विचारण के लिए पूर्ण क्षेत्र है। हिन्दी नाटक परम्परा की मुख्यतः चारों प्रकार के चरित्रों का समावेश है।

ब्रह्मचरि और चरित्र का सम्बन्ध स्पष्ट कहा गया है। जिसकी महान एवं समाधारण बनना होगी उसमें ही महान चरित्रों की मूर्ति होगी। समाधारण बननाओं के निम्न पर ही चरित्र चित्रण में सीमाएँ आएँ जिसमें उसके बीच उन्माह ब्रह्मचरिवादी प्राज्ञविचारण प्राज्ञि गुण प्रकार में आएँ। इसी प्रकार समाधारण चरित्रों के बिना समाधारण बनना भी सम्भव नहीं।

चरित्र का उद्घाटन नाटककार कई विधियों में करता है। प्राज्ञों के आदर्शवादी जो कि उनके व्यक्तिवादी की प्रतिच्छाया प्राप्त है चरित्रों को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त प्राज्ञों के विचारण प्राज्ञ प्राज्ञों का उस प्राज्ञ के बारे में कथन और प्राज्ञों के स्वगत-प्राधान्य प्राज्ञ भी चरित्र का उद्घाटन करते हैं।

## प्राज्ञ-प्राज्ञी

संस्कृत नाट्यमात्रों के प्राज्ञियों में प्राज्ञ की रमानुभूति पर अधिक बल

रिया। नाट्य-कृतियों से उनका यही प्रयोजन था।<sup>१</sup> जैसे शृंगार रस है तो उसमें केवलकी वसति का प्रयास होना चाहिए। परन्तु जसा कि सिद्ध किया जा चुका है कि हिन्दी नाटक के रस में अन्य रसों का सम्मिश्रण हुआ जान के कारण संस्कृत के रस रसक से मिलता था गई है। अतः संवादों पर भी उसका प्रभाव पड़ा। यथार्थवादी चारा के प्रभाव के कारण संवाद में भाव के अतिरिक्त तर्क की प्रधानता होना भी एक विशेषता हो गई। भाषा पद्य के स्थान पर पद्य प्रधान हो गई परन्तु रसानुसृत बातावरण बनाने के लिए गीत का आश्रय नाटकों में कहीं-कहीं अपनाया गया। संवाद का उपयोग चरित्र-विवरण एवं कथा के विकास में योग देना मुख्य माना जाने लगा। पं० सीताराम जगन्नीनारायण नाटकीय वाक्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं— नाटकीय वाक्य उस ध्वनि-समूह को कहते हैं जो किसी पात्र के मुख से नाटककार द्वारा निश्चित स्थिति में व्यक्त होकर नाटकीय कथावस्तु, चरित्र भाव प्रवृत्ति पर परिचयित को समझने में बर्तकों को योग दें।<sup>२</sup>

संवाद की परिभाषा की एक प्रमुख विशेषता स्वाभाविकता मानी गई है परन्तु स्वाभाविकता से यह अभिप्राय नहीं कि बाउचीत में जो कृत्रिम संश्लेषिता प्रवृत्ति पुनरावृत्ति लक्षित वाक्य और निरन्तर बातें बीच-बीच में बमती है वह बमती रहे। उसमें साहित्यिकता होगी आवश्यक है। टी एस एलियट गद्य और पद्य भाषा का अन्तर बताते हैं साधारण बोलचाल की भाषा ही पद्य से तुलना करत हुए लिखते हैं कि “परवर्ती पीढ़ियों द्वारा पढ़े और बोलने वाले वाले स्वादी नाटकों की भाषा से साधारण बोलचाल की भाषा अपनी कुछ दृष्टा बनी अविरत अनुमान का आशय लेने की प्रवृत्ति और सम्भवस्थित एवं प्रचुरे वाक्यों के कारण उसी प्रकार ध्वनि प्रयोग गद्य और वाक्य-विन्यास में मिल जाती है जिस प्रकार पद्य से।<sup>३</sup>

१. “साहित्यिक-रस के विकास के लक्ष्यार्थ ने ‘वर्तमानों के प्रति वृत्ति’—जिसे के कारण रस बलवान हो जो रसमय का प्रभाव कारण हो वह वृत्ति है, रस प्रकाश का अनुपस्थिति-रस बल मिलता है।

—कृष्ण रसमय स्वाभाविकता १० १११

२. अभिन्न नाट्यशास्त्र पं० सीताराम जगन्नीनारायण ५ २३

३. In those plays which survive which are read and produced on the stage by later generations, the prose in which the characters speak is as remote, for the best part from the vocabulary system and rhythm of our ordinary speech—with its fumbling for words, its constant recourse to approximation, its disorder and its unfinished sentences—as verse is.

इससे स्पष्ट हुआ कि स्थायी एवं महान् नाटकों की भाषा सीपठ्य एवं परिभाष्य होती है। वास्तव में स्वाभाविकता का अर्थ पात्र की प्रकृति की अनुकूलता है।

संवादों में जाड़-तोड़ के प्रत्युत्तर होने चाहिए जिससे जनम सजीवता बनी रहे। इसके प्रतिरिक्त संवाद की भाषा में प्रसाव-गुण का होना आवश्यक है। यदि उसमें शार्पेनिक या पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग अधिक होगा तो उस में सरलता एवं बोधव्यवस्था का अभाव हो जाने के कारण नाटक सर्वसामान्य की वस्तु न रहेगा।

वास्तव में संवाद कई कथानक, चरित्र-विवरण आदि से पूर्णतः भिन्न वस्तु नहीं है, प्रत्युत इसका इनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि कवि न पात्रों की अनुकूलि की पूर्णतया आत्मसाध कर रहा है तो संवाद स्वाभाविकता एवं साहित्यिक चरित्रावली ही मिले होंगे। वास्तविक साहित्य में खेती और विचार को शरीर और आत्मा के सम्बन्ध से स्पष्ट किया गया है। स्काट जेम्स खेती और विचार के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं

‘यद्यपि खेती सदा बाह्यवत् होती है तथापि इसे केवल बाह्यवत् ही नहीं मानना चाहिए। यह जैसा कि डी जेम्स ने कहा, ‘विचार का शरीर है’ यद्यपि जैसे जैन बोम्बन का कथन है कि अभिव्यक्ति में शब्द और विचार शरीर और आत्मा की प्रति सम्बन्ध है।’<sup>1</sup>

अतः खेती को भी उचित महत्त्व देना चाहिए।

पात्रानुसृत भाषा की स्वाभाविकता के निर्वाह में सहायक होती है। जैसे विद्वान् पात्रों की भाषा अधिक साहित्यिक ही और अधिष्ठित पात्रों की भाषा जनके व्यक्तित्व की परिचायक। संस्कृत-नाटकों में इसी आधार पर दो भाषाएँ चलती थीं। एक संस्कृत दृष्टरी प्रामुख्य। अतः पात्र की भाषा के साथ साथ काल और उसके व्यक्तित्व को सम्बन्ध रखना चाहिए।

आवश्यक

संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटककार का लक्ष्य वास्तव रूप में विशिष्ट स्थायी भाव को विमान अनुभाव और संवादी के संयोग से रस में परिणत करना

1 Style, though always external, is not to be thought of as merely external. It should be as De Quincey said, “an incarnation of thought; as Ben Jonson said, in all speech, words and thoughts are as the body and soul.”

या । परन्तु हिन्दी-नाटक में पारंपार्य प्रभाव के कारण उसकी स्थिति किञ्चित् भिन्न हो गई । बहु धन रस में परिणत होकर मानव की मूल वासना-वृत्तियों के उदात्तीकरण में समर्थ नहीं हो पाता । उसे धन कमाने की प्रवृत्ति एवं रोचक बनाने, चरित्रों में मानवीय विशेषताओं को प्रदर्शित करने तथा विचारों को महत्त्व देने के लिए साधन रूप में प्रयुक्त किया जाता है । परन्तु भाव की व्यापक महत्ता नाटक में धन भी उसी प्रकार नहीं हुई है ।

भाव की दृष्टि से नाटक के सूत्रपाकन की प्रमुखता दो कसौटियाँ हैं—प्रथम भाव की व्यापकता दूसरे भाव की तीव्रता । जिसने अधिक व्यापक भाव का नाटककार बन करेगा उतना ही नाटक अधिक प्रभावित एवं सफल होगा । जीवन के साथ इसके व्यापक और घनिष्ठ सम्बन्ध के लिए इसी कारण भाव रहता है । संस्कृत नाट्यशास्त्र में तो नाटक के बाह्य काव्य की प्रवेष्टा जीवन के अधिक निकट होने पर बन दिया गया है । इसी कारण से काव्य के भी स्थायी भाषा में से केवल तीन उल्हास रति धीर लोक को ही नाटक के लिए उपयुक्त माना गया है क्योंकि यही भाव जीवन के प्रमुख व्यापारों को व्याप्त करने में समर्थ हैं । पारंपार्य नाट्यशास्त्र में भी जीवन के साथ इसकी घनिष्टता पर विशय बल दिया गया है । रोमरूक पीकाक लिखते हैं “यदि आपने नाटक की विधा का चयन किया है तो इसमें अनुचित बर्तनो सहित जीवन का सम्बन्ध स्वीकार करें ।”

भावुकिक युग में जीवन-क्षेत्र में बहिष्कृत और व्यापकता के कारण बटलताएँ बढ़ गई हैं जिसके कारण बीडिकता का समावेश अधिक हो गया है परन्तु नाटक तो साधारण जीवन के बीडिकता पूर्ण विधिकर्मों में सफल नहीं हो सकता । नाटक में तो जिसनी प्रसाधारणता होनी चाहता है वह सफल होना और प्रसाधारण कर्म के प्रेरक भाव उल्हास रति धीर लोक भाविक रूप और व्यापक भाव ही हो सकते हैं । धन कहा जा सकता है कि नाटककार ने जिसनी कुशलता जीवन की व्याप्त करने वाले भावों के चयन में बिछाई उसी अनुपात में नाटक सफल होगा ।

दूसरे भाव की तीव्रता और गहराई भी नाटक को सफल एवं प्रभावित बनाने का आधार है । जिसनी अधिक भाविक स्थितियों का निर्माण नाटककार करेगा जिसमें भाव उदीप्त होकर प्रसक्त के हृदय को स्पर्श कर सके उतना ही अधिक नाटककार सफल होगा । वस्तुतः भावों की तीव्रता पर ही रूपान्तर की

\* “If you choose drama as your form, you accept its evocation of life & its conquest obligations.”

प्रबलित्वा और परिभाषक की सूक्ष्मता निर्भर करती है।

यद्यपि हृदयस्पर्शी भावों के ज्वलन और सामिक स्थितियों में उन्हें तीव्र बनाकर पाठक की हृदयवर्ष कराने में नाटककार जितना कौशल दिखाता है उतना ही नाटक सफल होता है।

### विचार तत्त्व

प्रत्येक नाटक का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है, धर्म होता है जिसकी प्रतिष्ठा करने के लिए ही नाटककार नाटक-रचना में प्रवृत्त होता है। यह उद्देश्य क्या हो इसे सीमित नहीं किया जा सकता। 'यह विचार तत्त्व धार्मिक-नैतिक भाव-मार्मक धर्मवा मतोवैज्ञानिक किसी भी प्रकार का हो सकता है जो कि प्रसक्त के हृदय या मस्तिष्क को स्पर्श कर सके।'<sup>१</sup>

इसकी सीमा का विचार इसकी उपयोगिता के अनुकूल हो दृष्टियों से किया जा सकता है। विचार तत्त्व जितना अधिक साक्षर एवं महान् होगा नाटक उतना ही अधिक स्थायी एवं महान् बनने में समर्थ होगा और जिस अनुपात में उसकी उपयोगिता एवं महत्ता सांख्यिक होगी उतनी अनुपात में उसकी सर्व-कालीनता सम्बन्ध हो जाएगी। दूसरी सीमा विचार की सार्वभौमिकता की दृष्टि से है। जितना वह मानव की मूल समस्याओं के निकट होवा उतना ही अधिक वह महान् होगा।

संस्कृत-नाटकों में विचार तत्त्व प्रच्छन्न एवं निपुण था। वह भाव की तहों में धावेष्ट होकर ही स्पर्शित होता था। पारस्पर्य-प्रभाव के कारण यह अधिक स्पष्ट एवं व्यक्त हो गया है। वस्तुतः यह जितना अधिक प्रच्छन्न एवं निपुण होता उतना ही अधिक प्रबलित्वा एवं स्थायी प्रभाव डालेगा। बीडिकता के समा-काल से इसका हृदय पर प्रभाव कम हो जायगा। इसकी व्यंजना निपुण एवं प्रच्छन्न होते हुए भी मुखर होनी चाहिए।

उद्देश्य की यह व्यंजना दो माध्यमों से व्यक्त होती है—प्रथम, समुच्चय (designs) से दूसरे, विवरण (detail) से। समुच्चय के अन्तर्गत नाटक के कथात्मक का समग्र प्रभाव आया। घटना-प्रधान नाटक में घटना का, चरित्र-प्रधान नाटक में चरित्र का और विचार प्रधान नाटक में विचार का जो समग्र प्रभाव पाठक या श्रोता के हृदय को स्पर्श करता है, उसे समुच्चय का प्रभाव कहा

१ "And here must be some central meaning whether religious, moral, emotional or psychological which strikes home to the spectator's head and heart"

जाएगा। इस समुच्चय के प्रभाव के अतिरिक्त नाटक के खम्बों से उसके बृक्षों से विशिष्ट चरित्रों से उनकी प्रखरता तथा तीव्रता से जाशों की गहराई से जो प्रभाव मन पर पड़ेंगे वे विवरण के अन्तर्गत आएंगे। प्रायः विवरण से व्यञ्जित होने वाले प्रभाव मूल प्रभाव के योग्य होत हैं परन्तु कभी कभी वे अतिरिक्त प्रभाव भी रखते हैं। जैसे सिन्धूर की होली में समुच्चय का प्रभाव तो मुरारीनाथ के काय-व्यापारों से हुआ है, परन्तु समस्याएँ तथा उनके सम्बन्धित विचार विवरण से व्यञ्जित हुआ है। परन्तु प्रभावी एवं स्पष्ट व्यञ्जना उभी होती है जब विवरण और समुच्चय दोनों से एक ही भाव की व्यञ्जना हो।

नाटक के इन्हीं तन्त्रों के आचार पर ही नाटक की वसततक समीक्षा समीचीन है।

## समस्या-नाटक—संज्ञान्तिक विवेचन

‘समस्या-नाटक’ के अतिशय से ध्वनि निकलती है कि समस्या-नाटक वह नाटक है जिसमें किसी समस्या का विवेचन किया जाए। परन्तु इस दृष्टि से विचार करने पर तो प्रायः सभी नाटकों को समस्या-नाटक कहा जा सकता है। कासिदास का ‘अभिज्ञान शाकुन्तल’ भी एक समस्या-नाटक कहा जाएगा क्योंकि उसमें गन्धर्व विवाह की समस्या का प्राधान्य है।

पारबाल्य नाट्यशास्त्र में ‘समस्या-नाटक’ का व्यापक रूप में प्रयोग बर्नार्ड शॉ ने करने तथा इसका नाम नाटकों के लिए किया था। इस नाटक के अतिशय और अतिशयजना दोनों में परम्परागत नाट्यरूप से भिन्नता थी। परन्तु इस नवीन नाम में इन नाट्यरूप की समस्त विशेषताओं को व्याप्त करने की सामर्थ्य न होने के कारण यह नाम भी पारबाल्य आलोचना प्रपञ्च में रुक न हुआ। आलोचकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार इसे मिला-मिला नामों से अभिविष्ट किया। प्रसिद्ध आलोचक कंडेलर ने इसका नाम नाटकों को ‘विचार-रसक नाटक’ और बर्नार्ड शॉ के नाटकों को ‘व्यंग्यक नाटक’ कहा है।<sup>1</sup> पारबाल्य नाट्य-अनुसंधान के प्रसिद्ध आलोचक डा० निकल ने बर्नार्ड शॉ के नाटकों के लिए ‘उद्देशपूर्वक हसना (purposeful laughter) शब्द प्रयुक्त किया।<sup>2</sup> इसी प्रकार आलोचकों में किसी न टीसी के आधार पर ऐसे तर्क-वितर्कपूर्ण नाटक (discussion play) कहा तो किसी ने ‘नाटकीय संवाद’।<sup>3</sup> किसी ने इस बात का प्रवर्तन हुआ तो बर्नार्ड शॉ द्वारा दिया गया नाम ‘समस्या-नाटक’ ही प्रचलित हो गया। जैसा कि प्रायः विवेचन से स्पष्ट हो जायगा कि यह नाम इनकी सम्पूर्ण विशेषताओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं था। किन्तु क्योंकि यह नाम

<sup>1</sup> Thus Shaw is considered, in the last chapter as representative of the drama of satire and Ibsen, in the first, as master of the drama of ideas.”

—Preface Chandler Aspects of the Modern Drama

<sup>2</sup> A. Hardyce Nicoll World Drama

<sup>3</sup> Hudson (L.) The Twentieth Century Drama

(Chapter The Author's Theatre)



हिन्दी-बंगाल में कई धर्मों तक बढ़ हो चुका है इसलिए इसी नाम का प्रयोग समीचीन होगा। इस नाम से विविध धर्म का चोखन करण के लिए इसके साथ 'तथाकथित' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है।

### समस्या-नाटक का वास्तुपक्ष

इस नाट्यरूप की प्रथम विशेषता है कि इसमें नाटककार का उद्देश्य रस व्यंजना नहीं समस्या चित्रण है और समस्या के सफल चित्रण के लिए नाटककार नाटक की विधा को साधनरूप में प्रयुक्त करता है। सौन्दर्य-सृष्टि प्रवर्धन प्रेक्षक को आनन्दित करना उसका सम्मुख योग्य महत्त्व रखते हैं। समस्या के तीव्र तम रूप को प्रेषित कर पाठक की विचारशक्ति को उद्बुद्ध करना ही उसे प्रतीष्ट है। वह नाटक के ग्रन्थ उत्पन्न—वचनक चरित्र संवाद आदि की योजना इसी उद्देश्य की दृष्टि में रचकर करता है। ग्रन्थ उत्पन्न किस सीमा तक अपने परम्परागत माध्यम से भिन्न हो जाते हैं, इसका विचार विस्मय में किया जायगा।

दूसरे यह कि इस नाट्यरूप में समस्या से अभिप्रेत धर्म समाज की सामाजिक समस्या है जो समाज के अधिकांश वर्ग को उद्देशित करने के कारण फलदायी भी कही जा सकती है। यह समस्या समाज के भीतर प्रकट रहस्य की तरह व्याप्त होती है परन्तु सच्चाई को तटस्थ भाव से सातकर उसमें बुझ का बुझ और पानी का पानी करने का साहस समाज में नहीं होता यही नाम यमार्थवादी नाटककार करता है। बर्नार्ड शॉ इस विषय में अपने 'आईडियलिस्ट और आईडियलिस्ट' नामक लेख में विस्तृत वर्णन करते हुए लिखते हैं कि हम स्पष्टतया धारणाओं की व्यवहेतना देखते हुए भी धार्मिक मूल लते हैं। यह समस्या समाज के अधिकांश वर्ग के सम्मुख उपस्थित होती है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति अपने को अकेला समझ कर समाज के धारणाओं के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं करता। शॉ इस बारे में उदाहरण देते हुए कहते हैं कि समाज में प्रत्येक सहस्र व्यक्तियों में से ७ • व्यक्ति यमार्थवापरायण होने के कारण विचार ही नहीं करते २५६ व्यक्ति उन धारणाओं से डरते हैं परन्तु सामाजिक धारणाओं के नाम के कारण वह इस बोझ को सहते हैं और मूढ़ मोतने का साहस नहीं करते। केवल एक व्यक्ति यमार्थवादी नाटककार है जो उनकी समस्या को उनके सम्मुख खोलकर रखता है और समाज को अपने धारणाओं के प्रति पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित

करता है। यद्यपि स्पष्ट हुआ कि समस्या में कार्य सामयिक समस्या ही नहीं ज्वलन्त समस्या है जिससे अधिकारम लोग पीड़ित हैं।

नाटककार का ज्वलन्त समस्या को चित्रित करने का प्रयत्न तर्कसंगत समाज के विचारों की रचना-परिवर्तन करना है। उसके पास एक निश्चित विचार है, संकट है जिसके प्रयोग के लिए वह नाटक को माध्यम बनाता है। श्री लक्ष्मी-काण्ठन मिश्र ज्ञानपीठ की भूमिका में लिखते हैं 'यह मुझ कलाकार का नहीं तत्त्वार्थी कलाकार का है जिसे तुम्हारे डॉ. महोदय ने किबासकर धार्मिक कहा है। उसका (नाटककार के) जीवन की अनुभूति तुम्हारे जीवन में प्रवेश करती है। तुम भीतर हो भीतर बहल जाओ। तुम्हें पता नहीं चलता। जब तुम समय पर दृष्टि प्राप्त हो देखो तो वह बदल गया तुम भी बदल गए। जो कुछ था सब बहल गया। वह क्यों? सब कुछ गया? यह काम कलाकार का नहीं तत्त्वार्थी कलाकार का है।' इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि समस्या-नाटककार समस्या-विवेचन में तत्त्व रक्त हुए भी एक मध्य मिते रहते हैं। प्रसिद्ध धार्मिक निकल का भी डॉ. के नाटकों के लिए 'जैसे-जैसे उपहास' शब्द का प्रयोग इसी तथ्य का व्यञ्जित करता है। डॉ. ने स्वयं भी मित्रिज बालेन प्रीतिमान की भूमिका में इस तथ्य को स्वीकार किया है। उनका कथन है कि मैंने अपने विचारों के प्रयोग के लिए ही नाटक के माध्यम को अपनाया है यही विचार मुझे बचने मरण प्रतीत हुई।

इस नाटक का चौथी एवं प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें केवल समस्या का चित्रण मात्र ही नहीं होता प्रत्युत उसका पक्ष एवं विरुद्ध पर तर्कपूर्ण विवेचन किया जाता है। इसी तर्क-वितर्क के माध्यम से नाटककार समस्या के विभिन्न पहलुओं की बुद्धि के निष्कर्ष पर परलता है और प्रेक्षक के सम्मुख सारी समस्या एक सुनी पुस्तक की भाँति स्पष्ट हो जाती है। यह तर्क-वितर्कपूर्ण विवेचन ही इस नाट्यरूप को अन्य नाटकों से भिन्न करता है।

भारतभू काल के नाटकों में भी सामयिक एवं सामयिक समस्याओं का चित्रण किया गया था परन्तु विचारपूर्ण बौद्धिक तर्क-वितर्क के अभाव में उन्हें समाकलित समस्या-नाटकों की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता।

समस्या-नाटक में तर्क-वितर्क की समिवायता का विचार करते हुए डॉ. लिखते हैं कि "यह नाटक जिसमें कोई तर्क नहीं कोई समस्या नहीं समीर नाटकों की

श्रेणी में नहीं रखा जा सकता ।<sup>१</sup>

इस नाटक के प्रणेताओं का विचार है कि समाज के लिए उपयोगिता और स्वायत्तता की दृष्टि से यह नाटक अन्य नाटकों की अपेक्षा कहीं ऊँचा है । हाँ इन नाटकों की तुलना सामान्य बटना प्रधान नाटक से करने हुए लिखते हैं कि सामान्य नाटक जिनमें दो प्रेमियों के मध्य प्रतिद्वन्द्वी की कथा का चित्रण होता है प्रेक्षक को बस-बीस कथाओं के प्रेक्षण के पश्चात् उन सभी स्थितियों तथा उनके सम्भावित परिवर्तनों से परिचित करा देता है जिनके आधार पर उन कथानकों का संगठन किया जाता है । इस प्रकार कुछ दिन के पश्चात् प्रेक्षक के लिए बटनाओं में कोई आकर्षण नहीं रहता । फिर कुछ दिन तक वह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों के कृपण अभिनय का प्रदर्शन बनकर नाटक देखने जाता है परन्तु वह भी अधिक दिन तक उसे आकृष्ट नहीं कर सकता । और हाँ का ऐसा विचार है कि विचारपूर्ण नाटक का छोड़कर बिना संगीत के किसी नाटक का कोई भविष्य नहीं है ।<sup>२</sup> वह इस नाटक के स्वल्प और उपयोगिता के बारे में लिखते हैं 'उसी नाटक की वस्तु प्रकृति अनोखी हो सकती है जिसमें व्यक्तिगत चरित्र की महत्वपूर्ण समस्या को उठाया जान और उस पर सुझावपूर्ण टिप्पणियाँ किया जाय । प्रेक्षक ऐसे नाटकों से लाभान्वित होता है इस प्रकार वह न केवल अपने मन के बहने ही कुछ प्राप्त करेगा प्रत्युत कुछ सामग्री वह न्यायी सम्यक्ति के रूप में भी ग्रहण करेगा ।'<sup>३</sup>

इस नाट्यरूप के विस्तार में भी सामान्य नाटक से भ्रमर या जान के कारण इसका असर निम्नलिखित आवश्यक है ।

१ "But anyhow the play in which there is no argument and no case no longer counts as serious drama."

—Quintessence of Ibsenism Shaw Page 139

२ And there is really no future now for any drama without music except the drama of thought

—Eosopcan's Theory of Drama Clark, Page 473

३ Now an interesting play cannot in the nature of things mean anything but a play in which problems of conduct and character of personal importance to the audience are posed and suggestively discussed. People have a thrifty sense of taking away something from such plays they not only have had something for their money but they retain that something as permanent possession.

—Quintessence of Ibsenism, Page 137

## नित्यपक्ष

### कथानक

नाटककार का उद्देश्य सामयिक समस्या का विवेचन करना है यात इसके लिए उसे कथानक का चयन भी वर्तमान समाज से हो करना पड़ेगा। यही साम्य मार्क्सवाद के लिए इसके देश हुए मिलने हैं। "त्रिज सामाजिक और राज नीतिक व्यवस्थाओं के बीच हमारी धारणा धारा चलती रही है। यदि हम चाहें तो तो उनका समावेश इतिहास के महान् चरित्रों में नहीं कर सकते। इस कारण हारकर हमें सामाजिक चरित्रों की कल्पना करनी पड़ेगी।"<sup>१</sup>

इस प्रकार के नाटकों में कथानक का चयन भी निम्न आधार पर किया जाता है। इनके लिए यथोक्त-प्रधान कथानक उपलब्ध नहीं। क्योंकि एक नाटक विषय नाटक और उसके प्रतिस्पर्धी का प्रेमिका के लिए बड़ा हो और उनके द्वारा अपनी लक्ष्यता के लिए मिल-जुल जमाव—प्रियाप्रेम के लक्ष्य प्रेम इत्यादि करते हैं। बौद्धिक तक विवेक का प्रयोग एक हास्यास्पद बात होगी। नाटक में ऐसे नाटकों में लक्ष्य-विवर्तक विवेचन के लिए कोई सामग्री हो नहीं होती। समस्या-नाटक के कथानक का आधार समाज के बीच स्थिर धारणाओं के समन में व्यक्ति और उनके परिवार के मध्य का द्वन्द्व होता है। इसमें समस्या पर बौद्धिक लक्ष्य-विवेक के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है।

कथानक की सीमावर्ति को भी समस्या-नाटक में विचार महत्त्व नहीं दिया जाता। क्योंकि व्यक्ति और उसके परिवार का द्वन्द्व नहीं भी समाप्त हो सकता है। प्रमुख महत्त्व तो द्वन्द्व का है। द्वन्द्व के बिना तो समस्या-नाटक का प्रभाव ही नहीं रहता। अर्थात् यदि द्वन्द्व के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए मिलता है, नाटक का सत्य मुक्तता का प्रयत्न दुःखान्त प्रयत्न जीवन की तरह इसका कोई भी पक्ष न हो परन्तु संभव अपरिहार्य है। संघर्ष नहीं तो नाटक नहीं।<sup>२</sup>

सामान्य कथानकों में समाधारण एक विचार हुआ माना जाता है। त्रिजना समाधारण कथानक होता है। उनका ही उन चरित्रों के प्रमुख प्रयोग द्वारा

१. मुक्ति। १९५०, नवम्बर-दिसम्बर, १, २

२. The end may be a reconciliation or destruction or as to life itself there may be no end but the conflict is indispensable to conflict, no drama.

मनोरंजक एवं प्रसन्नित्वा बनाया जा सकता है। परन्तु समस्या-नाटकों में प्रसाधारण्य की प्रवेष्टा नित्यप्रति के चिर-परिचित जीवन की व्यापार बनाया जाता है। डॉ. इप्सन के नाटकों की समीक्षा में लिखते हैं कि "यह माना जाता था कि जितनी दसाधारण नाटकीय स्थिति होगी नाटक उतना ही बेजोड़ होगा परन्तु इप्सन ने इसके विपरीत विचार व्यक्त किया है, जितनी परिचित वस्तु स्थिति होगी उतना ही नाटक अधिक मनाहारी होगा।"<sup>१</sup>

आचार-भूमि के इस परिवर्तन के कारण कथानक के विन्यास-क्रम में भी सामान्य नाटकों से भिन्नता पाई जाती है। समस्या-नाटक के कथानक के बर्तक डॉ. के अनुसार तीन भाग होते हैं—परिचय (Exposition) उत्पन्न (Situation) और तर्क-वितर्क (Discussion)।

प्रथम भाग में नाटककार समस्या के प्रत्येक पहलू को स्पष्ट करने वाला एक चित्र उपस्थित करता है जिससे पाठक के सम्मुख समस्या का एक पक्ष स्पष्ट हो जाता है और प्रायः यही प्रथम अंक समाप्त होता है। इस अंक में कथोपकथन को अत्यन्त संयत रक्ता पड़ता है।

नाटक के दूसरे भाग में कथा के विकास के कारण उत्पन्न उत्पन्न होती है और इसी उत्पन्न के कारण वास्तविक समस्या के दूसरे पक्ष पर विचार करने की बाध्यता पड़ती है। यह परिस्थिति पूर्ण परिस्थिति के कथानक से उत्पन्न होती है परन्तु इसका स्वरूप अधिक उत्पन्न हुआ और जटिल रहता है। पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष के विचार परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। इस प्रकार समस्या के दोनों पक्षों का विरोध जहाँ अरुण बिन्दु पर पहुँचकर पूर्ण रूप से एक दूसरे को अपनी ओर खींचता है 'उत्पन्न' की स्वीकृति कहलाता है।

समस्या-नाटक का तीसरा भाग ही सबसे महत्वपूर्ण होता है और यही इसे इतर नाटकों से सर्वथा भिन्न करता है। डॉ. ने इस समस्या नाटककार की कड़ीटी कहा है। हमें नाटककार दोनों पक्षों के विचारों का धैर्य चिन्तन प्रस्तुत करता है और निष्पक्ष भाव से बौद्धिक तर्क-वितर्क द्वारा पाठक की बुद्धि को उस समस्या की ओर विचार करने के लिए प्रेरित करता है। नाटककार स्वयं किसी भी पक्ष में अपना निर्णय न देते हुए प्रायः अनिर्णीत दशा में ही नाटक को समाप्त कर देता है क्योंकि उसे केवल नाटक का विचारोद्भावन ही अभीष्ट

१ And it was held that the stranger the situation the better the play Ibsen saw on the contrary the more familiar the situation the more interesting the play

## समस्या-नाटक—सैद्धान्तिक विवेचन

या। यों न इस स्थिति को स्पष्ट करत हुए इसम के 'ए बाग्म हाउम' के अन्तिम एवं महत्त्वपूर्ण दृश्य का उदाहरण दिया है जिसमें मोरा कहती है—'घाघा हम बिगत परिस्थिति का ठण्डे मन्त्रिण स विचार करें।'<sup>१</sup>

इस बन्धु बिग्यास का इतर नाटकों के बस्तु-बिग्यास से भेद स्पष्ट करत हुए यों लिखते हैं 'पूर्ववर्ती मुसगठिन कहे आम बात नाटकों के प्रथम अंक में परिचय द्वितीय अंक में उत्तमन और तृतीय अंक में बटना सुसम्पन्न आती या परन्तु प्रथम परिवर्तन, उत्तमन और तर्क-वितर्क ही तीनों भाग हैं जिनमें एक वितर्क ही नाटककार की प्रतिभा को बखोती है।'<sup>२</sup>

यों न समस्या की दृष्टि से बन्धु बिग्यास के इस स्वाभाविक प्रथम को बताना हुए भी इस क्रम पर अधिक बल नहीं दिया। इसमें समस्या तथा घटना के घन रूप परिवर्तन हो सकता है। बन्धु घटना और तर्क-वितर्क को अन्तिम रूप देना ही लक्ष्य है जिसके लिए तर्क-वितर्क कभी बाध न होता है और कभी-कभी घटना में आरम्भ से अन्त तक चलता है। यों इसे स्पष्ट करत हुए लिखते हैं 'तदनुसार हमारे इन नाटकों में जिनमें कुछ भेदे नाटक भी सम्मिलित हैं कुछ में आरम्भ तर्क-वितर्क से होता है और अन्त घटना से और दूसरों में तर्क वितर्क और बटनाएँ आरम्भ से अन्त तक परस्पर अनुस्यूत होती हैं।'<sup>३</sup>

### चरित्र-विवरण

चरित्र-विवरण की दृष्टि से इन नाटकों का साधारण व्यवसाय है। जैसे इन नाटकों की बटनाएँ हमारी परिचित होती हैं उसी प्रकार पात्र भी रंगक की भाँति साधारण स्वर के होते हैं। साधारणतः पात्र वयस्य विशेषताओं से युक्त होते हैं। श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र इन बारे में संक्षेपी की भूमिका में लिखत हैं 'जैसे अपने चरित्रों को यथाशक्ति जीवन के अनुकूल बनाया है उनके होने और

### १ Quintessence of Ibsenism

Formerly you had in what was called well made play an exposition in the first act, a situation in the second and unravelling in the third. Now you have exposition situation and discussion and discussion is the test of the playwright

—Quintessence of Ibsenism, Page 135

२ Accordingly we have now plays, including some of my own, which begin with discussion and end with action, and others in which the discussion interpenetrates the action from beginning to end.

—Quintessence of Ibsenism Page 138

रोने में तुम्हें अपने जीवन की बातें मिसँघो ।<sup>१</sup> इन चरित्रों में स्वतन्त्र व्यक्तित्व का प्रतिष्ठापन कर नाटककार इन्हें ऐसी परिस्थितियों में लाकर खड़ा कर रखा है जिससे वे अपने परम्परागत विचारों से भिन्न सोचते हुए भी स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। चरित्रों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के बारे में मिश्रजी लिखते हैं— 'मैंने अपने चरित्रों को बिन्दुगो की सड़क पर लाकर खड़ा किया है। वे अपनी प्रवृत्तियों और परिस्थितियों के चक्करवार चरे में होकर रुकते हुए, बहते हुए, ठोकर खाते हुए धागे बड़ते गए हैं और मैं बराबर एक सच्चे विज्ञान की तरह उनके पीछे बड़ी सावधानी से चला हूँ।'<sup>२</sup>

ये चरित्र वर्गगत विधेयताओं से मुक्त होते हुए भी अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के कारण परिस्थिति के अनुसार विचार में परिवर्तन भी कर लेते हैं। इस प्रकार ये चरित्र विकसनीय (round) चरित्र कहें जायेंगे। ये चरित्र कई बार इतने बड़बुद होते हैं कि सर्वथा अस्वाभाविक से प्रतीत होने लगते हैं। यों से जब इन चरित्रों की अस्वाभाविकता के बारे में पूछा गया तो उसने शील-बैचिन्द्र्य का आश्रय लेते हुए कहा कि चरित्र की भावनाएँ किस परिस्थिति में पम्बित्त हुई हैं। इस सारी प्रक्रिया की स्वाभाविकता की न देखकर केवल सामाजिक शास्त्र के कोड के अनुसार फैसला देने वालों को मैं नाटककार कहूँ या यह निर्माण विन्यकार।<sup>३</sup>

चरित्रों की एक तीसरी विशेषता यह है कि वे प्रायः कमजोर होने की अपेक्षा विचारशील अधिक होते हैं। जीवन में यथिरोध उत्पन्न होने पर वे समस्या पर विचार ही अधिक करते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि मध्यम वर्ग के चरित्रों में इतिहास-प्रसिद्ध नामकों की तरह कमजोरता नहीं होती। वे प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने की अपेक्षा समस्या पर सोच-विचार ही अधिक करते हैं।

इस माध्यम में पात्रों का वर्गीकरण जल और घावरा पात्र की दृष्टि से नहीं किया जा सकता और न ही उन्हें दैव और दानव की बँधी-बँवाई शक्तियों में रखा जा सकता है। सभी पात्रों में दोनों प्रकार की विधेयताओं का सार्वजन्य होता है और नाटककार इनका चित्रण सहानुभूति से करता है। कथानक के

१. सहमीन लक्ष्मीनारायण मिश्र भूषण, पृ. ७

२. सहमीन लक्ष्मीनारायण मिश्र भूषण, पृ. ८

३. The Author's Apology from Mrs. Warren's Profession.

विशाल एवं चरित्र-चित्रण की इस विशेषता के कारण नाटक में नायक और प्रति-नायक की पृथक् विशेषताओं का आकलन नहीं हो सका। यों का तात्पर्य है कि इस नाटक में नायक और प्रतिनायक होता ही नहीं। 'क्युलिंसिस् बाफ इन्म-निरम' में व लिखते हैं, 'नाटक में दृष्ट्य शुद्ध बुराई समझा समझाई के मध्य नहीं होता। प्रतिनायक भी उसका ही सम्भा एव ईमानदार होता है जितना कि नायक। वस्तुतः यह प्रश्न ही नाटक को मनोरंजक बनाता है (यदि वह मनोरंजक हो) कि इसमें नायक कौन है और प्रतिनायक कौन। या हमारे पात्रों में इसमें कोई नायक नहीं और कोई प्रतिनायक नहीं।'<sup>१</sup>

चरित्र चित्रण में विशेषकर विकसनशील चरित्रों में स्वाभाविकता माने के लिए दान्टेईन्ड की प्रक्रिया बिलाना नितांत अनिवार्य है। नाटक में हमके लिए सरल और सुपथ मार्ग स्वगत भाषण का है। परन्तु समस्या-नाटक में जीवन की पर्याप्तता के आधार पर स्वगत भाषण का बहिष्कार किया जाता है। इसका स्थान पर नाटककार मूक अभिनय को प्रथम देता है। श्री मन्मीनाराम मिश्र अभिनय और स्वगत-भाषण की तुलना करते हुए लिखते हैं—“पात्रों की भीतरी भावनाओं और प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त करने में जितना सहायक मूक अभिनय होता है उतना स्वगत नहीं। मनुष्य के भीतरी भाव एकात्म में ही उसकी भाव मणी बेहरे की प्राकृति या कभी-कभी किसी तरह का क्रम कर देने में व्यक्त होते हैं बुझाए धूर्तों पर बैठकर चारपाई पर बैठकर या जमीन पर लड़ा होकर व्याख्यान देने में नहीं।”<sup>२</sup> मूक अभिनय के प्रतिरिक्त धर्मास्तियों धारि की दान्टेईन्ड को स्पष्ट करने में सहायक होती है।

भाषा-शैली

समस्या-नाटकों में परम्परागत कविबद्ध संसारों के विपक्ष प्रतिबिम्बा हुई। भाषा की कल्पना एवं भावना की कवियों से उठाकर स्वाभाविक एवं व्यावहारिक स्तर पर भाषा बसा। यों का हम धारे में कथन है कि 'यथार्थ जीवन में बोनी जाने वाली सरल और प्रकृत भाषा को मिलना परेखाहृत कठिन कार्य

१ 'The conflict is not between clear right and wrong the villain is as conscientious as the hero if not more so, in fact the question which makes the play interesting (when it is interesting) is which is the villain and which the hero or to put in another way there are no villains and no heroes.'

—Quintessence of Ibsenism Shaw Page 139



है परन्तु मेरी इच्छा मानव के चित्र को प्रकट करने की थी। अतः मैंने उन्हें देवताओं की भाषा बोलने की अनुमति नहीं दी।"<sup>१</sup>

इस प्रकार भाषा में प्राचीन कदियों का सर्वथा परिवर्तन कर दिया गया। संस्कृत नाट्यशास्त्र के नियतव्याख्य अथवा सर्वव्याख्य आदि संवाह अथवा विकृता के कारण हम नाटक में ग्रहणीय नहीं हुए। पीछे गद्य-गीत दार्शनिक शब्दावली भी बहिष्कृत कर दी गई। संवादों में तथा चरित्रों में किसी भी तत्त्व के प्रयोग के लिए निकट बताते हुए सौ नाटक की प्रविधि की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। नाटक व्योमायन का यह विश्वास करा देने की कला है कि यथार्थ वस्तुओं के साथ यथार्थ बनाना बटित हो रही है।"<sup>२</sup>

इस प्रकार प्राचीन कदियों के स्थान पर भाषा में व्यावहारिकता के अनु रूप कुछ नवीन पुर्णों की योजना की गई। भाषा के ऐसे स्वरूप को प्रत्यक्ष दिया गया है जिसमें ठर्क को बहल करने की सामर्थ्य हो। इस भाषा को प्रचलित या बहाल भाषा की उच्चारण की जा सकती है। भाषा में व्यंग्य अलंकार उपमा साधनिकता, दृष्टान्त आदि के सामाजिक प्रयोग द्वारा उसे जीवनगत संवेदना के प्रेषण के योग्य बनाया गया। इसमें नाटककार उन सब उपायों का प्रयोग करता है जोकि एक कुशल उपदेशक या वक्ता अपने श्रोतावर्ग के संवेदन-तत्त्व को अपने अधिकार में लाने के लिए किया करता है।

संवादों की शैली की दृष्टि से भी इस नाटक में परम्परागत नाटकों से भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता की ओर संकेत करते हुए सौ लिखते हैं—  
‘इस नाटक में नाटककार उन सब विधियों का बहिष्कार करता है जिनके द्वारा पूर्ववर्ती नाटककार असाधारण पात्रों की असाधारण परिस्थितियों में भी अपने व्योमायन का अनुरोध करता था। इनके स्थान पर वह असाधारण रूप की ठर्क-मजिद्वल और अनिवोग समाने वाली शैली में संवादों की सत्यता पर विचार करता है, और इसमें वह उन सब अलंकृत तथा वैयक्तिक वक्ताओं का योग प्राप्त करता है जिन्हें कुशल बनना उपदेशक बकील या महाकाव्यकार

१. the very much difficult art of writing the genuine, plain language spoken in real life. My desire was to depict human beings and therefore I would not make them speak the language of gods."

—Drama from Ibsen to Eliot. Williams

२. "(Drama) is the art of making the audience believe that real things are happening to real people."

—B. Shaw

(Encyclopedia Americana)

प्रयोग दिया करत हैं।<sup>१</sup> इन्हीं में हमके लिए एमी रॉनी का प्रयोग दिया है जिसके दर्शन लोगों को आर से प्रेरित होकर उनके प्रेरित विषय के अनुरूप भावों के लिए बाध्य हो जाते हैं। यह दृष्टिकोण की मानसिक दुबसगाओं का हो सकता है।

जीवन की अपारकता के अनुरूप होने के कारण मनुष्य दृष्टे-पृष्टे होत है मनुष्य को भी मनुष्यों में प्रभाव बना रहता है। उनमें धर्म का समावेश विषय बन सकता है। संसार प्रायः सब होत है और उनके विषय में विवेचना की समझ मिलती है।

### निरूपण

समस्या-भाटक की प्रविधि के विवरण के पदार्थ निम्न कर से कहा जा सकता है कि इस भाटक को प्राधान्यपूर्ण विषयों में मूल रूप में आर है या इसे इतर भावों में मिला करती है। प्रथम विवेचना है पदार्थवाद अर्थात् नास्तिकता रोमान्स प्रेरितकता आदि का बहिष्कार। इसी विवेचना का प्रभाव बचाने, पदार्थवाद भाषा अभिव्यक्ति मनी पर विवेचन कर से पड़ता है। दूसरी विषयता है बोद्धिकता जिसके अन्तर्गत विचार एवं तर्क विवेक आता है। इनके भाटककार की विवेकी बहुरी रंग होतो भाटक टटना ही म्यादी होगा। तीसरी विषयता है धर्मिक और समाजिक विवेक के अन्तर्गत आनेवाले विवेचन। यही भाटककार की बहुरी है जिसमें अनुरूप होकर यह भाटक-रचना में प्रवृत्त होता है। और सबसे अन्त में यह कि इन सब विवेचनों के होत हुए या यह भाटक है आर-विचार बोद्धी नहीं। उनमें भाटक के सर्वप्रमुख अनुचित रहत आर-विचार है ताकि भाटककार समाज को आर-प्रभाव करत हुए अपने विचारों का प्रभाव कर सके।

१ —the device of old stage tricks by which audiences had to be induced to take an interest in unreal people and improbable circumstances, and the substitution of a foreign technique of representation, definition and penetration through ideas to the truth, with a free use of all the rhetorical and physical arts of the orator the preacher the pleader and the rhetorician.

## मिश्रजी के नाटकों का वर्गीकरण

### वर्गीकरण का आधार

नाटकों का वर्गीकरण अनेक दृष्टियों से किया जा सकता है। परन्तु किसी नाटक की विविष्ट वर्ष में परिचित करने के लिए दो आधार प्रमुख हैं। प्रथम नाटक में विभिन्न बिम्ब का आधार और दूसरे सित्य-संयोजन का आधार।

नाटककार अपने उद्देश्य को विचार को व्यक्तित्व करने के लिए अनिवार्यतः समाज के किसी बिम्ब को माध्यम बनाता है। वह बिम्ब प्रतीत का हो अथवा वर्तमान का परिवार का हो अथवा समाज का मानसिक हो अथवा भौतिक स्पष्टित हो अथवा समष्टित्वत इसका होना अनिवार्य है। यह बिम्ब प्रेक्षक के मन पर एक संश्लिष्ट एवं स्थायी प्रभाव डालता है जिसके कारण नाटक का स्वरूप प्रेक्षक के हृदय में अक्षुण्ण रहता है। इस संश्लिष्ट प्रभाव के आधार पर ही वह दो नाटकों में भिन्नता करता है अतः नाटकों के वर्गीकरण में इसे आधार मानना समीचीन होगा।

प्रथम दृष्टिकोण प्राचीन है। नाटक वस्तुतः कथानक, विचार चरित्र आदि विभिन्न तत्वों की एक संश्लिष्ट इकाई है परन्तु इन तत्वों के संयोजन के अनुपात के आधार पर नाटक के कई वर्ग बनाए जा सकते हैं। किसी नाटक में कथानक पर अधिक बल दिया जाता है किसी में चरित्र पर किसी में समस्या पर और किसी में विचार को प्रेषित करने पर। इसमें विचारमयी तत्व यह है कि नाटक में एक तत्व पर बल देने पर दोष तत्व भी उसी के अनुसृत बदल जाते हैं जिससे सारे नाटक के सित्य-संयोजन में अन्तर आ जाता है। (नाटक के सैद्धांतिक विवेचन में इसका विचार विस्तार से किया गया है)। अतः नाटक के जिस तत्व के आधार पर अन्य तत्वों की संयोजित किया गया है वही सित्य संयोजन का आधार कहा जायगा। इसी आधार पर नाटक में भिन्नता भी कर ली जा सकती है। इस आधार पर नाटकों का वर्गीकरण इस प्रकार होगा—कथना-प्रधान नाटक चरित्र-प्रधान नाटक विचार-प्रधान नाटक सित्य-प्रधान नाटक आदि।

अतः स्पष्ट हुआ कि नाटकों के वर्गीकरण के लिए प्रमुख आधार दो हैं— एक बिम्ब का दूसरा रूप-विधान का। इनहीं दोनों के आधार पर मिश्रजी के

नाटकों का वर्गीकरण करना समीचीन होगा।

मिथली के नाटकों की कालक्रमानुसार सूची इस प्रकार है—

प्रकाशम-विधि जिसके कथनानुसार लेखन-विधि

१	भयोक	सन् १९१७	सन् १९२९
२	संन्यासी	सन् १९२६	सन् १९२८
३	राजस का मन्दिर	सन् १९३२	सन् १९३०
४	मुक्ति का रहस्य	सन् १९३५	सन् १९३०
५	राजयोग	सन् १९३४	सन् १९३२
६	सिन्धूर की होली	सन् १९३४	सन् १९३२
७	घापी रात	सन् १९३७	सन् १९३४
८	नारद की बीणा	सन् १९४९	
९	नरकध्वज	सन् १९४६	
१०	दशरथमेख	सन् १९४६	
११	बरताराज	सन् १९४०	
१२	बितस्ता की महूरें	सन् १९३२	
१३	चक्रमुह	सन् १९४९	
१४	कवि नारदगु	सन् १९४२	
१५	बैद्याली में बसन्त	सन् १९४४	
१६	जगद्वज्र	सन् १९३८	
१७	मृत्युञ्जय	सन् १९३८	
१८	बछी का हृदय	सन् १९९२	
१९	अपराधित	सन् १९९३	
२०	विजयूट		

विश्व के आधार पर इन नाटकों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) सामाजिक नाटक—इस वर्ग में छह नाटक आते हैं—संन्यासी राजस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य राजयोग सिन्धूर की होली और घापी रात।

(ख) ऐतिहासिक नाटक—इस वर्ग के अन्तर्गत मिथली का प्रथम नाटक 'भयोक' तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के छह नाटक—बरताराज दशरथमेख बितस्ता की महूरें, नरकध्वज, बैद्याली में बसन्त और बरती का हृदय आते हैं।

(ग) धौराधिक नाटक—इस वर्ग में 'चक्रमुह' 'अपराधित' 'विजयूट' की 'नारद की बीणा' को रखा जा सकता है। 'चक्रमुह' और 'अपराधित'

महामारुत है बिभूकृत का रामायण और 'मारुत की बीमा' का कास्मिक । परन्तु क्योंकि उसमें पौराणिक वातावरण को अनुमत्त रखा गया है और पाठक इससे पौराणिक बिम्ब ही ग्रहण करता है अतः इसे पौराणिक नाटकों के ही वर्ग में रखा गया है ।

(५) जीवन या चरितमूलक नाटक—इस वर्ग के अन्तर्गत कवि भारतेन्दु, जगद्गुरु और भूतभूज्य तीन नाटक आते हैं । जगद्गुरु में शंकराचार्य और भूतभूज्य में महात्मा गांधी के जीवन के प्रधान कर्मों को नाटक का रूप दिया गया है । यद्यपि ये नाटक ऐतिहासिक नाटकों के वर्ग में भी रखे जा सकते हैं परन्तु इन्हें पढ़ने के पश्चात् पाठक के हृदय में स्थायी बिम्ब इन चरित-नामकों के व्यक्तित्व का ही पड़ता है जिसके कारण इन्हें असल वर्ग में रखा गया है ।

प्रस्तुत प्रश्न का विषय केवल सामाजिक नाटकों का अध्ययन है अतः चित्त-संयमन की दृष्टि से केवल सामाजिक नाटकों का ही वर्गीकरण किया गया है ।

चित्त-संयमन की दृष्टि से नाटकों का वर्गीकरण और उनका नामांकन करने से पूर्व वर्गीकरण के विषय में कतिपय सीमाओं का विचार कर लेना आवश्यक है । सर्वप्रथम नाटक के चित्त के किसी वर्ग के लिए कोई सुनिश्चित चिन्ता नहीं बनाई जा सकती । प्रत्येक नाटककार उसमें अपने विषय एवं उद्देश्य के अनुस्यू बोझ-बहुल परिवर्तन कर लेता है । दूसरे प्रायः दो प्रकार के निकटवर्ती चित्तों में व्यावर्तन इतना सूक्ष्म होता है कि चित्त की सीमाओं में लोच के कारण नाटक को दोनों में से किसी एक वर्ग में सहज ही रखा जा सकता है जैसे घटना-प्रधान नाटक और चरित्र-प्रधान नाटक में । इसके अतिरिक्त कभी-कभी एक ही नाटक में कई वर्गों के चित्त की विशेषताओं का समायोग हो जाता है जैसे सिल्लूर की होमी में सम्पूर्ण कथा घटना को धातु करके चमकी है परन्तु कथाओं में समस्याओं का भी उत्कृष्ट विवेचन हो गया है । अन्य नाटकों में इस प्रकार का सामंजस्य इतना स्पष्ट नहीं होता अतः निकटवर्ती कई वर्गों के चित्त-उत्पत्तियों को एक ही नाटक में स्पष्ट किया जा सकता है ।

मिथजी के नाटकों का वर्गीकरण करते समय यह सभी समस्याएँ प्रमुख रूप से सामने आती हैं । मिथजी के पूर्व हिन्दी-नाटक में इसकी कोई सुनिश्चित परम्परा न थी । मिथजी इंग्लैंड और वाँ की टीसी से प्रभावित हुए परन्तु उद्योग की मिथता के कारण चित्त-संयमन में कई प्रकार के परिवर्तनों का आना स्वाभाविक ही था । अतः मिथजी के नाटकों में यथार्थवाद प्रतीकवाद विचारधारा दोनों समस्या विवेचन टीसी और म्यंज टीसी आदि विभिन्न धाराधाराओं का समायोग हुआ है । अतः वर्गीकरण में जिस वर्ग के लक्षणों को अधिक प्रस्तुत

मिथबी के नाटकों का वर्गीकरण

पाया गया है उसी वर्ग में नाटक को वर्गीकृत करना समीचीन समझ गया है।  
शिल्प-समूह की दृष्टि से सामाजिक नाटकों को निम्नलिखित वर्गों में रखा  
जा सकता है—

(क) समस्या-नाटक

१ संन्यासी

२ मापी रात

(ख) विचार प्रधान नाटक

१ राजस का मन्दिर (प्रतीक नाटक)

२ मुक्ति का रहस्य

३ राज्ययोग

(ग) समस्या एवं धर्मना-प्रधान नाटक

१ सिन्धूर की होली

प्रत्येक नाटक को विविष्ट वर्ग में वर्गीकृत करने के कारणों का विश्लेषण इस  
प्रकार किया जा सकता है—

संन्यासी

समस्या-नाटकों के शिल्प की चर्चा करते हुए हमने समस्या-नाटक की तीन  
विशेषताएँ निरूपित की थी। प्रथम उसमें किसी व्यक्तिगत सामयिक समस्या का  
विश्लेषण होना चाहिए दूसरे उसमें अतिरंजना भावुकता और रोमांस का बहि  
ष्कार कर मर्यादा की धारणा का प्राग्रह हो और तीसरे, उसमें समस्या का बौद्धिक  
तर्क-वितर्कपूर्ण विश्लेषण हो। इस निरूप के आधार पर 'संन्यासी' को समस्या  
नाटक की संज्ञा देना सर्वथा संगत है क्योंकि इसमें उपर्युक्त तीनों विशेषताएँ विद्य  
मान हैं। इसमें स्वच्छन्द प्रेम की समस्या का प्राबुलिक युग के संदर्भ में चित्रण  
किया गया है। समस्या का बौद्धिक तर्क वितर्कपूर्ण विश्लेषण है और मर्यादा दृष्टि  
से समस्या पर विचार करने का प्राग्रह है। अतः इसे सहज ही समस्या-नाटक की  
श्रेणी में रखा जा सकता है।

राजस का मन्दिर

इस नाटक में मिथबी ने अपने धर्मव्यंग्य को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त  
किया है। यद्यपि नाटक में मूर्त पक्ष की भी स्वतन्त्र महत्त्व प्राप्त है परन्तु प्रभा-  
वता प्रतीकार्थ से स्पष्ट होने वाले धर्मव्यंग्य पक्ष की ही है। अद्वैती की मारी का  
प्रतीक मानकर ही नाटक के उद्देश्य से प्रबलत हुआ जा सकता है। परन्तु फिर  
भी इसे प्रतीक नाटक की अपेक्षा विचार प्रधान नाटक की श्रेणी में रक्कना ही

अधिक समीचीन होना क्योंकि एक तो प्रतीक का प्रयोग स्वयं सबबों तक नहीं है दूसरे, प्रतीक की अपेक्षा विचार और प्रेषण का मात्र अधिक मुक्ति है। स्वच्छन्द प्रेम की समस्या के विवेचन के कारण इसमें कतिपय तत्त्व समस्या-नाटक के भी मिलते हैं। परन्तु उसके सांघीपाय तर्कपूर्ण विवेचन के अभाव में इसे समस्या नाटक नहीं कहा जा सकता। इसमें प्राधुनिक व्यक्तिवादी मानक के धिन्-निम्न स्वरूपों के यथार्थ चित्र दिखाने में ही नाटककार ने कृपलता दिखाई है और इस आधार पर इसे केवल यथार्थवादी नाटक कहना भी असंभव नहीं। परन्तु प्रमुखता विचार प्रेषण की होने के कारण इसे विचार-प्रधान नाटक की श्रेणी में ही प्रतिष्ठित करना समीचीन समझा गया है।

### मुक्ति का रहस्य

इस नाटक का विस्तृत-संगठन पूर्ववर्ती नाटकों से सर्वथा भिन्न है। इसमें मियजी का रहस्य किसी सामाजिक समस्या का विवेचन नहीं प्रत्युत जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण की व्यञ्जना है। कथानक पात्र आदि सभी तत्वों का विधान इसी दृष्टि से किया गया है कि विचार का अधिकाधिक प्रादुर्भाव हो सके। इस कारण कथानक और पात्रों आदि के स्वाभाविक विकास में भी विचलितता पा गई है। इस नाटक का आलावरण भी शैक्षिक नहीं और न ही तर्क-वितर्क की योजना है। अतः विचार प्रेषणीयता के दृष्टि से किए गए नाट्यविधान को विचार प्रधान नाटक की कोटि में रखना ही समीचीन होना।

### राजयोग

राजयोग में 'समस्या-नाटक' एवं 'विचार-प्रधान नाटक' दोनों की विशेषताओं का सुन्दर सामंजस्य हुआ है। 'समस्या-नाटक' की दृष्टि से इसमें शैक्षिकता है, तर्क वितर्कपूर्ण विवेचन है और जलन्त समस्या का विवेचन है। परन्तु समूचे नाटक की समग्र रूप से विवेचने से इसमें विचार-प्रधान नाटक की विशेषताएँ ही अधिक व्याप्त दृष्टिबोधर होती हैं। नाटक की समस्या-नाटक की योजना में न रखने का एक कारण यह भी है कि नाटक का कथानक आलावरण है और पात्र भी जन-जीवन के मानसिक उपचारों का सही प्रतिनिधित्व नहीं करते। नाटककार का उद्देश्य किसी समस्या का विवेचन करने की अपेक्षा समस्या के प्रति विचार करने के दृष्टिकोण को प्रेषित करना है जिसके लिए उसने एक सामाजिक कथानक की रूपरेखा कर ली है। अतः इसे भी 'विचार प्रधान नाटक' की श्रेणी में रखना ही समीचीन होना।

अन्तु नाटककार को भी 'राजयोग' और 'मुक्ति का रहस्य'—इन दो

नाटकों को समस्या-नाटक की विधा के अन्तर्गत रखना अपेक्षित नहीं था इसीलिए पहले इन दो नाटकों के नाम के सामे मुखपृष्ठ पर, दोष नाटकों की तरह 'समस्या-नाटक' नहीं लिखा।

### सिन्दूर की होसी

इस नाटक में 'समस्या-नाटक' की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। तीन अवलम्ब समस्याओं पर तर्कयुक्त बौद्धिक विश्लेषण है। परन्तु फिर भी यह केवल समस्या-नाटक नहीं क्योंकि नाटक का मूल कथानक मुख्यरीसास पर केन्द्रित है और उसी के जीवन की घटनाओं के आधार पर नाटककार ने कर्म प्रतिक्रम सिद्धान्त की बड़ी मुन्धर व्यवस्था की है। वास्तव में नाटक में 'समस्या-नाटक' और 'घटना-अवधान नाटक' दोनों का मुन्धर सामंजस्य है और नाटककार के उद्देश्य एवं चिन्तन-संघटन की दृष्टि से कोई भी एक दुर्बल समझकर विस्मृत नहीं किया जा सकता। दोनों कर्षों के समन्वय में भी नाटककार ने अव्युक्त सत्यता प्राप्त की है। यद्यपि इस नाटक की विधा के लिए एक निम्न वर्ग की कल्पना करनी पड़ी है—समस्या एवं घटना-अवधान नाटक।

### आधी रात

इस नाटक में समस्या-नाटक की सभी विशेषताएँ—बौद्धिकता तक-वितर्क-पूर्ण विश्लेषण और अवलम्ब समस्या का विचित्र विद्यमान होने के कारण इसे 'समस्या-नाटक' की विधा के अन्तर्गत रखना ही समीचीन होगा।





चतुर्थ अध्याय  
सामाजिक नाटकों की समीक्षा

- १ समस्या-नाटक
  - (क) सन्ध्यामी
  - (ख) धामी राव
- २ विचार प्रधान नाटक
  - (क) राजस का मन्दिर
  - (ख) मुक्ति का रहस्य
  - (ग) राजयोग
- ३ समस्या एवं घटना-प्रधान नाटक
  - (क) मिन्दूर की हौली



## (क) समस्या नाटक (१) सन्यासी

वस्तुपक्ष

मिथजी ने इस नाटक में प्रमुख रूप से चिरन्तन नारीत्व की समस्या का विवेचन किया है। इस मूल समस्या से उद्भासक कारणों का विवेचन करते हुए अनन्त विवाह एवं सहविद्या की समस्या का भी प्राथमिक रूप से विवेचन हुआ है। इसके प्रतिरिक्त नाटककार ने देश-स्वातन्त्र्य की समस्या के कठिण पहलुओं का भी कथानक के माध्यम से विचार किया है।

मूल समस्या—नाटक की मूल समस्या चिरन्तन नारीत्व (यह नाम नाटककार का ही दिया हुआ है) के अन्तर्गत नारी-जीवन के दो पहलुओं—प्रेम-स्वातन्त्र्य और मर्यादित विवाह का विस्तृत तुलनात्मक विवेचन हुआ है। यह समस्या मानव की एक साक्षर समस्या है परन्तु मिथजी ने इस समस्या का सामान्य भारतीय एवं पाश्चात्य जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण से देखते हुए इसकी सामाजिक महत्ता को ध्यान रखा है। पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से नवसिद्ध युवक-समाज स्वच्छन्द प्रेम के नवीन विचारों से साहस्य हुआ क्योंकि एक तो कठिनों की जटिलता की अपेक्षा स्वच्छन्दता की ओर मन का फिसलना स्वाभाविक ही था दूसरे, स्वच्छन्द प्रेम के प्रसङ्ग हमारे घासक से जो भौतिक दृष्टि से भी हमसे अधिक सम्पन्न एवं मजबूत थे। अतः जितना समाज के सम्मुख एक समस्या उत्पन्न हुई। नौन-सा पक्ष ग्रहण किया जाय—स्वच्छन्द प्रेम का प्रसङ्ग मर्यादित विवाह का। ऐसी दृष्टिकोण स्थिति में पाश्चात्य अनुकरण से प्रभावित सामाजिक विधान का गहन विमर्श एवं वैज्ञानिक विवेचन कर समाज के लिए उपयोगी एवं हितकारी जीवन-दर्शन का उद्घाटन करना सामाजिक महत्त्व की ही वस्तु कही जायगी।

विवेचन—इस समस्या का विवेचन के लिए नाटककार ने एक प्रेमी-युवक के जीवन का कार्यात्मक चित्र उपस्थित किया है। विपरीत और मानवी धर्म के बीच जीवन में ही स्वच्छन्द प्रेम को घोर धमसर हाते हैं। समाज की ओर से एवं नियमों एवं कल्पना-जगत् में विवरण करते समय हैं। समाज की ओर से एवं

अन्यथा विवाह में भी प्रति-पत्नी के सम्बन्ध इतने विषम होते हैं कि पत्नी कहती है कि तुम्हें देखकर मुझे अपने पिता की याद आती है और इस प्रकार परिस्थिति बिगड़ते हुए वहाँ तक पहुँच जाती है कि बीनागाय की कहना पड़ता है 'अन्यथा किसी बटिन कम में या होटल में दो घाबरी ठहरे हैं कभी-कभी मन बहसाने के लिए यों ही बातें कर लिया करते हैं तुम भी स्वतन्त्र घोर में भी। हम दोनों एक-दूसरे की बेड़ी काट दें।'''

अर्थात् नाटक में समस्या के कारणों परिवर्तित तथा स्वस्थ का विश्लेषण किया गया है और उससे लिए पुष्ट तर्कों का भी आशय दिया गया है तथापि नाटककार को समस्या के विश्लेषण में संशय ही संशय कहा जा सकता है। इसमें एक बड़ा दोष यह था गया है कि रोमांटिक प्रेम और आदर्श प्रेम दोनों एक ही दिखाई पड़ते हैं। दोनों ही विधों में प्रेम में इतनी अधिक आसक्ति दिखाई गई है कि नाटक के मन में यह कल्पना ही नहीं आती कि इतनी आसक्ति को जीतकर बढ़ने वाले प्रेमी केवल वास्तव में प्रसिद्ध होकर प्रेम कर रहे हैं। किरणमयी और मुरलीधर का प्रेम तो स्पष्टतः अध्यात्म प्रेम का रूप धारण कर लेता है। वह मुरलीधर के वैदिक के पश्चात् भी उसे अपने हृदय में बैठा हुआ स्वीकार करती हुई कहती है— 'वह मेरे भीतर है अन्तर में' इस विश्वास में दूसरी दिशा में, जब कभी अन्य लुप्त तब मिलेगा।'' प्रेम का आदर्श स्वयं तन्मात्र द्वारा अनुभूति न होने पर भी समाज को अनुभूति का पात्र होता है। इसीलिए नाटक इस प्रेम को नाटक के आदर्श से भ्रष्ट तक सहा अनुभूतिपुत्र ही देखता है और अन्त में नाटक के तत्कालीन विश्लेषण उसे अस्वाभाविक से कहते हैं। रोमांटिक प्रेम जिसका विरोध बर्तन में आदि ने किया है, उसकी व्याख्या तो बीनागाय और किरणमयी के प्रेम में मिलती है। इस प्रेम की तुलना डॉ. के 'धार्मिक एण्ड ही वी' के सराविश और कैबरीन के प्रेम से की जा सकती है। परन्तु नाटककार को तो इस प्रेम के माध्यम से रोमांटिक प्रेम के कारणों का विश्लेषण करते हुए अनन्य विवाह का ही विश्लेषण प्रयत्न है। रोमांटिक प्रेम की आदर्शपरम व्याख्या के दोष के कारण यह कहना ही अधिक समीचीन है कि समस्या के विश्लेषण में नाटककार भ्रष्ट हो चला है।

अन्य समस्याएँ—इस पुस्तक समस्या के अतिरिक्त अतिथि अन्य समस्याएँ भी प्रासंगिक रूप से व्यञ्जित हो गई हैं। उनमें प्रमुख है वैयक्तिकता का समस्या। एडिमाई संघ की स्थापना प्रकाशिता के माध्यम से वैयक्तिकता का

## (क) समस्या नाटक

### (१) सन्यासी

#### वस्तुपत्र

मिथवी ने इस नाटक में प्रमुख रूप में चिरन्तन नारीत्व की समस्या का विवेचन किया है। इस युग समस्या से उद्भावक कारणा का विवेचन करते हुए धर्ममेल विवाह एवं महतिष्ठा की समस्या का भी प्रासंगिक रूप से विवेचन हुआ है। इसके प्रतिरिक्त नाटककार ने दण्ड-स्वातन्त्र्य की समस्या के प्रतिपक्ष पहुँचों का भी कथानक के माध्यम से विचार किया है।

युग समस्या—नाटक की युग समस्या चिरन्तन नारीत्व (यह नाम नाटककार का ही दिया हुआ है) के अन्तर्गत नारी-जीवन के दो पहलुओं—प्रेम-स्वात्म्य और मर्यादित विवाह का विस्तृत तुलनात्मक विवेचन हुआ है। यह समस्या मानव की एक छावनी समस्या है परन्तु मिथवी ने इस समस्या का आक्षान्त भारतीय एवं पारिवार्य जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण से करते हुए इसकी सामाजिक महत्ता को व्यक्त किया है। पारिवार्य संस्था के सम्पर्क से नवोपनिषित युवक-समाज स्वच्छन्द प्रेम के अन्तर्गत विचारों से बाधित हुआ क्योंकि एक तो कठिनों की अटलता की अपेक्षा स्वच्छन्दता की ओर मन का पितलना स्वाभाविक ही या दूसरे, स्वच्छन्द प्रेम के प्रत्यक्ष हमारे आसक्त से जो भौतिक दृष्टि से भी हमसे अधिक सम्पन्न एवं सुखी थे। अतः विभिन्न समाज के सम्मुख एक समस्या उत्पन्न हुई। कौन-सा पक्ष प्रवृत्त किया जाय—स्वच्छन्द प्रेम का अथवा मर्यादित विवाह का। ऐसी दृष्टिकोण स्थिति में पारिवार्य अनुकरण से प्रभावित सामाजिक विधान का मूल विमर्श एवं नैतिक विवेचन कर समाज के लिए उपयोगी एवं हितकारी जीवन-दर्शन का उद्घाटन करना सामाजिक महत्त्व की ही वस्तु नहीं जाननी।

विवेचन—इस समस्या के विवेचन के लिए नाटककार ने एक प्रती-मुपलब्ध के जीवन का कारणात्मक विश्लेषण उपस्थित किया है। विरहकाल और मातृगी अपने रोजीक जीवन के ही स्वच्छन्द प्रेम की ओर धावकर होते हैं और प्रेम की रंगी मिठी एक कल्पना-जगत् में विहरण करने लगते हैं। समाज की ओर से एक

बिरबकान्त के प्रतिद्वन्द्वी की ओर से कई बाधाएँ आती हैं परन्तु वे उन्हें प्रसन्नता से सह सते हैं । परन्तु वे बिबाह के बन्धन को भी स्वीकार नहीं करना चाहते । बिरबकान्त पर मामती के पिता की ओर से एवं उसके अपने कुछ-कुछ खडेम मुरलीधर की ओर से भी खराब बाला जाता है परन्तु वह देश-सेवा की इच्छा को सम्मुख रखकर बिबाह से इनकार कर देता है । देश-सेवा के लिए वह विदेश जाता है । परन्तु जब वह अपनी प्रेमिका मामती का बिबाह दूसरे के साम निनिश्चित हुआ सुनता है तो उद्विग्न हो जाता है । उसके प्रेम की आदर्श भावना उस ठोकर मारती है और वह एक निमग्न उत्तर लिख भेजता है जिससे मामती के माते और निरपराध मन का ठस पहुँचता है और वह बिरबकान्त से बबला लेने के लिए उसके प्रतिद्वन्द्वी रमाधर से बिबाह कर लेती है । इस समाचार को पाकर बिरबकान्त असन्तुष्ट हो जाता है और देश हित के लिए किए गए सफल संबन्धन पर भी लात मारने का निश्चय कर लेता है । इस प्रकार रोमांटिक प्रेम के कारण दोनों का जीवन कितना कार्बिक बन गया यही बिरबकान्त नाटककार को प्रतीट है ।

मामती इस सारे प्रेम-व्यापार का घण्ट में बौद्धिक बिबलेपन करती है जो सारी समस्या का तर्कमय निब बन जाता है । समस्या-नाटक की सफलता बास्तव में इस गहरे बिचारपूव एवं मुक्तियुक्त तर्कों में ही है ।

मामती प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करती हुई कहती है, "मैं रोमांटिक प्रेम नहीं चाहती बिरबकान्त के साथ मेरा यहा बा । मैं वह प्रेम चाहती हूँ जो आज कल की दुनिया में समझदारी के साथ बिबाया जा सक ।" रोमांटिक प्रेम की परिभाषा करती हुई वह कहती है जिसे प्रेम करे उसके खाने मुक जाना—बिस्तुन मर जाना—उसकी एक-एक बात पर धपने को स्वीकार कर बना रोमांटिक प्रेम होता है । "तुमने मुझे प्रेम किया था और मैंने भी तुम्हें प्रेम किया था । तुम्हारा वह कीमल धरीर नसीभी था कि तुम्हारे हृदय की बिजली तुम्हारा वह सब जो मुझे पाबल बना देता था । मुझे रात भर नींद नहीं आती थी मैं सोचा करती थी मैं मरने लगती थीर तुम धनत समय धाकर मुझे अपनी बीब में उठा लेत वह मरना कितना सुखमम जाता ।" परन्तु इस प्रेम का भाषार बिठना बर्जिक होता है इसकी बर्का करती हुई वह बताती है कि हृय लोगों के

प्रेम का आधार वासना एवं लज्जा की उपभोग की इच्छा मात्र थी। इस प्रेम को बहु पाप बताती है। "जिम तरह माइन या पानी बिना काम नहीं बस सकता यह प्रकृति की बात है। इस इमी रूप में छोड़ देना चाहिए जब उत्तरत पड़े तब पर रक्त-दिम उसी की चिन्ता में पड़े रहना। और इसे प्रेम का नाम देना यही पाप है।"<sup>१</sup>

मिथली ने समस्या के अन्य पहलुओं को स्पष्ट करने के लिए एक अन्य प्रसी सुपन का चित्र भी उपस्थित किया है। किरणमयी और मुरलीधर भी युवावस्था में परस्पर प्रेम करने लगे थे परन्तु सामाजिक परिस्थितियों के कारण किरणमयी का विवाह अन्यत्र हो गया जिससे विवाह के पश्चात् किरणमयी अपने वैवाहिक जीवन में सफल न हो सकी (यद्यपि इसके अन्य कारण भी हैं) और मुरलीधर के सम्बन्धित न बनी हो जान पर और जब में उसकी मृत्यु हो जान पर बड़ी बेहोश हो जाती है। वह समाज की मर्यादों को छोड़कर भी अपने प्रेम को अनुसर रही। इन प्रकार उसके अननुष्ठित जीवन का कार्मिक चित्र दिखाकर नाटककार ने रोमांटिक प्रेम की बीनरसता का चित्र उपस्थित किया है।

इसक अतिरिक्त मोती के जीवन की छवि का चित्रण कर यह भी स्पष्टित किया गया है कि समाज द्वारा अननुष्ठित रोमांटिक प्रेम में यदि यौन सम्बन्ध स्थापित हो पाय तो उसके फल—अबल सन्तान को—कितना नारकीय एवं घोरमृत्पिण जीवनसापण करना पड़ता है।

स्वच्छन्द प्रेम की उपमावना के लिए उत्तरदायी बातावरण के चित्रण में नाटककार ने दो अन्य समस्याओं का ही चित्रण किया है। ये समस्याएँ हैं—सहमिया तथा अनमेन विवाह। इन दोनों समस्याओं को स्वतन्त्र रूप से नहीं उठाया गया। इनके पञ्च-विषय में बौद्धिक विरलेपण भी नहीं किया गया है। इनका महत्त्व तो स्वच्छन्द प्रेम के आविर्भाव के कारण स्पष्ट करने में है। यातनी और विरज-कान्त का प्रेम सहमिया के कुञ्चिपूर्ण बातावरण में हुआ और किरणमयी तथा मुरलीधर का प्रेम किरणमयी और बीनामाय के अनमेन विवाह के कारण पल्लवित हुआ। सहमिया के बातावरण का सर्वपूर्ण विश्लेषण छात्रों के चार्चामय में कराया गया। एक छात्र मोमोसा करता हुआ कहता है, "दर्ज में जिम और परियाँ बँटनी मड़के बैगेन ही" "मुनो दुबरी की ओर जब मुक्क देखता है" वहाँ काई टिनामुसी नहीं होतो" "बस यही मयमान पचकाय।" इन्हीं प्रकार



समयमें विवाह में भी पति-पत्नी के सम्बन्ध इतने बिगड़ जाते हैं कि पत्नी कहती है कि तुम्हें देखकर मुझे अपने पिता की याद आती है और इस प्रकार परिस्थिति बिगड़ते हुए यहाँ तक पहुँच जाती है कि शीशानाथ को कहना पड़ता है 'समझना किसी बेटे के रूप में या होटल में दो आदमी ठहरे हैं। कमी-कमी मत बहाने के लिए यों ही बातें कर लिया करते हैं। तुम भी स्वतन्त्र और मैं भी। हम दोनों एक-दूसरे की बेड़ी काट दें।'"

अतएव नाटक में समस्या के कारणों परिणामों तथा स्वयं का विश्लेषण किया गया है और उसके लिए पुष्ट तर्कों का भी आश्रय लिया गया है। तथापि नाटककार को समस्या के विश्लेषण में असंतुष्ट ही रहना कहा जा सकता है। इसमें एक बड़ा दोष यह था गया है कि रोमांटिक प्रेम और आदर्श प्रेम दोनों एक ही बिछाई पड़ते हैं। दोनों ही बिच्चों में प्रेम में इतनी शक्ति बाबाएँ दिखाई पड़ती हैं कि पाठक के मन में यह कल्पना ही नहीं आती कि इसकी बाबाओं को पीछे कर बढ़ने वाले प्रेमी केवल बाह्यता से प्रेरित होकर प्रेम कर रहे हैं। किरणमयी और मुरलीधर का प्रेम तो स्पष्टतः आध्यात्मिक प्रेम का रूप धारण कर लेता है। वह मुरलीधर के वैद्वान्त के पश्चात् भी उसे अपने हृदय में बैठा हुआ स्वीकार करती हुई कहती है—“वह मेरे भीतर है अदृश्य रहेगा इस विश्व में दूसरी विश्व में वह कभी क्षण भूषी तक मिलेगा। प्रेम का आदर्श स्वयं समाज द्वारा अनुमोदित न होने पर भी समाज की सहानुभूति का पात्र होता है। इसीलिए पाठक इस प्रेम को नाटक के आरम्भ से अन्त तक सदा मुमुक्षुपूर्वक ही देखता है और अन्त में लेखक के तर्कपूर्ण विश्लेषण उसे अस्वाभाविक से समझता है। रोमांटिक प्रेम जिसका विरोध बर्नाई याँ आदि ने किया है उसकी व्यक्तता तो शीशानाथ और किरणमयी के प्रेम में मिलती है। इस प्रेम की तुलना याँ के 'आर्म्स एण्ड दी रीन' के सरजिबस और कैथरिन् के प्रेम से की जा सकती है। परन्तु नाटककार की तो इस प्रेम के माध्यम से रोमांटिक प्रेम के कारणों का विश्लेषण करते हुए समयमें विवाह का ही विषय प्रविष्ट है। रोमांटिक प्रेम की आदर्शपरायण धारणा के दोष के कारण यह कहना ही अधिक समीचीन है कि समस्या के विश्लेषण में नाटककार असंतुष्ट ही रहता है।

अन्य समस्याएँ—इस युग समस्या के अतिरिक्त अतिथि अन्य समस्याएँ भी प्राथमिक रूप से ध्येयित हो गई हैं। उनमें प्रमुख हैं वैय-स्वात्मिकता की समस्या। एशियाई संघ की स्थापना पत्रकारिता के माध्यम से देखभाल का

बिचार और डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट द्वारा जैंगलों के आश्रय के विरोध में त्यागपत्र देने का सकल धार्मिक प्रसंगों के माध्यम से नाटक में स्वयं-हित का बिचार दिया गया है। परन्तु इस समस्या का सांगोपांग तर्कपूर्ण विवेचन न होना के कारण इसे धार्मिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

### कथानक एवं पात्र

नाटककार ने अपने कथानक का विषय एक ऐसे सीमित बग को बनाया है जो पारिवारिक संस्कृति के वातावरण से इतना धार्मिक प्रभावित है कि भारतीय संस्कृति के परम्परागत साधारण संस्कार भी उनमें नहीं हैं। अपनी समस्याओं को स्वयं एवं उपबोधितावाद की दृष्टि से सोचते हुए कहीं भी उनके मन में भारतीय परम्परागत दृष्टिकोण को नकरा नहीं होता। जनजीवन की परम्पराओं को पुनरुत्पादित करने से निर्वासित कर देने वाला वर्ग जनजीवन से दूर ही कहा जायगा। पात्रों में विश्वकान्त और मुरलीधर देव-स्वातन्त्र्य की प्रेरणा से परिचित हैं परन्तु जैसा कि विवेचन किया जा चुका है वे नाटक में कथन प्रसंग मात्र हैं और इससे मूल समस्या पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। विश्वकान्त देव-सेवा के उच्च धार्मिक को लेकर भी दुर्बल मन का है।

वस्तुतः प्रश्न जैसी सूक्ष्म एवं मानसिक समस्या के दार्शनिक पक्ष के बोद्धिक विवेचन के लिए यह उपयुक्त ही था कि नाटककार सम्पूर्ण एवं गतिमान बग के कथानक को आधार बनाए, परन्तु उनमें प्रति साधुनिकता का समावेश हो जाना के कारण समस्याएँ जन-जीवन से दूर हो गई हैं।

### निष्कर्ष

विचार—जैसा कि वस्तुतः में विवेचन किया जा चुका है नाटक का उद्देश्य एक सामाजिक समस्या का बोद्धिक तर्क-वितर्क द्वारा उद्घाटन ही है परन्तु इस समस्या-नाटकों की श्रेणी में ही रहना समीचीन है। और निष्कर्ष-दृष्टि से बिचार करते हुए समस्या-नाटक के गिरा को ही निरूप माँगा चाहिए।

### कथानक-विवरण

समस्या-नाटक में कथानक का महत्त्व समस्या के प्रस्तुत करने एवं उसके तर्क-वितर्कपूर्ण विवेचन के लिए धार्मिक से धार्मिक व्यवहार प्रदान करने में है। इस दृष्टि से कथानक का निषेधन सफल है। नाटककार ने समस्या के कारणों एवं परिणामों को दिखाने हुए घटना में सार कथानक की बोद्धिक सीमाएँ भी मासपी हाथ करवा दी हैं। यहाँ धर्म में समस्या के सांकेतिक के कारणों का बिना हाथ हो जाता है। मुरलीधर और किरणमयी तथा मासपी और विश्व-

कान्त के प्रेम के स्वप्न में बाधाएँ हैं और उनका निराकरण है। दूसरे अंक में उनका प्रेम उसम्भता है, बिबाह या प्रेम यह स्थिति स्पष्ट होती है। तीसरे अंक में प्रेम को हृदय में सँजोष बिबलकान्त देश-सेवा करते हुए प्रेमिका के बिबाह से उद्विग्न होकर उसे विमम पत्र लिखता है और अन्तिम अंक में मासती का चरित्र परिवर्तन होता है और वह सारी समस्या का बिबलेपण बौद्धिक तर्क-बिगल द्वारा करती है। इस प्रकार कथानक का बिग्यास समस्या-नाटक के धनुष्य बान का प्रयत्न किया गया है।

वरन्तु इस बिग्यास के बावजूब कथानक को कथारमक दृष्टि से सफल नहीं कहा जा सकता। इसके कठिनप बोध बिचारनीय हैं।

सबसे प्रथम साधारण नाटक में एक प्रमुख कार्य की तरह समस्या-नाटक में प्रमुख रूप से एक समस्या होनी चाहिये। जिससे उसके बिबेचन में सुबयता एवं सरसता हो और प्रभाव में भी अन्विष्टि का निर्बाह किया जा सके। सत्याप्री नाटक में सहस्रिदा एवं प्रममेस बिबाह की समस्याओं का अन्तर्गत मूल समस्या के अन्तर्गत कर ली लें तो भी दैन-स्वातन्त्र्य की समस्या को जोड़ना तो किसी भी दृष्टि में तर्क-समत नहीं कहा जा सकता। मृदम बाधनिक समस्याओं के साथ इस स्वुभ नीतिक समस्या का मेल किसी तरह भी बँटाया नहीं जा सकता। समस्याओं के इस अन्विष्टि संघन को जग्य करके डा० नरेण्ड लिखत है 'जीवन की सुबम समस्याओं के साथ यह समस्याएँ बड़े अन्तर्गत ढंग से जुड़ी हुई हैं। देशम के जाने में यह मोटे-मोटे पाहुर के बागे गूँथकर प्रभाव-देशम में व्यापात उत्पन्न करते हैं और नाटक की मृनिटी अष्ट हो जाती है। समस्याओं के बगल का यह संपन्न मिथजी के नाटकों की सबसे बड़ी भुटि है।'

नाटक में मूल समस्या के अन्तर्गत बिबे जाने वाले कथानक में कहीं-कहीं उसके अंगों को अधिक बिस्तार मिल गया है जिससे नाटक का ध्यान मूल समस्या पर केन्द्रित न रह कर गीन समस्याओं पर बला जाता है। जैसे सहस्रिदा तथा प्रममेस बिबाह मूल समस्या के कारण बाध हैं परन्तु इसके बिस्तृत बिबेचन को देखकर पाठक मूल समस्या की अपेक्षा इन्हीं से अधिक अविभूत हो जाता है। ये समस्याएँ इस प्रकार सहायक होने की अपेक्षा मूल समस्या के बिबे अन्विष्ट मृनि बन्ने देने में बाधक होती हैं।

कथानक का पूरा भाग जिसका प्रयोजन दोनों प्रथमी-मुम्मी का कारनिक बिब दिखाना बाध है बाधनिकता से अधिक लम्बा हो गया है जिसके प्रमुख

रूप से तीन कारण हैं—

(क) प्रासंगिक एवं योग्य सामग्रियों की अधिक विस्तार देना ।

(ख) यथार्थ के मोह के कारण भी कथानक विस्तृत हुआ है नाटककार ने प्रत्येक घटना के कारणों को देकर इसे स्वाभाविक बनात-बनाते कई घसों को अनावश्यक विस्तार दे दिया है । एक उदाहरण लीजिए । नाटककार को किरम मयी और मुरसीयर के कारण बिच को पूछता देने के लिए मुरसीयर की मृत्यु दिखाानी आवश्यक थी । अतः मृत्यु के प्रसंग की स्वाभाविकता को बनाए रखने के लिए सरकार की संभावनायी दिखाई गई और फिर डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को मंत्र पर लाकर सरकार के विरुद्ध त्यागपत्र की दिलावाया गया । इस प्रकार इतने लम्बे प्रसंग से जिस प्रासंगिक एवं बिजोही चरित्र की सृष्टि हुई है वह स्वाभाविकता दिवाने के लिए कितना ही युक्तियुक्त क्यों न हो मूल कथानक के प्रभाव के लिए सर्वथा असंगत है । इसका अधिक विस्तृत बिचन उपन्यासकार के लिए तो सम्भव है नाटककार के लिए नहीं । इस प्रकार कथानक को जहाँ-तहाँ एक बिधा में लीज देने के कई उदाहरण मिलते हैं ।

(ग) तीसरा कारण है चरित्र की स्वाभाविकता का निर्बाह । इसका कारण भी कथानक अधिक लम्बा हो गया है । चरित्रों की स्वाभाविकता के निर्बाह के लिए ऐसी घटनाओं की योजना की गई है जो मूल नाटक से कोई बिरोध सम्भव नहीं रहती । अस्तु प्रत्येक घटना में यह गुण होता है कि वह चरित्र को नी बिचित्र करती है और कथानक को भी गति देती है, परन्तु इसमें चरित्रगत बिरोधपूर्ण बताने के लिए घटनाओं की जो योजना की गई है उसका कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं । जैसे दीनानाथ-जैसे गौण पात्र के चरित्र को स्पष्ट करने के लिए बीरीपत के साथ उसका सामासंगिक बिषयों पर बार्तालाप करवाना । ये सब घटनाएँ कथानक के पवित्र संवदन की परिचायक हैं ।

नाटक में दृश्य एवं सूच्य के बिभाजन की योजना भी इस नाटक में ठीक नहीं हुई । लगभग सभी घटनाओं को दृश्य रूप में दिखाया गया है बिचसे सारे कथा नक में एक तीव्रता या मर्द है । एक के पश्चात् दूसरी घटना इत पति घ घटती चली जा रही है बिचके कारण बिषय के अनुकूल गम्भीरता नहीं या पाती । मानती के पिता और बिद्वकान्त के पिता के अल जाने के पश्चात् भासती और बिस्वनाथ पर इसकी अया प्रतिबिम्बा हुई उनकी भावनाएँ किस दिशा की ओर उन्मुख हुई इस सारे का बिचार न कर नाटककार इन दोनों को ही बन्दी से घसन कर देता है । इसी तरह अन्य दृश्य भी छोटे एवं अधूण हैं ।

इन दोषों के होते हुए भी बिषयी की नैसर्गिक प्रतिमा का आभास कथानक

में कई स्थानों पर होता है। उनमें सुन्दर नाटकीय स्थितियों के नियोजन की अपूर्व शक्ति है। यद्यपि प्रारम्भिक रचना होने के कारण उसका सुन्दर निर्वाह नहीं हो पाया। मातली को विरवकान्त की चारपाई पर छिपाकर दोनों के पितामों को दोनों के विवाह की बातचीत के लिए वही ने भाना नाटकीय दृष्टि से एक सुन्दर स्थिति कही जा सकती है। इसी प्रकार विरवकान्त के प्रथम-पत्नी को रमाकान्त के पास पहुँचाना मुरलीधर की टोपी छिपवाकर विरवकान्त के हाथ में दे देना आदि।

### चरित्र-चित्रण

नाटककार ने इस नाटक में विभिन्न बोलियों के चरित्रों की सृष्टि की है कुछ चरित्र आदर्श हैं जैसे मुरलीधर किरनमयी आदि। कुछ चरित्र हीन-भूति के हैं जैसे रमाकान्त बीमानाच आदि। विरवकान्त का चरित्र बोहरा चरित्र है एक ओर उसके पास कोमलतम हृदय है दूसरी ओर कठोरतम संकल्प। वह बड़ संकल्प करता है तो बड़े-बड़े कष्टों को सह्य स्वीकार कर लेता है और दूसरी ओर जब उसके हृदय पर ठेस पहुँचती है तो वह किसी प्रकार के उत्तरदायित्व को समझने में प्रसमर्थ हो जाता है।

नाटककार ने सभी चरित्रों को मानवीय संवेदनाओं से युक्त दिखाया है जिससे कि चरित्र केवल कल्पना की वस्तु न बन जाएँ। मुरलीधर ने दण्डप्रिय के प्रावर्त में जीवन की बाड़ी मया की है। परन्तु अन्तर्द्वन्द्व के द्वारा उसकी स्थिति मानव भूमि पर ही बिछाई गई है।

केवल मातली के चरित्र को छोड़कर दोष सभी चरित्र स्थिर हैं। मातली के विचारों में परिवर्तन आता है। परन्तु जब जब बिरोधी उपकरण उसके जीवन की राह रोक कर खड़े हो जाते हैं। वह अपने प्रेमी की निष्कूरता एवं उस को सहन नहीं कर सकती और समर्पण तथा त्याग की वह भूति भैरवी बन जाती है। इन परिवर्तन में समग्र रूप से सत्य ही आस्थायाधिकता बिछाई दे। परन्तु मातली के चरित्र की दृष्टि ने यह सर्वथा सामाजिक है। जाति करना उसके लिए अनिवार्य सा हो जाता है।

नाटककार ने हीन-भूति के पात्रों का भी चित्रण सहायभूतिपूर्वक किया है। बीमानाच और रमाकान्त हीन-भूति के पात्र हैं जो विनियत हो गए भी संस्कार हीन हैं। परन्तु समस्या-नाटककार मानता है कि कोई भी पात्र अनिश्चित रूप से प्रच्छन्न या बुरा नहीं सामाजिक संस्कार ही उसकी भसाई या बुराई के लिए उत्तरदायी हैं। इसीलिए वह प्रत्येक पात्र की स्थिति को सहायभूतिपूर्वक प्रदर्शित करता है। बीमानाच की सोचनीय परिस्थिति एवं उसकी विनयता का चित्रण

नाटककार ने सुन्दर ढंग से किया है। वह पत्नी को अपने अधिकार से बाह्य रखते हुए भी समाज-निम्नांक भय से कुछ नहीं कर सकता।

चरित्र-चित्रण में धर्मद्वन्द्व को प्रकट करने के लिए नाटककार ने स्वयं के स्वाम पर भूक अभिनय का आश्रय लिया है। उगने मन की गतिविधियों उगनों एवं भावों को स्पष्ट करने के लिए पात्रों के मन्त्रों की अपेक्षा उनकी निम्नांकों का अधिक चित्रण किया है। जैसे (क) मासती का विद्वत्काम के विष से अपना गूँह डक लेना। (ख) रमाकाम का विद्वत्काम और मासती को दूर तक देखते रहना, (ग) मुक्तजी और मासती का परस्पर मीन संभाषण आदि। ये क्रियाएँ रमण पर अभिनीत होने पर तो प्रेक्षक को धन्युक्ति प्रदान कर सकती हैं किन्तु नाट्यकर्म में इन भावों को पूर्णतः गहन नहीं किया जा सकता।

धर्मद्वन्द्व को प्रकट करने के लिए नाटककार ने कई घटनाओं की भी योजना की है। ये घटनाएँ कथानक की दृष्टि से यद्यपि असम्बद्ध हैं परन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से धर्मद्वन्द्व का प्रकट करने में सफल हैं। विद्वत्काम की मानसिक स्थिति को बिलाने के लिए नाटककार ने मासती के प्रति कुछ अन्वहार की योजना की है।

संवाद

संवाद का प्रथम गुण है कि वह कथानक को गति दे। जो संवाद कथानक की गति में बाधा पहुँचाए उसे नाटक की दृष्टि से अनावश्यक ही कहा जायगा। यद्यपि इस दृष्टि से यह नाटक सफल ही कहा जायगा तथापि आरम्भिक कृति होने के कारण यह दोषमुक्त नहीं। आरम्भिकानियों आह्वय और विद्वत्काम की बातचीत का अधिकांश अंश कथानक को कोई योग नहीं देता।

संवाद का दूसरा गुण है चरित्रों को स्पष्ट करना। इन दृष्टि से भी यह नाटक सफल सफल है। आरम्भिक नाटक होने के कारण इसमें प्रौढ़ता नहीं पाई है।

इन दो दृष्टियों से संवाद का उपयोग करने हुए भी नाटककार उसमें स्वाभाविकता का निर्वाह करता है ताकि वह उचित आतावरण की दृष्टि में योग्य न बने। यह स्वाभाविकता संवाद की भाषा एवं गति को विषयानुसृत एवं पार-मुरुष बनाने से ही सम्भव है। इन नाटक में विषय मात्र प्रधान भी है और तर्क प्रधान भी। मात्र प्रधान विषयों में भाषा सरल है अपमा आदि घर्षकारों का प्रयोग भी नहीं। उसमें भावनाओं को स्पर्श करने की दक्षिण पूर्ण भावों के स्वाम पर अज्ञेयियों के प्रयोग से साई गई है। प्रौढ़ पति की उदात्त भावना न युक्त हर समय की ऐड-डाड से सत्यम किरणमी की प्पानि एवं रोष की

नाबमा को नाटककार कितने सीधे सरल और दूरे-दूरे भाव्यों द्वारा व्यक्त करता है—

‘किरणयमी—(कुछ कड़े स्वर में) हँसो खोर से हँसो । तुम्हें हँसी या रही है खोर मुझे ? अब नहीं तब तुम कितने कोई भी समय हो’ रख हो या दिन हो । बराबर मछे में । सबसे पछती हूँ तो बड़ी बर तक वर सीधे नहीं पड़ते तुम्हें देखती हूँ तो काँप जाती हूँ ।’

तर्क-प्रमाण संसार यद्यपि कुछ सम्ये हो गए हैं परन्तु उनमें तर्क की शुद्धता के कारण प्रवाह है । भाव्यों के दूरे हुए विश्वास के द्वारा उसे भावात्मक रूप दे दिया गया है । इसीलिए सम्ये संवाद भी नाटक में बखरते नहीं ।

वातावरण में सर्वत्र विषयावृत्तय घम्भीरता नहीं है ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि नाटक धारमिक कृति होने के कारण वस्तु एक विषय लोगों ही दृष्टियों से संघटित ही सफल है । परन्तु फिर भी हिन्दी-नाट्यसाहित्य का प्रथम समस्या-नाटक होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्त्व अनुभूत है ।

## (२) आधी रात

वस्तुपक्ष

मिम्बजी ने इस नाटक में दो समस्याओं को तर्कयुक्त विवेचन का विषय बनाया है। प्रथम है विरक्त नारीत्व का आदर्श और दूसरी है साहित्यकार का समाज के प्रति उत्तरदायित्व। दोनों ही आवश्यक समस्याएँ हैं परन्तु मिम्बजी ने अपने अन्य नाटकों की भाँति इस नाटक में भी इनका विषय भारतीय और पाश्चात्य आदर्शों के इन्तर्भव संदर्भ में किया है जिसके कारण इन समस्याओं का सामयिक महत्त्व भी अङ्गुष्ठा है।

प्रथम समस्या है विरक्त नारीत्व। इसके अन्तर्गत नारी-स्वातन्त्र्य और मर्यादित विवाह का तुलनात्मक विश्लेषण है। समस्या के विवेचन के लिए नाटक-कार ने पाश्चात्य संस्कारों में पली हुई एक शिक्षित भारतीय नारी के चरित्र को आधार बनाया है। नारी-स्वातन्त्र्य के मोह में उसने दो प्रेमियों को प्रेम किया परन्तु प्रतिवन्धिता के कारण एक ने दूसरे को गोली मार दी। इस प्रकार एक मारा गया और दूसरे की काले पानी की सजा हुई। इस घटना से प्रेमिका—भायाबती के हृदय को ठस लगी और उसका हृदय नारी-स्वातन्त्र्य एवं स्वयंमुख प्रेम के मोह को त्याग कर मर्यादित एवं एकनिष्ठ समर्पण के लिए व्याकुल हो उठा। उसने अपनी विवृति क परिचाया के लिए सेवा एवं समर्पणपूर्ण विवाह किया। वह दोनों स्थितियों का तर्कपूर्ण विवेचन करती हुई कहती है—“रक्त की वसेजना जवानी की बासना और उम्माद को अँधेरी पड़ी सभी शक्तियों की तरह मैंने भी नारी-स्वातन्त्र्य और नारी-समस्या कहकर दुनिया का हिंसा देना चाहा था”<sup>१</sup>

यूरोप के नारी-मुक्ति आन्दोलन में जिन स्थितियों ने भाप लिया था, उन्हें मैं देखी समझती थी। लेकिन क्या सभी कहीं धारमबन्धना और रक्त रसत मृता के नाम पर बासना की अभिवृत्ति नहीं थी? ”<sup>२</sup> वह पाश्चात्य स्वयंमुख प्रेम पर आधारित विवाह और भारतीय विवाह की तुलना करती हुई कहती है—  
“इस देश में विवाह का जो आदर्श है—स्त्री पुरुष का दो जीवन और दो

१. आधी रात पृ. ४३

२. आधी रात पृ. ४४



आत्माओं का मिश्रण एक हो जाना—उनकी व्यक्तिगत विभक्तता का नाश और एक सम्मिश्रित व्यक्तित्व का उदय इसका अन्तर्गत मुद्दा नहीं मिला। मेरा विवाह ता प्रेरेजी संघ में हुआ था जिसमें सम्बन्ध है, बाह्यीय है, पुण्य के प्रति प्रतिहिंसा है। जिसके मूल में यह भावना है कि बन्धन नहीं हो किसी तरह का बन्धन न हो।<sup>१</sup>

इस तुलनात्मक विधान के प्रतिरिक्त नाटककार न इस समस्या के गहरे विवेचन के लिए नारी की दृष्टि की खोज करते हुए व्यवसाय न नारी के आदर्श की ओर संकेत किया है। मायावती नारीत्व के आदर्श को पाने के लिए एक कुण्ठित व्यक्ति प्रकाशचन्द्र से जो अपनी गंवार एवं धपड़ पानी से घससुष्ट हो उसे छोड़ चुका है विवाह कर लेती है। और अपने आध्यात्मिक प्रेम के प्रयोग द्वारा उनके उद्धार का निश्चय करती है। यह पाँच वर्ष तक पति-वस्ती रूप में रहते हुए भी अपनी सावधानी और संयम से काम लेती है कि प्रकाशचन्द्र एक बार भी वापस न लौटता। इस प्रकार प्रकाशचन्द्र के उद्धार वापस के दिन बीत जाते हैं और मायावती के शरीर में उसमें एक महान् परिवर्तन आ जाता है, वह कहती है 'अगर तुम सोचो तो पहले से बुरे नहीं हुए, जो मेरे सब भी हो या कुछ संशय में उससे भी महान् हो गए हो। खतरे के दिन निकल गए। अगर बाह्य पूर्ण पुरुष पूर्ण योगी हो सकते हो। प्रकृति के उद्धार का एक आना—मृत्यु का एक आना है।'<sup>२</sup> इस प्रकार नाटककार यह सिद्ध करता है कि पुरुष की रक्षा पुण्य के नहीं स्त्री के आधीन है।<sup>३</sup> "यहाँ कहीं भी पुण्यत्व का पतन होना उसकी जिम्मेदारी किसी न किसी रूप में स्त्री पर होगी।"<sup>४</sup> इसके साथ ही वह यह सिद्ध करता है कि यह व्यक्ति कबल स्त्री के ही पास है पुरुष के पास नहीं। यह स्पष्ट कहता है, 'पुण्य की सावधानी बिड़ोड़ काती है लेकिन स्त्री की सावधानी उस बन्धन को जिसमें विद्वान् की दो निम्न समस्याएँ, दो निम्न विधान जिनकी सृष्टि एक दूसरे के विरोधी उपकरणों से होती है मिश्रण एक हो जाते हैं और भी बुरा करती है। सावधानी स्त्री के लिए है पुरुष के लिए नहीं।'<sup>५</sup> इस प्रकार नारी की दृष्टि का विधान कर नाटककार चिरन्तन नारीत्व के विकास

१ अधीन १०३ १०३

२ अधी २०३

३ अधी २०३

४ अधी १०३

५ अधी १०३

एवं भावार्थ की कल्पना समाज के सम्मुख रखता है।

इस नाटक में समस्या के विवेचन की आधार भूमि प्रवचन गहरी है। तर्क भी पुष्ट है। परन्तु फिर भी नाटककार विचार-प्रेषण में पूर्णतः सफल नहीं कहा जा सकता। नाटक का कथामय एक ऐसे भावार्थ की सीमा को स्पर्श कर रहा है जिसकी कल्पना मानव मन को सहज ही नहीं होती। पाँच वर्ष तक पति-पत्नी का साथ रहते हुए सम्पूर्ण प्रेम का प्रयोग करना एक कल्पना-माध्यम साधन है। नाटक इस बिन्दु को हृदयगत नहीं कर पाता। अतः नाटककार संसृत ही सफल कहा जायगा।

दूसरी समस्या है साहित्य के सूत्रन में कवि का दायित्व। नाटककार का कथन है कि कवि अपनी व्यक्तिगत सीमाओं को लाँचकर जब समष्टि की समस्या को धारणसाध कर लेता है तभी वह सच्चे साहित्य का सूत्रन कर सकता है। अपनी व्यक्तिगत कृष्णार्थों के अन्तर्गत किया गया सूत्रन वैयक्तिक अनुभूति की प्रवक्तृता के कारण सौन्दर्यपरक भवने ही हो, परन्तु समाज के लिए उसका क्या उपयोग। उससे नये में भूमने वाले धीरे केवल सुख-सौन्दर्य के इच्छुक लोगों की ही वृत्ति हो सकेगी।

इस समस्या के विवेचन के लिए नाटककार ने एक कल्पना की रनीनियों में स्वप्न लेने वाले भावुक कवि को आधार बनाया है जो अपनी रचनाएँ एवं अपनी पत्नी से प्रसन्न है। एक सुन्दर युवती के धारणत्व में लँस गया। संयोग ऐसा हुआ कि वहाँ भी उस नारी के साथ विवाह करने पर भी उसका सम्पूर्ण प्रेम के प्रयोग के कारण उसे निर्बलित हो रहता पड़ा। अतः उसने उस सौन्दर्य से प्रेरणा ले अपनी कृष्णार्थ की अविश्वस्य कविता में की जिसमें वह सौन्दर्यपरक रचनाओं के कारण सफल भी हुआ परन्तु अन्त में धारमनिरीक्षण करने पर उसने स्वीकार किया 'वास्तव में तो कोई घेरा बड़ा उद्देश्य है और न मैं अपने प्रति ही ईमानदार हूँ।'<sup>१</sup> इसके अतिरिक्त नाटककार ने उसे प्रेत का चिह्न बनाकर भी यह सिद्ध किया है कि वह सामाजिक दुर्बलताओं से युक्त है। इस प्रकार धारम-प्रधान सौन्दर्यपरक साहित्य के रचयिता की अनौद्योगिकता का तर्कपूर्ण विवेचन कर नाटककार यह सिद्ध करने का प्रयास करता है कि व्यक्तिगत कृष्णार्थों से उत्पन्न साहित्य समाज में कुराहणों को बढ़ावा देता है। नाटक ने अन्त में प्रकाशना कहता है 'मैं अनुभव कर रहा हूँ मैंने जो कुछ अब तक लिखा है मिथ्या रहा है इस मिथ्या को जल जाने दो।'<sup>२</sup> और वह अपने

१. माजी एन, पृ० ८०

२. वही, पृ० १४४

सारे साहित्य को जसा देता है।

समस्या के इस विवेचन में आत्म-प्रधान सौम्यवर्णक साहित्य के रचयिता द्वारा अपनी कुष्ठाधों की स्वीकृति कराकर भी नाटककार पाठक की बुद्धि को प्रमिथृत नहीं कर पाता क्योंकि पाठक बहु कैसे मान ले कि ऐसे साहित्य की रचना करने वाला प्रत्येक कवि अवश्य ही अपनी कुष्ठाधों से आक्रान्त होता है और ऐसी कविता रोगी होने पर ही लिखी जा सकती है। तर्कों में बुद्धि की प्रवेसा भावना का आश्रय अधिक लिया गया है इसीलिए उक्त अधिक गहराई नहीं। प्रसाधारण विषयों में केवल बुद्धिवादी तर्क ही समस्या के उद्घाटन में सफल होते हैं जिसका इसमें अभाव है।

इस प्रकार दोनों समस्याओं के विवेचन में नाटककार संघटन ही सफल है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाटककार के पास एक निश्चित विचार है जिसके प्रभाव से आक्रान्त होकर वह समस्या के द्विपक्षी सटसब विवेचन की प्रवेसा अपनी बात ही अधिक कहना चाहता है।

इन दो समस्याओं के विवेचन के प्रतिरिक्त नाटककार ने कथानक के माध्यम से मानव की प्राथमिक कृति पर व्यय किया है। पुण्य की उद्दाम वासना का विवर्धन कर उसने यह स्पष्ट किया है कि स्त्री के लक्ष्य पर पुरुष ने कभी संभव होकर विचार नहीं किया। जिस स्त्री के जीवन में चार प्रेमी रहे हों वह अपने जीवन का निर्वाह कैसे कर सकती है। रामाचरण के शब्दों में नाटककार व्यक्त करता है 'जिस स्त्री के जीवन में एक से तीन चार प्रेमी हो पड़ें—सिवा आत्महत्या के वह और कर ही क्या सकेगी?' मायावती के जीवन में आने वाले चार प्रेमियों में समाज सुधारक का सम्मिलन करने वाले भी हैं। इसी को लक्ष्य करके मायावती कहती है—'आप और आप ही की तरह बहुत से लोग हैं जो न तो सुधारक हैं न उपदेष्टा और न सेवक। मनुष्य की ओर मनुष्यता के हृदय का रक्त बूझ रही है।'

यह व्यंग्य पाठक के हृदय पर अवश्य गहरा प्रभाव डालता है परन्तु नाटककार ने उन्हे सीधे बताने का कहीं प्रयास नहीं किया। नाटककार का लक्ष्य तो उन दो समस्याओं के विवेचन में ही है जिनमें वह संघटन सफल हुआ है।

शिल्पपक्ष

कथानक-विश्लेष

कथानक के चयन और समन्वय की दृष्टि से नाटककार के कौशल का विशेष

परिचय मिलता है। नाटक में दो मुख्य पात्र हैं—प्रकाशचन्द्र और मायावती। प्रकाशचन्द्र की अपनी स्वतन्त्र समस्या है परन्तु उसके विवेचन में पूर्णता लाने के लिए मायावती जैसे पात्र का समावेश आवश्यक है। इसी प्रकार मायावती की अपनी समस्या है और उसके प्रयोग में प्रमुख भाग प्रकाशचन्द्र का है। इस प्रकार दोनों पात्र बहुरी विरोधताओं (यद्यपि दोनों में ही सत्ताधारण विरोधताओं की आवश्यकता है) से युक्त हैं। दोनों में अपनी तथा दूसरे की समस्या के निर्वह के लिए उपयुक्त शक्तों का सामंजस्य किया गया है। चटनाओं एवं चरित्रों की बौद्धिक दृष्टि से कहीं भी अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक सम्भावित अस्वाभाविकता के लिए नाटककार ने ठर्क प्रस्तुत कर दिया है। और इस सब विरोधपर और सम्बद्धता के साथ-साथ नाटक का धाकार भी अपेक्षाकृत बड़ा नहीं है। यह सब नाटककार की कुशल संयोजन-शक्ति का ही परिचायक है।

समस्या-नाटक के कथानक का कुशल विव्यास कम बही जाया जाता है जिसमें समस्या पर ठर्क-वितर्कपूर्ण विवेचन के लिए पूर्ण अवकाश रहे। इस दृष्टि से यह नाटक सबका संकष है। इसमें कथानक के कुछ और मुख्य भाग को इस प्रकार विभाजित किया गया है कि दोनों समस्याओं के ठर्कपूर्ण विवेचन में भी कथानक में स्वाभाविकता बनी रहती है। कथानक की गति अवश्य मन्द हो जाती है परन्तु बौद्धिक विवेचन में ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

नाटक में दो समस्याएँ एक साथ उठाई गई हैं। यद्यपि उनमें सम्बद्धता पाई जाती है तथापि इससे नाटक में कुछहुता बढ़ गई है और इस कुछहुता और जटिलता के कारण नाटक में कलागत योग्यता की क्षति हुई है। यदि दो बाह्येनिक समस्याओं की अपेक्षा एक ही समस्या का चित्रण किया जाता तो नाटक अपेक्षा कृत अधिक शक्तिमान होता।

प्रभाव की दृष्टि से भी यह कथानक संशय लक्ष्य है, क्योंकि प्रेक्षक का माना साधारण द्वारा सबसे बल करमा यादि इतना अधिक प्रभाव रखता है कि मूल उद्देश्य लीप्त हो जाता है।

कथानक के द्वितीय अंश में नाटककार ने इन्द्रमय स्थिति की योजना की है परन्तु इसके विषय में भी नाटककार ठर्क-वितर्क की प्रभावता के कारण संशय लक्ष्य है।

चरित्र-विवेचन

चरित्र-विवेचन की दृष्टि से यह नाटक चरित्रांकन की धातुनिरूपित विरोधताओं से युक्त है। यह विरोधता इस नाटक के प्रमुखतां प्रभाव परवर्ती किसी -

हिन्दी नाटक में नहीं पाई जाती। चरित्र-चित्रण की सामान्य धीरे में पात्रों के साथ नाटक या प्रेक्षक का साधारण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिससे उनके जीवन की घटनाओं का पाठक की बस्तियों से सीधा सम्बन्ध हो जाता है। रामकृष्ण पात्र नाटक के पक्ष में और रामकृष्ण पात्र नाटक के विपक्ष में हो जाते हैं। इस प्रकृति का विज्ञान-युग में विकास हुआ और नाटक प्रत्येक पात्र की समस्या का उसकी परिस्थितियों एवं परिवेश के मध्य सहानुभूति से विचार करने लगा। यह माना जाने लगा कि पात्र के दुष्कर्मों के लिए क्षमा उत्तर दी जाती है। मिश्रजी के अन्य सामाजिक नाटकों में हमें नहीं प्रकृति लक्षित होती है वहाँ हमें अन्धकता मुरारीलाल आचार्यजी और नजरबंदी जैसे पात्र से भी पूर्ण सहानुभूति है। विज्ञान की प्रगति के साथ हम चरित्र की भाव की अपेक्षा विचार द्वारा समझते हैं। चरित्रों के कार्यों से पूर्वतया तटस्थ रह कर हम अन्य प्रकृतियों का दृष्टि अध्ययन करते हैं। वैज्ञानिक चरित्रांकन की इस विशेषता का इस नाटक में सुन्दर एवं सफल प्रयोग है। किसी भी पात्र के साथ हमारा साधारण सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। लगभग सभी पात्रों में गुण भी हैं और दुर्गुण भी परन्तु हमारी आसक्ति किसी के साथ नहीं। रसवादी दृष्टि से यह विशेषता यद्यपि दोष हो कही जा सकती परन्तु विज्ञान के युग में विस्तेष्य एवं चरित्रांकन की इस आधुनिकता से ही को समस्या-नाटक का प्रगम ही कहा जायगा। इस शैली को हिन्दी नाटक में अवतरित करने का श्रेय मिश्रजी को ही प्राप्त है।

चरित्र-चित्रण में अपेक्षित विस्तार की कमी एक प्रमुख दोष है। यद्यपि दोनों प्रमुख चरित्रों की बौद्धिक दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता परन्तु इतनी अधिक असाधारणता नाटक के अस्तित्व में केवल तर्क द्वारा नहीं उठती। यह प्रत्येक तर्क को लेकर उसका निवेदन करे और फिर वही आधार पर चरित्र के प्रति धारणा बनाए, यह हमसे अपेक्षित नहीं। इतने अधिक असाधारण चरित्रों के लिए नाटककार को नाटक के आधार का विस्तार कर उनका अधिक विस्तार करना चाहिए था। केवल एक तर्क देने में चरित्र का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। इसलिए यह चरित्र स्वाभाविक होते हुए भी प्रतीय नहीं। चरित्र-चित्रण में प्रकाशचन्द्र के चरित्र में परिवर्तन दिखाया गया है परन्तु उसमें भी नाटक का स्तर इतना बौद्धिक रहा है कि पाठक की उसमें स्वाभाविकता का आभास भी नहीं होता। वस्तुतः इतने असाधारण चरित्रों की बौद्धिकता की देकर यदि नाटककार पर यह आरोप लगाया जाय कि उसके पास स्वतः व्यक्तिगत नहीं है और नाटककार की भाषा में ही बोल रहे हैं पक्ष न होगा।

## संवाद

अन्य नाटकों की तरह इस नाटक के संवाद भी स्वाभाविक एवं सफ़्त हैं। वाचनिक विषयों को भी सरल एवं व्यवस्थित बोधनास की भाषा में प्रतिपादित किया गया है। अथवा पूर्ववर्ती नाटकों की अपेक्षा इस नाटक के संवादों में कभागत प्रीकृता का भी आभास होता है।

संवाद की दृष्टि से एक नवीन प्रयास भी नाटककार ने किया है। नाटक में प्रेक्षक और नाट्यकार के संवाद तथा मायावती और प्रकाशचन्द्र के संवादों को एक ही समय अभिनीत किया गया है, जिसके कारण केवल संवाद का प्रवाह ही स्पष्ट नहीं होता प्रत्युत असम्बद्धता के कारण भाव भी अस्पष्ट रह जाते हैं और पाठक को धर्म समझन के लिए कई बार संवादों को पढ़ना पड़ता है। अभिनय में सावर सह पट्टिआई कुछ कम हो परन्तु प्रवाह के टूटने के कारण एक बार में धर्म समझ नमा तो वही भी कठिन होगा।

इस नाटक की ध्वनी में अन्य नाटकों की अपेक्षा एक नवीन विद्यपता यह है कि इसमें नाटककार ने विवास के लिए प्रतीक ध्वनी का भी सुन्दर प्रयोग किया है। मायावती अपने जीवन के प्रयोग की पूर्णता तथा आत्महत्या की बात को रामा और रानी के कमल के माध्यम से कह देती है—

मायावती—“वही कहानी याद है ?

प्रकाशचन्द्र—“कौन सी ?

मायावती—“वही वही रानी दुखी की कमल का फूल जिन घमा।

रामा उसे ताड़न के लिए ज्यों-ज्यों काम बढ़ा कदम बढ़ाह जल की घोर मित्रता गया। कमल में रामा की बुझ गया और फिर वही एक की जगह को चुन हो गए ? उम फूल में और मेरे प्रयोग में कोई अन्तर नहीं।”

विषय की जटिलता और सांकेतिकता में बढोर वस्तुता के कारण कहीं-कहीं कथादुरुह भी हो गए हैं।

निष्पत्ति रूप में कहा जा सकता है कि यद्यपि मिथजी की नाट्य बुधमता का हममें सबेष्ट परिचय मिमता है परन्तु विषय की जटिलता से उत्पन्न दुर्द-श्रीरमता एवं दुबहता के कारण हम मिथजी के प्रथम अधी के नाटकों में नहीं रमा जा सकता।

## (ख) विचार प्रधान नाटक

### (१) राक्षस का मन्दिर (प्रतीक नाटक)

इस नाटक की समीक्षा से पूर्व इसके स्वल्प से अवगत होना आवश्यक होना क्योंकि इसका दृश्य विधान अन्य नाटकों से सर्वथा भिन्न है। नाटक में मुख्य धर्म की व्यञ्जना के लिए नाटककार ने प्रतीक-पद्धति का प्रयोग किया है। जैसे तो समस्या-नाटक या विचार प्रधान नाटक में प्रतीक-पद्धति का अव्यक्त प्रयोग अनिवार्य होता है। परन्तु इस नाटक में प्रतीक का प्रयोग इतना सारवर्ध और निश्चय हुआ है कि यदि कोई इसे प्रतीक नाटक भी कहें तो अवश्यतः न होगा। परन्तु इसमें प्रतीक का स्वल्प 'कामना' 'उपोत्सा' या 'प्रवास' आश्रय की तरह स्पष्ट नहीं है। इन नाटकों में तो मूर्त एवं समूर्त कथा इतनी समानांतर चलती है कि कथा के मुख्य अवयवों में भी सिद्धान्त की व्यञ्जना की जगह मिलती है। लघु कार्य-व्यापार मूर्तपक्ष की अपेक्षा समूर्तपक्ष को अधिक धनि देता है। अश्लील विचार अथवा सिद्धान्त प्रतीक एवं शैव के कारण विस्मृत नहीं होने पाता। परन्तु इस नाटक में प्रतीक का स्तर कुछ अधिक व्यापक है। सिद्धान्त तथा विचार की व्यञ्जना मुख्य अवयवों के स्वल्प पर केवल समग्र प्रभाव से होती है। मूर्त कथा का अपना स्वयम्ब महत्त्व है और उसका विकास भी स्वतन्त्र पद्धति से हुआ है। दूसरे इस नाटक में प्रतीक का निर्वाह इस कौशल से किया गया है कि मूर्त कथा में से कई प्रतीकों की व्यञ्जना होती है जिसके कारण नाटक का महत्त्व और भी बढ़ गया है।

#### वस्तुमय

मूर्त रूप में इस नाटक में एक कथा की कथा—सहकरी के उन्माद की कथा है जिसमें उसकी व्यक्तिमय तथा सामाजिक बाधाओं एवं समस्याओं का

१. वस्तु में यह मुख्य नाटक की एक प्रकृति के रूप में है—जिसमें एक अव्यक्त व्यक्तित्व के रूप में एक व्यक्ति का व्यक्तित्व का कौशल पाया है। एक प्रकृति प्रकृति का है कि वह सिद्धान्त प्रकृति के अन्तर्गत है और सामाजिक और सामाजिक का एक है।

विशद चित्रण है। अन्तिम शंक में बैरवा सुभार धायम की वास्तविक स्थिति का चित्रण कर नाटककार ने सदाव्यक्त सुभारवाचियों की पोस खीसम का भी चफम प्रवास किया है जिससे समस्या का सामाजिक रूप का भी अच्छा परिचय मिलता है। इस प्रकार मूल कथानक का रसतन्त्र महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

प्रतीक

कथानक के मूर्तपक्ष का अस्तित्व स्वतन्त्र होते हुए भी उद्देश्य की दृष्टि से गौण महत्व रखता है। नाटककार ने इसे कबल अपने प्रतीक का साधार बनाया है।

प्रतीकवैसी की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें विविध एवं गहरी व्यंजना के लिए पर्याप्त अवकाश रहता है। प्रतीक के माध्यम से पाठक धनैकानेक दृढ़ अर्थों को भी जान लेता है। घरकरी को जिमी भी सोपित वस्तु का प्रतीक मानकर सम्पूर्ण कथानक को स्पष्ट किया जा सकता है। घरकरी के लिए नारी मानवता आदि प्रतीक तो सहज ही ग्रहण किए जा सकते हैं। अन्य प्रतीकों की अपेक्षा नारी का प्रतीक ही हमका सबसे सम्पन्न पक्ष है और यावद मुख्य रूप से इसी का प्रयोग नाटककार को भी समीप है। धन नारी को प्रतीक मानकर ही कथानक की अतिथि को स्पष्ट किया जायगा।

घरकरी नारी का प्रतीक है। वह वास्तविकता में रक्षित के रूप में आई थी। मुवा हा जाने पर वह अपना प्राण्य प्राप्त करने के लिए देवता राजस और मानव तीनों प्रकार के पाशों के प्रतीक रामलाल मुनीश्वर और रघुनाथ के पाम जाती है, परन्तु उसकी समस्या को समर्थ दृष्टि से समझकर सहयोग देने में कोई भी उत्तर नहीं होता। रामलाल दबता है वह घरकरी की प्राकृतिक बुद्धिवाचों को भी समझने में असमर्थ है। वह अपने भोग में इतना मस्त है कि उसे अपने संशय में होने का पारों का भी ज्ञान नहीं होता। वह घरकरी का संरक्षक है उसे प्रेम भी करता है उतक लिए त्याग भी कर सकता है परन्तु उसकी बचाव समस्या को समझने में असमर्थ है। दूसरा पात्र मुनीश्वर (राजस) उसे कबल स्वार्थ के लिए प्रेम करता है। घरकरी द्वारा अनुरोध किए जाने पर भी वह प्रथम को स्वीची बना लेने के लिए उसे भगा से जाव को रीवार नहीं। घरकरी उसके साथ प्रणय को निष्कटक बना लेने के लिए अपने संरक्षक रामलाल को बिप देने को भी प्रस्तुत हा जाती है पर वह ता उत्तरदायित्व लेने को रीवार ही नहीं। तीसरा पात्र रघुनाथ (मानव) भी घरकरी से प्रेम करता है परन्तु साहज के बचाव में उसे अधिष्यक्त नहीं कर सकता। उसकी मावनाएँ प्रथि बनकर वाच्य में प्रकट होती हैं। घरकरी के प्रथम-निर्देश पर वह इस प्रेक



को स्पष्ट स्वीकार भी नहीं कर सकता।

इस प्रकार सभी धोर से मिरास हो बरकरी बिना किसी के सहयोग के निजी उत्थान के लिए प्रवृत्त होती है। वह अपनी प्रणय वृत्ति का उन्मयन ईश्वर भक्ति के माध्यम से करती है और धार्मिक आवश्यकताओं के लिए अध्यापिका का कार्य स्वीकार करती है। परन्तु नाटककार का स्पष्ट मत है कि निजी वृत्तियों के उन्मयन के परचात् भी नारो का सामंजस्य समाज के साथ नहीं हो सकता क्योंकि विरोधी परिस्थितियाँ सन्निध्य होती हैं और एकांगी तथा अपने तक सीमित उन्मयन-निष्क्रिय। अतः बरकरी को भी समाज ने इस रूप में न रहने दिया। राखस अपनी वासना वृत्ति के अधीन उसे पुनः जास न फँसाने के प्रयत्न में रहा। मानव (रघुनाथ) भी उसके सरल भवत रूप को देखकर प्रणय का बरदान देने के लिए व्याकुल हुआ। सन्निधता भी उसके गतजीवन से परिचित हो भक्त रूप को हीय समझकर उसे घर से निकाल देती है। इस प्रकार उन्मयन के परचात् भी समाज के व्यावहारिक जीवन के साथ उसका समझौता न हो सका।

अन्तिम प्रक में बरकरी एकांगी अध्यात्म से टोकर पाने के कारण स्वयं सन्निध होती है। वह मानव को भी राखस की बालों में पाने से बचाती है और स्वयं भी उसकी सारी बालों को बिच्छा कर देती है। वह नारी-जाति के उत्थान के लिए स्वयं मातृ-मन्दिर की व्यवस्थापिका बन सेवा-वत् प्रवृत्त करती है। अतः कबालक का सारा हूषा—नारी को अवगति के गर्त से निकलने के लिए स्वयं समाज के राखस के विरुद्ध सक्रिय होना पड़ेगा।

इसी प्रकार यदि बरकरी को मानवता का प्रतीक माना जाय तो सम्बन्धित इस प्रकार हाथी मानवता सभी प्राणियों (देवता मानव और राखस) के पात अपने विकास के लिए गई परन्तु कहीं भी उसे यथोचित सहयोग न मिला। सभी से मिरास हो वह स्वयं अपने निजी उत्थान में प्रवृत्त हुई परन्तु बहुत भी उसे सफलता न मिली। अतः अन्त में वह राखस का विरोध और मानव की सहायता करते हुए सम्पूर्ण मानवता के सामूहिक उत्थान में प्रवृत्त हुई। अतः निम्न हूषा मानवता को पीड़ा से मुक्त होने के लिए स्वयं मानवता के विरुद्ध सक्रिय होना पड़ेगा।

इस मुख्य प्रतिपाद्य के अतिरिक्त नाटककार ने एक अन्य समस्या का भी विश्लेषण दिया। उसने सन्निधता और रघुनाथ के माध्यम से रोमांटिक प्रेम और समित प्रेम के ऊपर यथार्थ प्रेम अर्थात् विवाह की विभक्त्य दिखालाई है। सन्निधता और रघुनाथ परस्पर आकृष्ट होते हैं परन्तु एक का प्रेम रोमांटिकता (प्रेम की अनिश्चयता) और दूसरे का प्रेम समय की सीमा को स्पर्श कर रहा था जिसके

कारण दोनों में परस्पर दूरी बनी रही। अन्त में दोनों अपनी स्थिति की यथार्थता को पहचान कर परस्पर बिबाह करना स्वीकार करते हैं। दोनों अपनी स्थिति का विश्लेषण बड़े तर्कपूर्ण ढंग से करते हैं। सतिता के शब्दों में गर्माक्षिता का बिबोह दक्षिण—

रघुनाथ— (रोमांचिका के बिना) 'पर यह जीवन कितना सुना खेसा।'

सतिता— 'पर साथ ही साथ कितना सुन्दर और कितना सुखी होना! हृदय के भीतर बिन्ता और बिचार का समुद्र तहर्ने नहीं मारेगा। वहीं वह बात न होगी जिसके कारण एक बार एक सने या स्वर सुन मन से हृदय कांप उठता है। मैं सब कुछ भूल जाती थी।'

इसी प्रकार रघुनाथ संयम की प्रतिरञ्जना का खण्डन करता है—

रघुनाथ— मुझे पड़ाया गया था अपनी लासलसामों को बचाओ' मुबती के प्रेम से दूर रहा। यह सब माया है। जीवन इससे बिगड़ जाता है। मैं छोटे की तरह अपना पाठ याद करता जाता था। धारण के मन्त्रों में मैं जीवन को नहीं समझ सका।'

इस प्रकार नाटककार ने प्रेम और संयम दोनों की प्रतिरञ्जना का खण्डन किया है।

पात्र

नाटक में पात्रों का व्यक्तिगत भी एक विशिष्ट प्रभाव की प्रतिरञ्जना करता है। अतः इसका विचार भी वस्तुपत्र के अन्तर्गत करना समीचीन है। नाटक में मुख्य रूप से चित्रांकन चार पात्रों का हुआ है।

नाटक का प्रधान पात्र मुनीन्द्रर राक्षस का प्रतीक है। उसके व्यक्तिगत की प्रमुख विशेषता है दूसरों से दूरी करना और अपनी अनुराग के कारण दूसरों की हत्या मान न होने देना। वह अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए पिता पत्नी पुत्र, मित्र प्रेमिका और समाज सभी से दूरी करता है परन्तु कोई भी उसकी पदार्थ प्रकृति को नहीं समझ पाता। प्रत्येक उचित-अनुचित उपाय द्वारा अपना काम निजालत हुए भी वह समाज में सम्मान का पात्र है। नाटककार ने इस प्रतीक से समाज की उस प्रकृति को अनावृण किया है जो जीवन-संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए दूसरों की गरलता से लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित करती है। इस

प्रकृति में निजी स्वार्थ के लिए दूसरों से छद्म करना अमानवीय नहीं क्योंकि 'योग्य तत्त्वमस्य' ही सृष्टि का आधारभूत सिद्धान्त है। समाज में इस प्रकृति का अवलम्बन करने वाला वर्ग सक्रियता के कारण लौकिक दृष्टि से प्रतिष्ठित एवं प्रगतिशील कहलाता है।

दूसरा पात्र रघुनाथ मानव का प्रतीक है। उसमें नाटककार ने निष्क्रियता आत्मशमन पलायन साहस का अभाव आदि दुर्बल वृत्तियों के साथ समाज के अस्वच्छता का सामंजस्य किया है। वह अपनी इन दुर्बल वृत्तियों के कारण अत्येक काम में असफल होता है। केवल नाटक के अन्त में सब धीरे से ठोकरें खाने के पश्चात् उसमें उत्साह जाग्रत होता है और वह यथार्थ जो पहचान कर नर्तक्य की ओर प्रवृत्त होता है। यह चरित्र भी प्राधुनिक युग की देन व्यक्तिवाद की एक प्रकृति का प्रतिनिधित्व करता है।

तीसरा पात्र रामसाज देवता का प्रतीक है। वह पूर्णतया अपने-प्राप में मस्त है। उसकी जो ही आवश्यकताएँ हैं—सुरा और मुन्हरी बस इन दो से भिन्न उसे किसी बात की चिन्ता नहीं। उसके संस्मरण में क्या-क्या पाप हो रहे हैं, इसकी भी उसे चिन्ता नहीं। इसके अतिरिक्त उसमें संयम त्याग उदारता और विचार-स्वातन्त्र्य की भावना का भी नाटककार ने समावेश किया है। परन्तु उसके ये सभी गुण उसकी लट्ठपन की वृत्ति के कारण समाज के किसी उपयोग के नहीं। इस चरित्र के माध्यम से नाटककार प्राधुनिक युग के एक ऐसे तत्व को प्रभावित करता है जो सम्पूर्ण है और अपने प्राप में मस्त है। समाज की उस कोई चिन्ता नहीं।

प्राधुनिक युग में विज्ञान और उद्योग के विकास के कारण समाज में एक वैचारिक क्रान्ति आई। जिसने समाज की धारणाओं विचारों और जीवन-मूल्यों को सर्वथा बदल दिया। जीवन की गति व्यक्तिवाद को प्रामुख्य करके परिचित हो गई। इस व्यक्तिवाद की तीन प्रमुख प्रकृतियों—लट्ठपन निष्क्रियता एवं स्वार्थ सिद्धि को लेकर ही नाटककार ने क्रमशः रामसाज रघुनाथ और मुनी श्वर के चरित्र का संकलन किया है और इन्हें देवता मानव और राजसूय का अभिमान भी प्राधुनिक युग के नैतिक मूल्यों और मानदण्डों के अनुसार दिया है। इस प्रकार इन तीनों चरित्रों द्वारा नाटककार ने प्राधुनिक युग की प्रकृतियों का उद्घाटन करने का सफल प्रयास किया है।

चरकरी के चरित्र के दो तप हैं—परिवर्तन से पूर्व का रूप प्राधुनिक नारी की विधायताओं का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें वह अपने प्राप्य के लिए प्रयत्नशील है परन्तु परिवर्तन के पश्चात् वह एक वैधवा का प्रतिरूप है जिसमें वह अपने

ये नहीं सम्पूर्ण मारी-बर्ग के उत्पन्न के लिए प्रयुक्त है। परिवर्तन से पूर्व का रूप  
ये समाज के अन्तिम निष्कर्ष है।

यह धर्मकरी के देवी-रूप को छोड़कर दोष चरित्रों को वर्ण चरित्रों के  
मन्त्रपत्र रखा जायगा।

विश्लेषण

जैसा कि वस्तुस्थिति में स्पष्ट किया गया है कि नाटक में मुख्य धर्म की रचना  
जैसा प्रतीक के माध्यम से हुई है अतः प्रतीक नाटक की सीमाओं की दृष्टि में रखते  
हुए ही इसके नाट्य विषय की धारणा करना समीचीन होगा। प्रतीक दृष्टि  
में लिखे गए नाटक की विशेषताएँ आचार्य नाटक की विशेषताओं से भिन्न होती  
हैं। जहाँ उसका चिन्तन एक गहरी एवं विविध व्यवस्थाओं के कारण प्रबल हो  
जाता है वहीं उसके गायन का अपेक्षाकृत ज्ञान होता है। इसी बात को लक्ष्य  
करते हुए प्रसिद्ध आलोचक केबेलर लिखते हैं— 'सुव्यवस्थित प्रतीक होने पर भी  
प्रतीक नाटक में कथानक अभिव्यक्ति सीमित होती है क्योंकि इसका सम्बन्ध  
हृदय से न होकर मस्तिष्क से होता है और क्योंकि इसमें जीवन के स्थान पर  
धार्मिक विचारों और जीवन पात्रों के स्थान पर वर्णगत भावों का चित्रण  
होता है।' स्पष्ट है कि नाट्य-जीवन में ज्ञान का प्रमुख कारण कथानक को  
विचार के समुच्चय गठित करना तथा चरित्रों को प्रतीकों की व्यवस्था के समुच्चय  
आधुनिकता बनाना है जिससे स्वाभाविकता और समीक्षा को सति पहुँचती  
है। इस नाटक में नाटककार को दो बातें ध्यान रखनी हैं एक और तो वह प्रबल  
करता है कि नाटकीय तत्त्वों का अधिकारिक रक्षण और स्वाभाविक पटन हो  
दूसरे वह अपने विचार का पूर्ण प्रेषण कर सके। इन दोनों के सम्बन्ध में ही  
नाटक की सफलता निहित है। अतः सभी तत्त्वों के परीक्षण में विचारणीय यह  
है कि नाटककार मूल एवं अमूर्त दोनों पक्षों के सम्बन्ध में जहाँ तक सफल हुआ  
है। जिस एक पक्ष को देखकर उसकी अस्वाभाविकताओं से नाटक-जीव निकोड़ना  
ठीक नहीं।

कथानक-विश्लेषण

कथानक का मूल रूप ही नाटक के सम्पूर्ण जीवन महत्त्व रखता है। अतः

1. Moreover the symbolical play even when properly labelled, is limited in its artistic appeal, because it speaks to the intellect rather than the heart, because it substitutes for a picture of life disembodied ideas and for living men and women abstract types.

इसका एक सीमा तक निर्वाह होना अनिवार्य है। उसमें छिद्रान्धेषण से घस्वाभाविकता आदि दोष भल ही बूँद किए जाएँ परन्तु मोटे तौर पर उसमें प्रगति का होना आवश्यक है। इस नाटक के मूल कथानक में प्रगति का सफ़ल निर्वाह हुआ है। यदि प्रतीकार्य को विस्मृत भी कर दिया जाय तो भी कथानक में एक स्वतन्त्र बिन्दु है एक सजीव समस्या है और उसमें प्राचोपान्त एकसूत्रता है। इसी एकसूत्रता की दृष्टि से नाटक के विन्यास-रस का भी परीक्षण किया जा सकता है। कथानक की आदि मध्य और अन्त इन तीन भागों में क्रमानुसार सुषमता से बढ़ा जा सकता है। इस प्रकार कथानक-विन्यास और प्रक-योजना में सामंजस्य बनाए रखने में भी नाटककार सफल है। प्रतीकार्य की दृष्टि से तो प्रगति और कथानक विन्यास की योजना और भी संगत है।

इन सफलताओं के साथ साथ मूल कथानक के दोष भी बड़े व्यक्त हैं जैसे घटनाओं में सापेक्ष अनुपात की कमी घटनाओं का सम्बन्ध करने वाले तत्त्वों की प्रति सुदृढता अस्वाभाविक बटनाई आदि। परन्तु इन दोषों का बहुत प्रसंगों तक परिष्कार प्रतीकार्य के स्पष्ट हो जाने पर हो जाता है। जैसे रामलाल जैसे मोपी व्यक्ति में इतना संयम दिखाना कि वह अपने हाथ पर स्वयं चाकू मार कर लून की धार बहा दे परन्तु उछल तक न करे। प्रत्यक्ष अर्थ में यह बटना सर्वथा अस्वाभाविक है, परन्तु रामलाल पर देवता के प्रतीक की अतिशय करने के लिए उसमें मस्ती और संयम का सामंजस्य दिखाना आवश्यक था। इसी प्रकार प्रतीक स्पष्ट हो जाने पर अन्य दोषों का प्रभाव भी क्षीण हो जाता है।

प्रतीकार्य के स्पष्ट हो जाने पर भी नाटक का प्रशासकिकता के दोष से मुक्त नहीं कहा जा सकता। तीसरे अंक में साहित्यकारों आलोचकों की चर्चा उनकी देख-रेखा गोपीजी की देशभक्ति आदि आदि के प्रयोग के मात्र आदि पर सिद्धे हुए लयन १३ पृष्ठ किसी भी प्रकार मूल समस्या के बाध नहीं बढ़े जा सकते।

कथानक की रोचकता का आधार मुख्यतः कोनूहक होता है। परन्तु इस नाटक के विकास में कोनूहक जिससे घाले का हात जालन की उत्पन्नता बनी रहती है कम होने पर भी रोचकता का निर्वाह है। इससे बटनाई विम दिसा भी और परिचित होगी इसका आभास घटना से पूर्व सर्वथा नहीं होता। इस कथानक-विन्यास की तुलना चर-साहित्य के कथानक-विन्यास से की जा सकती है।

प्रतीकार्य को स्पष्ट करने वाली घटनाओं के प्रतिनिधित्व मूल कथानक में कोई भी असाधारण घटना नहीं है। मुनीश्वर यद्यपि छल-कपट में अनुर है परन्तु

राजस का मन्त्रि

विपस की दुबसता के कारण उसका संघर्ष कहीं भी इन्द्र का रूप धारण नहीं करता। इन्द्र के प्रभाव में कबालक का विकास मन्द गति से होता है। साधारण नाटक की दृष्टि से यह होय कहा जा सकता है परन्तु व्यंग्यार्थ को स्पष्ट करने में इसकी पुष्टता का कोई संशय तब परिहार हो जाता है।

चरित्र चित्रण

प्रतीक नाटक की सफलता वास्तव में चरित्र-चित्रण की कुशलता पर निर्भर करती है। प्रतीकात्म्य की व्यञ्जना और चरित्रों की सजीवता दोनों में सामञ्जस्य बनाए रखना ही नाटककार के कौशल का परिचायक है।

जैसा कि वस्तुपक्ष में विवेचन किया जा चुका है केवल प्रदर्शक की ईर्ष्या को छोड़कर शेष सभी चरित्र वर्ग चरित्र हैं। परन्तु वर्ग चरित्रों की श्रेणी में रखकर भी उन्हें हम अपने प्रतीकों को प्रभावित करने में पूर्णतः सफल नहीं कह सकते। वे वर्ग चरित्र होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से प्रसाधारण चरित्र हैं क्योंकि नाटककार ने जीवन के अनेक अनेक पहलुओं की अपेक्षा केवल प्रतीकात्म्य का निर्वाह करने वाली विशेषताओं का ही उनमें प्रतिष्ठापन किया है। इस कारण चरित्रों में सजीवता का अभाव कहीं-कहीं नटकता है।

चरित्रों को स्पष्ट करने के लिए नाटककार ने उनके भावों की अपेक्षा उनके विचारों का अधिक स्थान दिया है। तर्क एवं विचार मनुष्य के ज्ञान एवं बौद्धिक प्रयुत्पल्लवों का परिणाम प्रत्यक्ष होते हैं परन्तु सम्पूर्ण व्यक्तित्व का उद्घाटन इनसे नहीं होता। जहाँ भावपूष प्रसंग आए हैं वहाँ भी पात्र अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कृत्रिम व्यवहार करते हैं। मुनीश्वर और उसके पिता का मेस कितनी भावनात्मक स्थिति में हुआ—पिता अपने पुत्र के हत्यारे का प्राणपण से पीछा करते हुए हत्यारे के स्थान पर अपने पुत्र को ही प्राप्त कर ल कितना हृदयस्पर्शी एवं भावनात्मक मेस है परन्तु नाटककार ने इसे भावनापूर्ण एवं बौद्धिक बना दिया है। भाव का ऐसा बहिष्कार जीवन में सम्भव नहीं। यह प्रसाधारणत्व की सीमा है। अतः इसके कारण चरित्रों में स्वाभाविकता एवं सजीवता की घाति हुई है। रामलाल के चरित्र-सूत्रन में नाटककार प्रसन्न सफल है। रघुनाथ और मुनीश्वर के चरित्र में जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे व्यक्ति-वार की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए भी जीवन और समाज के साथ सम्बन्धित की जा सकती हैं। परन्तु रामलाल के चरित्रांकन के लिए वे घटनाएँ प्रत्यक्ष जीवन की दृष्टि से पूर्णतया अस्वाभाविक हैं। इतना अधिक संयम और इतनी अधिक मस्ती किसी व्यक्तिवादी बौद्धिक चरित्र में मिलनी असम्भव है कि वह स्वयं स्वेच्छा से केवल संयम के प्रदर्शन के लिए हाथ में बाहु मारकर खूब

उसका एक सीमा तक निर्वाह होना अनिवार्य है। उसमें छिद्रान्वेषण से अस्वाभाविकता प्रादि शोष भरे ही बूँद लिए जाएँ परन्तु मोटे तौर पर उसमें अश्विनि का होना आवश्यक है। इस नाटक के मूल कथानक में अश्विनि का सफल निर्वाह हुआ है। यदि प्रतीकार्थ को विस्मृत भी कर दिया जाय तो भी कथानक में एक स्वतन्त्र विचार है एक सजीव समस्या है और उसमें घाघापात एकमूर्धता है। इसी एकमूर्धता की दृष्टि से नाटक के विन्यास त्रय का भी परीक्षण किया जा सकता है। कथानक को प्रादि मध्य और अन्त इन तीन भागों में अंकानुसार सुगमता से बाँटा जा सकता है। इस प्रकार कथानक-विन्यास और अन्त-व्यवस्था में सामंजस्य बनाए रखने में भी नाटककार सफल है। प्रतीकार्थ की दृष्टि से तो अश्विनि और कथानक विन्यास की योजना और भी सफल है।

इन सफलताओं के साथ-साथ मूल कथानक के शोष भी बड़े व्यक्त हैं जैसे घटनाओं में सापेक्ष अनुपात की कमी घटनाओं को सम्बद्ध करने वाले तन्तुओं की अति सुदृढता अस्वाभाविक घटनाएँ प्रादि। परन्तु इन शोषों का बहुत धंधों तक पहुँचकर प्रतीकार्थ के स्पष्ट हो जाने पर हो जाता है। जैसे रामदास जैसे मोदी व्यक्ति में इतना संयम दिखाना कि वह अपने हाथ पर स्वयं चाकू मार कर मृत्यु की चार बहा दे परन्तु उक्त तक न करे। प्रत्यक्ष अथवा में यह घटना सर्वथा अस्वाभाविक है परन्तु रामदास पर देवता के प्रतीक को अतिरिक्त करने के लिए उसमें मस्ती और संयम का सामंजस्य दिखाना आवश्यक था। इसी प्रकार प्रतीक स्पष्ट हो जाने पर अन्य शोषों का प्रभाव भी क्षीण हो जाता है।

प्रतीकार्थ के स्पष्ट हो जाने पर भी नाटक का अप्रसंगिकता के शोष से मुक्त नहीं कहा जा सकता। तीसरे अंक में साहित्यकारों आलोचकों प्रोफेसर्स की चर्चा उनकी दृष्ट-सेवा गांधीजी की देशभक्ति आदि प्रादि के प्रयोग के प्रादुर्भाव प्रादि पर लिख गए लगभग १२ पृष्ठ किसी भी प्रकार मूल समस्या के साथ नहीं जोड़े जा सकते।

कथानक की रोचकता का आधार मुख्यतः कीतूहल होता है। परन्तु इस नाटक के विकास में कीतूहल जिससे धाग का हास जानने की उत्सुकता बनी रहती है कम होने पर भी रोचकता का निर्वाह है। इसमें घटनाएँ निम्न दिखायी और परिवर्तित होनी इसका आभास घटना से पूर्व सर्वथा नहीं होता। इस कथानक-विन्यास की तुलना दार्शनिक-साहित्य के कथानक-विन्यास से की जा सकती है।

प्रतीकार्थ को स्पष्ट करने वाली घटनाओं का अतिरिक्त मूल कथानक में कोई भी असाधारण घटना नहीं है। मुनीश्वर यद्यपि छल-कपट में बहुर है परन्तु

विपल की दुर्बलता के कारण उसका समर्थ नहीं भी दण्ड का रूप धारण नहीं करता। दण्ड के प्रभाव में अध्यात्मिक का विकास संभव नहीं होता है। सामाजिक भावों की दृष्टि से यह दोष कहा जा सकता है परन्तु व्याख्या को स्पष्ट करने में इसकी दृष्टता का कई चरणों तक परिहार हो जाता है।

### चरित्र विमर्श

प्रतीक भावों की सफलता वास्तव में चरित्र-विमर्श की सुसज्जता पर निर्भर करती है। प्रतीकात्मक की व्यञ्जना और चरित्रों की सजीवता दोनों में सामंजस्य बनाए रखना ही नाटककार के कौशल का परिचायक है।

जैसा कि वस्तुतः में विवेचन किया जा चुका है केवल धरदरी के दीर्घ रूप को छोड़कर शेष सभी चरित्र वर्ग-चरित्र हैं। परन्तु वर्ग-चरित्रों की सभी मरकर भी उन्हें हम अपने पक्षियों का अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सफल नहीं कह सकते। वे वर्ग चरित्र होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से प्रसाधारण चरित्र हैं क्योंकि नाटककार ने जीवन के अन्य धनक पहलुओं की अपेक्षा केवल प्रतीकात्मक का निर्वाह करने वाली विशेषताओं का ही उनमें प्रतिष्ठापन किया है। इस कारण चरित्रों में सजीवता का अभाव कहीं-कहीं लटकता है।

चरित्रों को स्पष्ट करने के लिए नाटककार ने उनमें सबों की अपेक्षा उनके विचारों की अधिक स्थान दिया है। उन्हें ऐसे विचार अनुसंधान के ज्ञान एवं बौद्धिक प्रयत्नमयता का परिचय प्रकट है। परन्तु सम्पूर्ण व्यक्तिगत का लक्ष्य बनता हुआ नहीं होता। यहाँ भावपूर्ण प्रसंग आए हैं जहाँ भी पात्र अपनी स्वाध-निष्ठि के लिए दृष्टि व्यक्त कर रहे हैं। मुनीश्वर और उसके पिता का मेत कितनी भावनात्मक स्थिति में हुआ—पिता अपने पुत्र के हत्यार का प्रत्यक्ष से पीछा करते हुए हत्यारे के स्थान पर अपने पुत्र को ही प्रत्यक्ष कर के कितना हृदयस्पर्शी एवं भावनात्मक मेत है, परन्तु नाटककार ने इसे भावनात्मक एवं बौद्धिक बना दिया है। भाव का ऐसा अङ्गिकार जीवन में सम्भव नहीं। यह प्रसाधारणत्व की सीमा है। यद्यपि इसके कारण चरित्रों में स्वाभाविकता एवं सजीवता की कमी हुई है। रामसात के चरित्र-सृजन में नाटककार अत्यंत सफल है। रघुनाथ और मुनीश्वर के चरित्र में जिन चट्टानों का उल्लेख किया गया है वे व्यक्तिगत की सीमाओं को स्पष्ट करते हुए भी जीवन और समाज के माध्यमों की जा सकती हैं। परन्तु रामसात के चरित्रांकन के लिए वे चट्टानें प्रत्यक्ष जीवन की दृष्टि से पूर्णतया अस्वाभाविक हैं। इतना अधिक संघर्ष और इतनी अधिक मस्ती किसी व्यक्तिवादी बौद्धिक चरित्र में मिलनी असम्भव है कि वह स्वयं स्वेच्छा के केवल संघर्ष के प्रदर्शन के लिए हाथ में चाकू धारकर खुद



की साथ बहा है।

नाटककार ने रघुनाथ के चरित्र-चित्रण में उसकी वृत्तियों को व्यक्ति का रूप देकर अन्तर्हृदय को चित्रित करने का बड़ा सफल प्रयोग किया है। तीसरे अंक में उसे राक्षस के विरुद्ध प्रोत्साहित करने वाले युधक उसके हृदय की वृत्तियों के ही प्रतीक हैं।

अदकरी के चरित्र में परिवर्तन की प्रक्रिया को छोड़कर स्वाभाविकता का बहुत अंशों तक निर्वाह हुआ है परन्तु फिर भी असाधारणता के कारण वह प्रतीकार्थ को ही अधिक स्पष्ट करती है।

हुन मिलाकर इस नाटक के चरित्र ही इसके सबल पक्ष हैं और चरित्र ही इससे दुर्बल पक्ष हैं। चरित्रों के वर्णन में नाटककार ने बिना कोयल का परिचय दिया है यदि जनका निर्वाह भी उसी के अनुसृत होता तो यह नाटक हिन्दी नाट्य-क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी होता।

संवाद

नाटक के संवाद प्रतीकपक्ष की अपेक्षा मूर्तपक्ष का ही गति देते हैं। प्रतीक नाटक में विचारों को व्यञ्जित करने के लिए नाटककार साधारणतः संवाद की माध्यम बनाता है परन्तु इस नाटक में प्रतीकार्थ की व्यञ्जना व्यापक स्तर पर होने के कारण संवाद में बहुत विचारों का समावेश है।

कथानक में इन्द्र एवं गति के समावेश के कारण संवादों में तीव्रता नहीं है। किसी विशेष समस्या पर तर्क-वितर्क के समावेश में संवादों में तर्कशीलता का गुण भी नहीं आया है। अतः भाषाबोध और बुद्धि के सीधे तर्कों के स्वरूप पर आलोचना आधारित स्तर का है जो अटनायों का परिचय मात्र देता है। मुनीश्वर के स्वार्थ सिद्धि के लिए किए गए तर्क-वही-वही पाठक की बुद्धि को प्रसरण आह्वय कर लेते हैं। परन्तु यह साधारण संवाद कथानक के अर्थ विकास के अनुरूप होने के कारण नाटक का गुण ही कहा जायगा।

नाटक के कथानक के विकास में भी प्रतीक चिह्नों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अदकरी मसिता की बच्चा की कहानी के माध्यम से अपने जीवन की समस्याओं को स्पष्ट कर देती है।

निष्कर्ष-रूप में कहा जा सकता है कि नाटक में प्रतीक द्वारा विचार-प्रण के प्रयोग में नाटककार बहुत अंशों में सफल हुआ है।

## (२) मुक्ति का रहस्य

अस्तुपक्ष

नाटककार को इस नाटक में यथार्थवाद एवं बुद्धिवाद (मिथ्या की लया-  
कथित बुद्धिवाद) का प्रेषण समीप है। उन्होंने इसके लिए स्वच्छन्द प्रेम और  
आदर्श प्रेम के ऊपर यथार्थ प्रेम अर्थात् विवाह की बिजय दिखालाई है।

विवाह प्रेषण के लिए नाटककार ने दो पक्ष प्रस्तुत किए हैं। एक-रोमांसवाद  
का जिसकी प्रतीक है आशादेवी और दूसरा आदर्शवाद एवं व्यक्तिवाद का  
जिसका प्रतीक है उमाशंकर शर्मा। दोनों पक्ष अपने-अपने मिथ्या की मोमाओं  
को स्पर्श करने के कारण संघटन रह हैं।

आशादेवी उमाशंकर से प्रेम करती है और इस प्रेम में एकाधिकार स्था-  
पित करने के लिए उसकी पत्नी को बिय होती है। यद्यपि इस प्रेम का प्रतिबलन  
में उसे उमाशंकर की ओर से कोई भी संकेत नहीं मिलता। वह स्वयं स्वीकार  
करती है 'मैंने अपना हृदय निकाल कर तुम्हारे करणों पर रख दिया पर  
तुमने उसका मान नहीं किया। जिस ममत्व में तुम्हारे प्रेम के लिए 'तुम्हारी  
मुस्कुराहट के लिए तुम्हारे स्पर्श के लिए मैं स्वी अपने पुरुष से जो कुछ  
चाहती है उसके लिए मरी जा रही थी उस समय तुम मेरा सम्मान करते  
थे' मेरी प्रशंसा करने थे। मेरे सामने उस तरह जाने थे जैसे लोग अना-  
मस में जाते हैं।'<sup>१</sup>

इस प्रकार प्रतिपक्ष में किंचित प्रेम भी न पाकर इतना घृति बुद्धि करला  
रोमांसवाद की पराकाष्ठा ही नहीं आसपी। इसके प्रतिरिक्त परिस्मिति से  
विचल होकर प्रणम को मोस मेने के लिए मनीष को देव देना रोमानवाद की  
सीमा को भी लीम जाना होया। जीवन के साथ रोमांस की इस घटिपत नाबू  
कता का मार्गस्थ किम प्रकार होता। यतः वह अपने कर्म का प्रापिचित करती  
है और बिप साकर आत्महत्या करने का प्रयास करती है। कथानक के इस पक्ष  
का निष्कर्ष है—रोमांस का पक्ष है आत्महत्या।

दूसरा पक्ष है आदर्शवाद। उमाशंकर आशादेवी से प्रेम करता है परन्तु

उसके प्रेम की कल्पना इतनी ठीकी है कि अन्धकार की सीमा को स्पष्ट करती है। इस प्रेम के लिए वह समाज की परवाह नहीं करता चाचा के मानापमान कुछ भी साब धारि भी उसे चिन्ता नहीं और वह भावों की सम्पत्ति भी छोड़ने को तैयार हो जाता है। इतना त्याग उस प्रेम के लिए है जिसमें भीतिकता नहीं है और प्रेमिका के स्वच्छन्द विचारों की भी पूरी छूट है। प्रेम की पराकाष्ठा तब लक्षित होती है जब वह प्रेमिका को पाली की हृत्पारिण होने पर भी अमा करने को तैयार है। परन्तु अन्त में प्रेमिका द्वारा ही प्रेम तुड़का कर नाटककार स्पष्ट कर देता है कि इतने मईये भाव से कभीवा पया प्रेम भी अन्धकार की सीमा में पहुँच जाने के कारण प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए समर्थ की सीमा पर अनुपम बनना पड़ेगा देवता नहीं। नाटक का अन्तिम भाग कि 'देवता का स्वाभाव है अक्सर रहना' आदर्शवाद के ऊपर एक कठोर व्यंग्य है।

इन दोनों चिन्तों के कुछ परिणाम बताने के पश्चात् नाटककार ने एक तीसरा चित्र अन्धकार का दिया है। आचार्य विप निकाल दिए जाने पर पुनः जीवित हो जाती है और अब रोमास को छोड़कर जीवन के साथ समझौता करती है। डाक्टर भी उसके विप-ग्रहण से प्रभावित होकर प्रायश्चित्त करता है, उसके मन का भँस चुम जाता है और वह अपने बिल से अमा माँपता है। आधा भी देवता को अविश्वस न करने के लिए डाक्टर के मालवीय मुँहों से अमिभूत होकर उसे ही जीवन-साथी बनाने का प्रस्ताव करती है। इस प्रकार नाटककार ने आदर्शवाद और स्वच्छन्दवाद के ऊपर अन्धकार की विजय दिखलाई है।

दूसरा विचार जिसका प्रयोग नाटककार को अभीष्ट है वह है बुद्धिवाद जिसमें निम्नलिखित के अनुसार एक प्रमुख तत्त्व है अपने पाप को स्वीकार करना उसे छिपाने की अपेक्षा छोड़कर सबकुछ सम्मुख रखना। इससे उनके अनुसार समस्या सुलभाने में सहायता मिलती है। इसका प्रतिपादन उन्होंने लयमन तनी नाटकों में किया है। इस नाटक में भी आचार्य विप अपनी समस्या को बुद्धिवादी दृष्टिकोण में सुलभ करती है। वह अपने पाप को छिपाने की अपेक्षा समाज के सम्मुख कोतकर बताती है और पाप में अमा की स्वीकार करती है। उमा अँकर जो डाक्टर को मारने के लिए बीड़ने लगता है उसके तर्कों के सम्मुख विजय हो जाता है। इस प्रकार इस पम्भीर एवं उलझी हुई समस्या का वह बुद्धिवाद के द्वारा सफलता से समाधान करती है।

इन विचारों के प्रतिष्ठित नाटक में अर्धव्यय जारी धारि विषयों पर भी आलोचक रूप से विचार किया गया है परन्तु उनका विवेचन गहरा नहीं।

## शिल्प-मञ्ज

### कथानक-विन्यास

कथानक की दृष्टि से यह नाटक मिथिजी के सभी नाटकों से अधिक सफल है। इसमें वे सभी बिछेपताएँ विद्यमान हैं जो एक सफल कथानक के लिए आवश्यक कही जा सकती हैं।

कथानक का बराबरस कर्म-बाल के सिद्धान्त पर आधारित है इस कारण इसमें रोचकता का समावेश स्वाभाविक रूप से हो गया है। आशादेवी ने उन्मार्चकर के प्रेम पर एकाधिसत्य स्थापित करने के लिए एक अभिप्रेत कर्म किया। इसके द्वारा वह उन्मार्चकर की पत्नी का स्वभावपूर्ण बनना चाहती थी। परन्तु इस कर्म के पश्चात् वह स्वयं ही इस कर्मबाल में बँध जाती है। उसे अपने कर्मों का फल अपने शत्रु—उन्मार्चकर की पत्नी की ओर से नहीं मिलता, परन्तु कर्म-म्याम सिद्धान्त (theory of karma) के कारण ही मिलता है। इस प्रकार कथानक के दोष आधार के कारण कथानक का सफल सफल कहा जायगा।

इस कथानक की दूसरी बिछेपता है यथार्थता। मिथिजी के पूर्ववर्ती नाटकों में इसका अभाव था। यद्यपि नाटककार ने जो सर्वथा निम्न चित्रों का निरोधन किया है परन्तु दोनों परस्पर इस प्रकार सम्बन्ध हैं कि कहीं भी उनमें पूरकता नहीं दिखाई देती। इसी कारण यथार्थ के प्रसंग कुछ अप्रासंगिक कहे जा सकते हैं परन्तु उन्मार्चकर के अरिज की मृत्ता एक आदर्श-परायणता बताने के लिए वे आवश्यक ही हैं।

कथानक विन्यास रूप की दृष्टि से भी सफल है। यद्यपि आशादेवी का भूषित कर्म नाटक से पूर्व ही हो चुका है परन्तु नाटककार ने यही ही दृष्टि में सम्पूर्ण जातव्य विवरण पाठक के सम्मुख स्पष्ट कर दिया है। इसके पश्चात् कथा शीघ्र-शीघ्र बढ़ती है पाठक उसे ग्रहण करता जाता है। दूसरे अंक में उन्मार्चन बढ़ती है और तीसरे अंक में नाटककार समाधान प्रस्तुत करता है। वस्तुतः दो निम्न चित्रों को एक कथानक में जोड़कर उसके विन्यास का उत्कृष्ट रूप नाटककार की कुशलता का परिचायक है।

कथानक में नाटकीय स्थितियों की संयोजन भी बड़े कुशल रूप से की गई है। प्रथम अंक में डाक्टर और आशादेवी का वातावरण दूसरे में विपत्ति के लिए और तीसरे अंक में उन्मार्चकर तथा आशादेवी का वातावरण समाधानपूर्ण एवं कोमलबर्क स्थितियाँ हैं। इसके कारण रोचकता में भी निम्न दृष्टि हुई है। नाटक का कथानक अन्तर्भाव कथानकों पर आधारित होने के कारण कथानक

में रोचकता प्राप्ति गुणों का सहज समावेश हुआ है।

कथानक को प्रमत्तिष्ण बनाने के लिए भाषा का आधार सबसे प्रबल है। भाषा का जितना अधिक विस्तार होगा नाटक उतना ही हृदयस्पर्शी होगा। इस नाटक के कथानक में पारिवारिक स्थितियों की उन भावनाओं को आधार बनाया गया है जो प्रायः कारणात्मक होने के कारण हृदय को स्पर्श करती हैं। मनोहर का अपनी माँ की स्मृति में वात्सल्यपूर्ण बातें करना विशेष रूप से हृदय को प्रविष्ट करता है।

### चरित्र-चित्रण

नाटक में मुख्य चरित्र दो हैं—उमाशंकर और आशादेवी। दोनों ही व्यक्ति-वैशिष्ट्य का प्रत्यक्ष घटाधारण चरित्र हैं परन्तु इनके चरित्र का निर्वाह नाटककार ने बड़ी कुशलता से किया है। उसके पूर्ववर्ती नाटकों के पात्रों की जीति पाव व्यक्तिवहीन नहीं है। उनके कार्यकलाप एक संवाद उनके चरित्र के अनु रूप हैं।

नाटक के सीमित आधार और सीमित साधनों के कारण स्थिर चरित्रों का चरित्राकृत ही अधिक संभवता से हो सकता है। मरिचीक चरित्रों के उत्थान पतन को तो उपप्रास में ही अधिक संभवता से दिखाया जा सकता है। इस नाटक में उमाशंकर का चरित्र स्थिर है इसीलिए इस दिखाने में नाटककार पूर्ण सफल है। आशादेवी का चरित्र मरिचीक है। यह विकास प्रसंग विचारों में परिवर्तन बिप खाने के उपरान्त ही हुआ था। अतः उसका भी बिप खाने से पूर्व का चित्रण संभवतापूर्वक हुआ है। उसके पश्चात् पश्चात् उसके परिवर्तन के लिए वातावरण बनाया गया है परन्तु फिर भी इतने बड़े परिवर्तन को दो-चार पृष्ठों के चर्कों द्वारा दिखाना समुचित नहीं कहा जा सकता।

चरित्रों में भर्त्सना का आकलन बड़ी कुशलता से किया गया है। आशा देवी के चरित्र में इष्ट का रूप बड़ा स्पष्ट है। उसके भीतर का ईश-मानव-मुक्त आत्मक मनोहर से बातचीत करते हुए स्पष्ट मुखरित होता है। उमाशंकर का चरित्र प्रदर्शित होने के कारण उसमें भर्त्सना कम दिखाया गया है परन्तु यह उसकी सामीप्यता और चरित्रात्मक अनु रूप ही है।

चरित्रों के सफल चित्रण का एक कारण उनकी घटाधारणता भी है। घटाधारण व्यक्तियों के चरित्र में ही नाटककार को अपने कौशल का परिचय देने का अधिक अवकाश रहता है। आशादेवी और उमाशंकर दोनों घटाधारण पात्र हैं।

चरित्राकृत में नाटककार ने मानविय सहानुभूति का स्थान नहीं दिया।

मुक्ति का रहस्य

उसने पापी से मुक्त नहीं की केवल पाप से की है। आसक्ति को ने पाप प्रबन्ध किया है परन्तु मनाहूर के साथ कार्मिक बर्ताव पाप से वह हमारी सहानुभूति की पात्र है। हम उससे मुक्त नहीं करते प्रत्युत उसकी शोचनीय स्थिति पर क्लेश हो उठते हैं।

उमाशंकर के चरित्र में कुछ बिचित्रताएँ हैं जो पाठक का ध्यान आकृष्ट करती हैं। उमाशंकर जैसे सम्मरित्र पात्र के प्रति नाटककार धारम्य से सहानु-भूति बनाए रखता है। यसाधारण त्वाय घोर निरुद्धन सेवा से वह पाठक की भद्रा का विषय बन जाता है। ऐसे निष्कपट घोर आदर्श चरित्र बाला व्यक्ति भ्रष्ट में किस प्रकार की कार्मिक स्थिति में पहुँच जाता है देखकर पाठक के मन में उद्बेग होता है और वह सोचने लगता है क्या त्वाय सेवा निस्वार्थता का फल यही है? वास्तव में यदि नाटककार को इसका भ्रष्ट कार्मिक दिखाना था तो धारम्य ने ही उसके चरित्र में बँधे सकेत देने आवश्यक थे। परन्तु बँध न होने के कारण चरित्र काव्य-व्याय की दृष्टि से धर्मगत ही कहा जायगा।

उमाशंकर के चरित्र में एक बिचित्रता यह भी है कि वह व्यक्तिवाद का प्रवक्त समर्थक होते हुए भी सामाजिक कार्यकर्ता है। परन्तु नाटककार ने इन दोनों विरोधी गुणों का सामंजस्य बड़े सुन्दर एवं सफल ढंग से किया है।

बालक मनोहर का चरित्र उसकी कार्मिक स्थिति के कारण सबसे सुन्दर बन पड़ा है। यद्यपि बाला काशीनाथ का चरित्र बगवत विरोधियों से युक्त है परन्तु एक अस्थानाभिकता भी प्रकट होती है कि इतने बनी घोर मानी व्यक्ति ने क्या केवल स्वयं के मानव में आकर अपने भतीजे से भी प्रिय पोटों को गोदी में न बैठाकर पाड़ी में लौकरी क कमरे में बैठा दिया और उसका इतना भी ध्यान न रखा कि वह पाड़ी में बैठा है या नष्ट गया है। उसके चरित्र की यह अन्व-माभिकता नाटककार की चरित्र-चित्रण शैली में दोष कहा जायगा।

इसी प्रकार बा एक दोष आभावे की चरित्र चित्रण में भी विद्यमान है। वह यह निदोष हो जाने पर भी कि आकर उमाशंकर को सारी बात कह देना भयभीत होने के स्थान पर तर्क करती है। अन्तु नाटककार ने उसके चरित्र में इतने बड़े परिचयन के लिए अपेक्षित अन्तर्ग्रन्थ एवं आतावरण का निर्माण नहीं किया।

इन कतिपय दोषों के बावजूद चरित्र चित्रण में नाटककार अपने पूर्ववर्ती नाटक में अधिक सफल हुआ है।

संवाद

संवाद वा उपयोग नाटक में ही दृष्टियों में होता है कथानक को बताने

में और गरिब-बिगब के लिए। इस नाटक के संवादों में यह दोनों विशेषताएँ विद्यमान हैं।

कथा में मृदुभा को बनाए रखने के लिए एक ही धंक के भिन्न-भिन्न प्रसंगों को मिलाने के लिए कई बार नाटक को कुछ भिन्न-भेद संवादों की योजना करनी पड़ती है जो कि कथा-संगठन में रोप माना जाता है। इस नाटक के संवादों में इस रोप का प्रभाव है।

संवाद में स्वाभाविकता एवं यथार्थता होने पर भी उसमें एक अपेक्षित गरिमा एवं शालीनता की रक्षा की जाती है। जिसके कारण यह कृति साहित्य में अपना स्थायी स्थान प्राप्त करती है। इस नाटक में मनोहर और मोकर के संवादों में भी संवाद का अपेक्षित स्तर विद्यमान है। यथार्थ और 'संस्थापक' के संवादों में सबत्र यह गुण विद्यमान नहीं।

संवाद की गरिमा एवं स्वाभाविकता सम्बन्ध भाषणों की अपेक्षा सक्षिप्त वाक्यों और वातावरण की सैमी में अधिक होती है। एक आलोचक ने नाटक के संवादों की तुलना फुटबाल के खेल से की है जिसमें बेंब बिलने अधिक पाँचों से घाये बढ़ती है उतना ही खेल सफल माना जाता है। इसी प्रकार नाटक में संवाद बिलने अधिक छोटे होते हैं, उतना ही संवाद सफल माना जाता है। इस नाटक के संवाद इस दृष्टि से भी सफल हैं। यथार्थता संवाद पाँच-सात शब्दों के ही हैं। वैनीमायन और उमाचंकर के वातावरण में वहाँ संवाद सम्बन्ध भी हो गए हैं वहाँ भी संवाद में विचलितता नहीं है।

नाटककार ने इस नाटक में संवादों की योजना भी ऐसे कुछ ही धंक से की है कि सम्पूर्ण संवाद के माध्यम से स्वतः स्पष्ट हो जाय। बिना घाने से पूर्व घाघादेवी के हृदय के इन्द्र को ऐसे सुन्दर ध्वनि से प्रभावित किया है कि वह कहना भी नहीं चाहती और कहती भी जा रही है।

घाघादेवी—“आप जानते नहीं। इस डाक्टर ने आपकी चित्तनी हानि की।”

उमाचंकर—“मेरी हानि डाक्टर ने।”

घाघादेवी—“हाँ जिस दिन आप जानेंगे।”

उमाचंकर—“सुनूँ नी।”

घाघादेवी—“मैं नहीं कहूँगी। शायद कहने के पहले मेरी जीभ गिर पड़ेगी।”

उमाचंकर—(ध्यान से उसकी ओर देखते लपटा है। घाघादेवी की ओर कर बैठती है) “बाद क्या है? इन तरह की बातें नहीं हो? जहाँ तक मैं जानता

हैं डाक्टर ने कोई बुराई नहीं की मेरी।

मातादेवी—(साँस लीचकर) ईश्वर करे यही सच हो पर कैसे ?  
 वो मैं यह कह पाती ।<sup>१</sup>

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हम नाटक के संवादों में वे सभी गुण बिद्यमान हैं वा सफल नाटक के संवाद में प्रपेक्षित हैं । संवाद की दृष्टि से यह नाटक मिथजी के सभी नाटकों से अधिक सफल है ।

बातावरण की दृष्टि से भी इसमें प्रसंगानुकूल गाम्भीर्य की रसा की गई है । बौद्धिकता के अभाव के कारण कहीं भी कटिभत्ता एवं दुबहता नहीं माने पाई । पाठक का मन कथा के साथ समरस होकर चलता है । अन्य सामाजिक नाटकों में किसी में भी यह गुण इस मात्रा में नहीं है ।

अभिनय की दृष्टि से भी यह नाटक सबसे अधिक सफल है । अभिनय वास्तव में कथा-संगठन चरित्रों की स्वाभाविकता और संवादों के प्रवाह पर निर्भर करता है । इसमें कथा-संगठन चरित्र और संवाद सभी अभिनय के अनुकूल हैं । स्वयत् जैसे साधन को अस्वाभाविक मानकर छोड़ देने पर भी नाटककार पात्रों के अन्तर्मुख को स्पष्ट करने में सफल हुआ है । धर्म-विभाजन और दुर्य-परिवर्तन भी अभिनय के अनुकूल हैं । कथा का दृश्य भाग इस सफलता में समंजित किया गया है कि सम्पूर्ण कथा तीन घंटों में प्रदर्शित हो गई है । मिस्त्रहेह बार-बार पदां उठाने और विराम की अस्वाभाविकता से रसमय की रसा की गई है ।

निष्क्रम रूप में कहा जा सकता है कि अमावारण चटनाओं एवं असाधारण पात्रों की योजना करके भी नाटककार इस नाटक में अपने विचार-प्रेषण में सफल हुआ है । इसका मुख्य कारण इस नाटक का सफल चित्त-संगठन है । कथानक चरित्र संवाद और भाव सभी दृष्टियों से नाटक सफल है ।



## (३) राजयोग

### वस्तुपक्ष

इस नाटक में पिछड़ी नै राज्य रजवाड़ों की कथा के सन्दर्भ में अपने बुद्धिवाद के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। नाटककार ने अपने सभी सामाजिक मानकों में इस सिद्धान्त का वापस किया है। नाटकों की भूमिकाओं में भी अपने इसका ठेक द्वारा प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त का एक प्रमुख तत्त्व है— अपने अपराध को स्वीकार कर उसे समाज के सम्मुख प्रकट करते हुए तबनुकूल जीवन का पथ निर्धारित करना। अन्यथा वह मानसिक शक्ति का रूप धारण कर जीवन के विकास को रोक देगा। यद्यपि समस्या की व्यापकता को स्वीकार कर समक विस्लेषण द्वारा ही उसका निराकरण करना बुद्धिवाद का सिद्धान्त है। इस नाटक का मूल प्रतिपाद्य इसी सिद्धान्त की व्याख्या है। नाटककार के विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला राजबोली नरेन्द्र कहता है— 'मर्चाई को बचावा ही तो पाप है।'

इस विचार के प्रतिपादन के लिए नाटककार ने एक रजवाड़े घराने का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें सभी प्रमुख पात्र अपने पाप की भीतर बहाने के कारण क्षुब्ध हैं। उनके पाप उनके लिए मानसिक शक्ति बन गया है जिससे उनके जीवन का विकास रुक दिया है। प्रथम पात्र राजसूर्यनमिह राजकुमार है। उसने पहली परमी के रहस्य राजसत्ता के बल से एक ऐसी लड़की से विवाह किया है जिसकी सवाई मंत्री के लड़के नरेन्द्र से ही खुदी थी। वह लड़की जम्पा स्वयं भी मंत्री के लड़के को प्रेम करने लगी थी। इन कारण विवाह होने के उपरान्त भी राजकुमार का जीवन सुखी नहीं हुआ। पाँच बय बीन गए पर वह जम्पा के हृदय को न जीत सका। वह अपने इस अपराध की व्यापकता को स्वीकार कर समस्या के विस्लेषण को तैयार नहीं वह हम बात को सुनना भी नहीं चाहता इसीलिए दुखी है।

दूसरा पात्र मजराजसिंह है जो राजा के यहाँ एक वाणिज्यिक नीकर है। इसका बीम वर्षों से एक डाकू की पत्नी से संबंध सम्बन्ध हो गया जिससे एक

राजयोग

सबकी भी उत्पन्न हुई। इस पाप के कारण वह बीस वर्ष से उड्डिन्न है कि कहीं भेद न जुम जाय और इसी उड्डिन्नता के कारण इसने शास्त्री तक नहीं की।

तोसरा पाप बप्पा है जो हृदय तो मन्त्री व सड़के नरेन्द्र को कासत्र में ही समर्पित कर चुकी है। अब शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार अपने ऊपर समय रत्न का पूरा प्रयत्न करती है और नरेन्द्र का नाम भी सुनने से घृणा करती है। अपने पति की हर इच्छा पूर्ण करत हुए भी उसके चित्त में भागित नहीं। उनका मन जो इन्तिम रूप में बहाना घबि बन गया है।

चौथा पाप रघुवंशसिंह मन्त्री है। समस्या अन्धी बप है। उसे भी एक हृदय विदारक घनका गया है। उसका इकलौता जवान बेग नरेन्द्र पौब बप हुए घर में भाग गया है और अब उसका न ध्यान पर उसका पुनर्जन्म मन्त्री-पद भी छिन जायगा यह भावना ही उस उड्डिन्न कर रही है। वह स्थिति की यथायथा को स्वीकार करने को तैयार नहीं।

कथानक में नरेन्द्र राजयोगी के रूप में धाना है और योग क बन से गजराज सिंह की समी गृष्ट बातें उस प्रकट कर पूछ सता है। रहस्य क प्रकट हो जाने पर गजराजसिंह की सारी उड्डिन्नता धास्त हो जाती है और वह स्वाकार कर मना है कि बप्पा उसकी पक्षेय सन्तान है। धनुमूदन बप्पा को सर्वत्र सन्तान जान कर पहन घृणा करने लगता है परन्तु समस्या का और अधिक उसमता जानकर बुद्धिवादी दृष्टिकोण से समस्या को सोचकर नरेन्द्र की प्रणाम व पुनः बप्पा को स्वीकार कर सता है। बप्पा भी नरेन्द्र का जब योगी क बप न बनती है और ध्यान लेती है कि वह अब उसे कभी स्वीकार नहीं करेगा ता उसका मन की घबि भी मुक्त जाती है। रघुराजसिंह भी अपने लड़के की स्थिति का समझ कर फिर पुनर्जन्म नहीं की जिम्मा नहीं करन। इस प्रकार पाप क प्रकट हो जाने से और उस पर यथार्थ दृष्टि से विचार करन व परभाव सभी की उड्डिन्नता दूर हो जाती है। वे सब स्वीकार करते हैं "इसका विधाने सब्बे को दिए जायें पिछसी जजारे बाजकर जैक वी जायें। यह अपने मन में मान लिया जाय कि हम लोगों का जन्म बछो पर हम पात्र उतरे हैं और पात्र से ही हम लोगों का अपनी यात्रा प्रारंभ करली है।"<sup>१</sup>

बुद्धिवाद क इनके प्रबल प्रतिपादन के परभाव भी यह प्रश्न उठता है कि बुद्धि की यह युक्ति क्या हृदय को स्वीकार हा सकती है? क्या कोई भी बात

दुःख से निर्याम लेना सम्भव हो सकता है ? अपने पापों की भाड़ में भयबा सभी समुप्य पापी हैं यह सर्व मानकर जीवन की मूल आवश्यकताओं से समझौता मने ही कर लिया जाय परन्तु क्या उस स्थिति में व्यक्ति उन्नति कर पाता है। इस प्रकार जैसे-तैसे जीवनयापन भैसे ही हो पर क्या पाप के प्रकट हो जाने के पश्चात् जीवन में महत्वाकांक्षा प्रेरणा आदर्श उन्नति की जायता पहुँचे की तरह ही रहेगी ?

इस सिद्धांत के बारे में दूसरी बात विचारणीय यह है कि पाप का जो भयंकर रूप नाटककार ने दिखाया है वह सघर्ष होते हुए भी असामान्य है। इतना भयंकर पाप वास्तव में समुप्य नहीं पचा सकता और प्रकट न करने की स्थिति में वह घातमन्त्राणि एक घातपीड़ा से विनिप्ट-सा हो उठता है। परन्तु यदि इसे सिद्धांत के रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो क्या मन में घाने वाले प्रत्येक सामारण से सामारण पाप को प्रकट कर देना मानव और समाज के लिए हितकर होगा ?

नित्यपक्ष

कथानक विम्यास

कथानक के चयन एवं संयोजन में नाटककार की कुशलता सराहनीय है। कथानक की योजना इस प्रकार की है कि कुल पाँच पात्र हैं और पाँचों की भिन्न भिन्न समस्याएँ हैं परन्तु वह सभी इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि एक गाँठ घुस जाने से सभी की समस्याएँ घुलझ जाती हैं।

नाटक का कथानक पूर्णतया सुगठित है। कोई भी घटना प्रकट पात्र प्रार्थनिक नहीं कहा जा सकता यहाँ तो किसी भी घंटा को बिना कथानक की छति पहुँचाएँ काटा नहीं जा सकता। और न ही कथानक के संयोजन में किसी प्रकार की कोई ग्लूतता दिखाई देती है।

नाटक में एक ही मुश्किल कथानक होने के कारण कथानक के विकास की गति भी कहीं गिरिबल नहीं।

कथानक के विव्यास में घमिति का पूरा पालन किया गया है। विव्यास क्रम की दृष्टि से भी नाटक सफल है। पहले घंटे में सभी की समस्याएँ स्पष्ट हो जाती हैं यह प्रारम्भ है। दूसरे घंटे में बजरामसिंह के रोग का निवारण हो जाने के कारण सभी समस्याएँ एक नया रूप धारण कर लेती हैं वह संतप्त की स्थिति है। तीसरे घंटे में सभी की समस्याओं में मजबूत के साथ नाटक समाप्त होता है।

कोटुहल कथा की रोचकता का एक प्रमुख साधारण है। इसका निर्बाह भी

नाटक में बड़ी सफलता से किया गया है। प्रारम्भ में ही समस्याओं को स्पष्ट करते हुए नाटककार गजराजसिंह के पाप के सिपाने और अपने को ही सबके दुःख का कारण मानने का इस प्रकार चित्रण करता है कि पाठक उसके अपराध को जानने को उत्सुक हो उठता है। उसका पाप स्पष्ट हो जाने पर भी कौतूहल में वृद्धि ही होती है क्योंकि समस्या और भी उलझ जाती है।

नाटक में दृष्टपूर्ण नाटकीय स्थितियों की भी सुन्दर नियोजना है। यह दृष्ट रघुबंसिंह और शत्रुघ्नसिंह के मध्य शिक्षान्तपरक है। शत्रुघ्नसिंह महीन बिचारों के कारण मन्त्री पक्ष के पुस्तनी अधिकार को नहीं मानता परन्तु रघुबंसिंह मन्त्री-पक्ष के छिप्त बाये के बिचार से ही विसिप्त-सा हो जाता है। इसी प्रकार जम्पा और शत्रुघ्नसिंह में समझौते से पूर्व दृष्ट के अतिरिक्त अन्त ईन्द्र की तीव्रता ने भी नाटकीय स्थिति को अधिक आकर्षक एवं प्रभावपूर्ण बनाया है। रघुबंसिंह गजराजसिंह शत्रुघ्नसिंह और जम्पा सभी के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व है। वस्तुतः यह अन्तर्द्वन्द्व ही अपनी सर्वकरता के कारण उनकी समस्या बना हुआ है।

कथानक अनेक दृष्टियाँ स सफल होने पर भी सर्वथा दोष-मुक्त नहीं कहा जा सकता।

कथानक के संघटन में एक दोष जो अन्य सामाजिक नाटकों में अधिक है, इसमें भी ग्लूत संघ में विद्यमान है। कथानक में किसी एसी असाधारण घटना की कल्पना न की जानी चाहिए जो नाटक के मूल प्रभाव को छवि पहुँचाए। इन नाटक में दोष के अमत्कारों की घटना इसी प्रकार की है परन्तु फिर भी गजराज के चरित्रों द्वारा जो रहस्योद्घाटन होता है वह इतना अधिक मार्मिक है कि नाटक का ध्यान पुनः मूल कथानक की ओर केन्द्रित हो जाता है।

कथानक में बही बटनार्थ पाठक के हृदय को स्पर्श कर सकती है जिनकी कल्पना उसका मन कर सकता है। नरेन्द्र का प्रथम धर्म का अभिनय पाठक की समझ में विस्तृत नहीं जाता। राजयोगी की कल्पना साधारण पाठक के मन में नहीं है इसलिए वह कुछ आतंकित और अचम्भितमान होकर रह जाता है। शत्रुघ्न अपने मन पर नरेन्द्र की मंगी ललकार फैलकर तनिक भी संयमीत नहीं होना चाहता तक नहीं और फिर योपी उसे समय बान बटा है वह सब समझा दर्शक की दृष्टि से बाहर की वस्तु है।

चरित्र चित्रण

जम्पा के अतिरिक्त नाटक के सभी चरित्र विवक्षित चरित्र हैं। जम्पा के बिचारों में परिवर्तन आया। वह पहले हिल्दू बली के आशयों के अनुसार

आचरण करती है परन्तु बाद में नारी धीरे-धीरे पुरुष के सामाजिक सम्बन्धों को लेकर देखता मान जाने वाले पुरुष-वर्ग पर कठोर व्यंग्य करती है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया का विस्तृत चित्रण न होने पर भी इस परिवर्तन में अस्वाभाविकता नहीं आ पाई क्योंकि उसके परिवर्तन का आचारभूत कारण प्रबल है। जिस आदर्श को वह पति वर्ग तथा निभाती आई वह उसे सुनी न बना सका और जिस पति को वह देखता मानकर सर्वस्व अर्पण करती रही वही उसे एकदम छोड़ने के लिए तैयार हो गया। इस प्रकार अब उसके जीवन का प्रश्न ही उभर गया हो तो उसे जीवन को अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर देखने का सर्वथा अधिकार है। इसके अतिरिक्त उसके गृहस्थ जीवन में असन्तोष एवं अन्तर्द्वन्द्व भी परिवर्तन की भूमिका बन जाते हैं जिसके कारण पाठक को इतना बड़ा परिवर्तन भी अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता।

गजराजसिंह, रघुवंशसिंह और धन्वसूदनसिंह विकसित चरित्र हैं। तीनों का चरित्र एकदम ही सरल है परन्तु परिस्थिति के दृष्ट के कारण इनमें एक विशेष मौल्य्य आ गया है। परिस्थिति की उत्पन्न के कारण उनका मन में एक तीव्र संघर्ष होता है जिसका निपट करने में नाटककार पूर्णतया सफल है। रघुवंशसिंह स्वामिनिक को भी निभाता पाहता है और पुस्तंभी यन्त्री-मद की रक्षा भी करता पाहता है। एक भाव से उत्तेजित हो वह राज्य छोड़ देता है और दूसरे भाव से विचल हो वह पुनः लौट आता है। धन्वसूदनसिंह स्वार्थी वृत्ति का है वह अपने स्वार्थ के अनुकूल सिद्धान्तों की व्याख्या करता है वह रघुवंशसिंह को वैद्यन द सक्तता है पर गजराजसिंह की नहीं। स्वार्थी व्यक्ति भीरु होता है इस तथ्य का उद्घाटन भी उनका प्रत्येक कार्य द्वारा होता है। वह आधुनिक विचारों और दक्षिण विचारों (मोमियों का विश्वास) दोनों को ही अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अपनाता है। अन्त में जम्पा को स्वीकार करने में भी उसका दृढ़ता हृदय उत्तरदायी है। धन्वसूदनसिंह वास्तव में राजकुमार होते हुए भी एक विधिवत् पात्र नहीं वह बर्बस हृदय का स्वार्थी व्यक्ति है जो अपने स्वार्थ के अनुसार अपने सिद्धान्त बनाता है।

अन्त में गजराजसिंह और रघुवंशसिंह विधिवत् पात्र हैं परन्तु जम्पा धन्वसूदनसिंह की समस्याएँ विचार एवं प्रकृति एक सामान्य पुरुष और स्त्री के हृदय का प्रतिनिधित्व करती हैं।

संवाद

संवादों की अधिकतम सफलता कथानक एवं चरित्र-चित्रण की सफलता पर निर्भर करती है। इन नाटक में भी 'मुक्ति का रहस्य' की तरह संवादों की

सफलता का एक प्रमुख कारण यही है। इसके प्रतिरिक्त यह मिथजी का पीचबी नाटक है। लेखन-शैली में विकास का कारण भी यह प्रीतिता या जाना स्वाभाविक है। इस नाटक में संवाद के बीच सभी गुण बिमकी चर्चा पूर्ववर्ती नाटकों में की जा चुकी है समीक्षित है। संवाद भाषाभिन्नान में समर्थ हैं और नाटकीय गुणों से युक्त हैं। नरेन्द्र के संवाद तीसरे अंक में कहीं-कहीं लम्बे प्रबन्ध हो गए हैं परन्तु उसमें नाटक के बालावरण में गिरसता नहीं आती। संवादों में शैलिकता का प्रभाव के कारण कहीं भी अटिस्तता या बुराहता नहीं है।

संवादों में प्रोडता या जाने पर भी वे संवदा रोपमुक्त नहीं कहे जा सकते। कहीं-कहीं उनमें साहित्यिक गरिमा का प्रभाव सटकता है। यज्जराजमिह को प्रेरित कर उसके रूप को रूप में करने समय यज्जराजमिह और नरेन्द्र का वार्त्तानाप साधारण स्तर का हो गया है।

प्रतिमय की दृष्टि से नाटक सफल होने पर भी इनमें एक प्रभाव सटकता है। नरेन्द्र नाटक के सम्मुख एक घोषी के रूप में आता है। नाटककार न नाटक में घोषी के स्थान पर नरेन्द्र लिखकर नाटक को इनका परिचय दे दिया है, परन्तु प्रेक्षक तो इसे घोषी के रूप में ही समझता रहेगा क्योंकि रूप-रूप में तो उसका रहस्य नाटक के अन्त में ही जाकर लुप्तता है। इसके प्रतिरिक्त नरेन्द्र का परिचय प्रारम्भ में न मिलने पर नाटक प्रेक्षक के लिए बुराह भी अधिक हो जायगा।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मिथजी इस नाटक में कहीं अपने विचार को व्यक्त करने में सफल हुए हैं कहीं नाटक के रूप में भी यह एक सफल दृष्टि है। श्री यमराज या के नाटक की भूमिका में उदाए गए प्रश्नों के अनुसार नाटकों के बारे में हमें अधिकार केवल इन प्रश्नों का पूछने का है— क्या रचिकर है कि नहीं? चरित्र-विकास में कहीं तक सफलता हुई है? पात्रों का वार्त्तानाप मनोरंजक है कि नहीं? किसी दृष्टि में असंभाव्यता तो नहीं घाने पाई? नाटक पढ़ने या पढ़ा देने पर चित्त पर क्या प्रभाव होता है? प्रथम बार प्रश्न उत्तरपथ के हैं और अन्तिम प्रश्न वस्तुपथ के बारे में। त्रैया कि उपर विवेचन से स्पष्ट दिया जा चुका है। नाटक बापों ही पक्षों में बहुत धीरे तक सफल है।

## (ग) समस्या एवं घटना प्रधान नाटक

### (१) सिद्धूर की होली

#### वस्तुपक्ष

इस नाटक से पूर्व बिघड़ी में नाटक के रचना-विधान के लिए दो प्रकार की रीतियों का प्रयोग किया है। एक समस्या-नाटक की रीति जिसके अन्तर्गत 'समस्या' को एक संकट है। इस रीति में कथानक का विधान इस दृष्टि से किया गया है कि पात्रों को समस्या के पक्ष-विपक्ष में तर्कपूर्ण विवेचन के लिए पूर्ण प्रवृत्त रहे। इसी संकट निवारण के माध्यम से वह समस्या के विवेचन द्वारा पाठक की बुद्धि को प्रभावित करते हैं। कथानक का महत्त्व इस रीति में नीच है। दूसरी रीति के अन्तर्गत 'गजबोब' और 'मुक्ति का रहस्य' हैं। इनके कथानक में बौद्धिक संकट-विकास प्रधान नहीं वस्तुतः सम्पूर्ण कथानक के माध्यम से ही विचार की व्यञ्जना की गई। परन्तु इन नाटकों में सिद्धान्त एवं विचार का साक्षर इतना प्रबल है कि कथानक को उसके अनुकूल जानने से कथानक का निजी सौम्यता भूमित हो गया है। ये कथानक घमिलाति से मुक्त होने पर भी रोचक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सफल कथानक नहीं बन पाए। इस प्रकार पूर्व नाटकों की दोनों ही रीतियों में नाटक में रोचकता का जो कि कथानक के स्वाभाविक विकास से उत्पन्न होती है प्रभाव है।

सिद्धूर की होली में नाटककार ने उद्देश्य को व्यञ्जित करने के लिए इन दोनों रीतियों का प्रयोग किया है परन्तु उद्देश्य का प्रतिपादन सम्पूर्ण कथानक से न करके कथानक के अंशों से किया है। और कथानक के स्वतन्त्र अस्तित्व का निर्माण एक मनोवैज्ञानिक एवं रोचक घटना के आधार पर किया है। इस घटना का घटाव है—कर्म-प्रतिफल-न्याय (theory of karma)। ईसापूर्व के अजिंक्य नाटक इसी सिद्धान्त के चरित्र पर स्थित है। बिघड़ी जहाँ अपने पूर्ववर्ती नाटकों में एक-एक रीति को अपनाकर ही कथानक को रोचक नहीं बना सके वहाँ इस नाटक में विभिन्न रीतियों में अपने उद्देश्यों की अभिव्यञ्जना करते हुए भी रोचक कथानक के निर्माण करने में सफल हुए हैं। कथानक एवं उद्देश्य के इस सामंजस्य के कारण ही यह नाटक उनके सामाजिक नाटकों में

सिम्हूर की होती

संबंधित है।

नाटककार के इस नाटक में दो उद्देश्य हैं—एक समस्या-चित्रण दूसरे अपने मिथ्यात्व (बुद्धिबाध) का प्रतिपादन जिसे बहुसंख्य समस्याओं का मूल समझा है। इन उद्देश्यों के लिए नाटककार ने दोनों रीतियों का प्रयोग किया है। प्रथम दृश्य को प्रभावित करने वाली व्यंजना शैली जिसमें घटना चरित्र एवं समस्या को चित्रित मात्र कर दिया जाता है दूसरी बुद्धि को प्रभावित करने वाली तर्क-वितर्क शैली जिसमें समस्या के कारणों परिणामा धारि से मुक्त तक पूर्ण विश्लेषण होता है। नाटककार ने दोनों ही उद्देश्यों के लिए दोनों रीतियों का प्रयोग किया है। घटा नाटक में प्रतिपादित उद्देश्यों का अध्ययन मुख्यतः निम्न बुद्धियों से हो सकता है—

व्यंजना शैली के माध्यम से

(क) नाटक में कुछ ऐसे पात्रों की योजना की गई है जिनके जीवन से नाटककार का मिथ्यात्व (बुद्धिबाध) स्वतः व्यक्त होता है। मनोज्ञांकर और माहिर घसी ऐम ही पात्र हैं।

(ख) कुछ घटनाओं की योजना इस ढंग से की गई है कि उत्तमन के मूल मूल का एकमात्र कारण नाटककार का मिथ्यात्व ही व्यक्त होता है और उस उत्तमन को उत्तमन बाल पात्र भी इसी मिथ्यात्व का प्रतिनिधित्व करते हैं।

(ग) नाटक में कुछ समस्याओं का चित्रण भी कथालोक के विकास के प्रसंग पर स्वतः हो गया है।

तर्क विमर्क शैली के माध्यम से

(क) नाटककार ने अपने मिथ्यात्व का समर्थन बहू-तर्ही बौद्धिक तर्कों द्वारा भी किया है।

(ख) नाटक में तर्क-वितर्क द्वारा भी समस्याओं के कारणों स्वरूपों और परिणामों का विश्लेषण किया गया है। नाटक में एक-दो पात्रों को बुद्धिवादी बना दिया है जो समस्या के तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा पाठक की बुद्धि को समस्या पर विचार करने के लिए प्रवृत्त करते हैं।

कथालोक के माध्यम से—

(क) यह धर्मिक उद्देश्य सम्पूर्ण कथालोक के मूल में निहित है जो पाठक के मन में बिना धारा के एक प्राकृतिक एवं मनोवैज्ञानिक मिथ्यात्व के प्रति निष्ठा को दृढ़ीकृत करता है। इसमें नाटककार का धारा प्रदान न होने के कारण इसका स्वभाव महत्व है। और इसी कारण इस नाटक को समस्या एवं घटना 'प्रधान नाटक' के नाम से एक घनग बर्ण बनाकर रचना पड़ा है।



इन उद्देश्यों का कमजोर विस्तार से विवेचन इस प्रकार है—

(क) जैसा कि 'भूमि का रहस्य' और 'राजयोग' नाटकों के विवेचन में स्पष्ट किया जा चुका है कि मिथजी का जीवन एवं कला विषयक एक निश्चित सिद्धान्त है—बुद्धिवाद। और उसकी व्याख्या भी उनकी अपनी है। इसका प्रतिपादन उन्होंने नाटकों की भूमिकाओं में विस्तार से किया है। वह इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि हमें प्रत्येक समस्या के दृणपक्ष एवं बोधपक्ष दोनों का उद्घाटन निस्संकोच करना चाहिए, इसमें किसी भी प्रकार के सत्य को (मते ही वह कटु हो) छिपाना व्यवस्कर नहीं। इस सत्य को यथावत् दृष्टि से समझने के पश्चात् विवेक के प्रकाश में इसके मार्ग निकालना ही समस्या के स्थायी निराकरण का एकमात्र उपाय है। राजयोग में वे कहते हैं 'छपाई को छिपाया पाप है।' यदि समस्या का समाधान सत्य को छिपाकर धार्य एवं अभ्युत्थान के मुक्ताने में किया जायगा तो वह कटु सत्य मानसिक दृष्टि का रूप धारण कर हृन्त को जगमगाया बिखरे जीवन का विकास रुक जाएगा। वह इस कटु सत्य के उद्घाटन को समाज के लिए हितकारी बताते हुए कहते हैं—“बुद्धिवाद में गुनर-कोटेज कुनीन की व्यवस्था है ही नहीं वह तो जीवन सत्य है। उसका मास महुरा होता है लेकिन धर्म-अर्थ करने के लिए नहीं बल्कि विकास के लिए, हमारी प्रकृष्ट चेतना को जगाकर हमारे भीतर नवीन जीवन और नवीन स्फूर्ति पैदा करने के लिए।”

इसी सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए नाटककार ने दो पात्रों—माहिर मली और मनोजयकर की योजना की है। माहिर मली ने इस वर्ष पूर्व मनोजयकर के पिता की हत्या में योग दिया था। वह इस पाप से चिन्म है। इस पाप को प्रकट करने में उसे फाँसी का भय है, परन्तु राजनीत्यान्त की हाना में इन पाप को पुनः हरा कर दिया और वह विशिष्ट-सा हो गया। उसे पीछान और कुछ दिखाई देने लगे और अन्त में वह इस पाप के रहस्य को प्रकट कर ही अपनी उद्दिष्टता को प्राप्त कर पाता है। वह स्वर्ण कहता है “कह दूँगा। कहकर एक बार फाँसी पड़ जाना रोड की फाँसी से अच्छा है।” पाप के कह देने से उसके चित्त का बोझ छूट गया और वह स्वस्थ हो गया।

मनोजयकर को बतलाया गया था कि उसके पिता ने धारमहत्या की है।

१ राजयोग पृष्ठ ६९

२ भूमि का रहस्य (भूमिका) पृष्ठ सं० १

३ मित्र की सीढ़ी : पृष्ठ ७७

मर्चाई को छिपाए जाने के कारण उसके मन में एक शक्ति हो गई। वह स्वयं स्वीकार करता है। "इसी चिन्ता में मेरा स्वाम्य बिगड़ गया। मानसिक बीमारी हो गई। परावर एत को मैं उन्हें स्वप्न में देखता था और साथ ही उसी स्वप्न की भावना में पड़ा रहता था। पढ़ाई में कभी मेरी लक्ष्मी नहीं समी किसी तरह बिपन्न तैयार कर परीक्षा पास करता था। यही बात अगर पहले माधुम होती। साथ से पाँच-सठ वर्ष पहले तो मेरा जीवन इतना नीरस न होता।" "माधु मेरी धारणा का बोझ उठर गया।" इस बोझ के कारण ही वह कष्टकसा को अपने प्रति धाड़ट न कर सका था क्योंकि उसके पास रजनी काल की मुस्कान का बाहु न था उसकी हँसी की कल्पना और मस्ती न थी प्रत्युत उसके मन में विषाद की भाव जो बस रही थी।"

इन दोनों पात्रों के चित्रण द्वारा कवि व्यञ्जित करता है कि मर्चाई को छिपाता मानव-व्यक्तित्व की प्रगति और विकास में बाधक है और अनुप्य को रोपी बना देता है।

(ग) नाटककार ने समसामर्थों के जलजले पर बुद्धिवादी पात्रों द्वारा समस्या का सफल समाधान करवाया है। नाटककार ने दो पात्रों को बुद्धिवादी प्रवृत्ति बुद्धि के आधार पर स्थिति का विश्लेषण कर उसे चारों ओर से वैलनाम कर उससे समझौता करने का भाव कराया है। मनोरमा पूर्णतः बुद्धिवादी पात्र है और नाटककार के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है। मनोवसुधकर जब प्रेमी के कप में उसके पास जाता है तो वह उसे प्रेम के उत्तर में बताती है कि वह विपदा है इसलिए सांसारिक दृष्टि से उसके साथ प्रेम का कोई स्वल्प नहीं और यदि वह वास्तव में उसे प्रेम करता है तो उस प्रेम का स्वरूप उस प्रकार का हो सकता है जिसमें बाधना और विकार नहीं। वह संसार में एक नया माधुर्य पत्र करना चाहती है।" वह उसे बताती है कि "संसार की समस्याएँ जिनके लिए मानव इतना घोर मर्चा है उससे के समझे पर नहीं मुक्तवाई जा सकती। वे ईसा हैं हैं बुद्धि से और बुद्धि से उनका उत्तर भी मिलना।" "यह एक दृष्टिकोण को लेकर धारणा का एक सोचो" मेरे लिए भी धारों के लिए थी।" और

१. सिन्दूर की होसी, पृष्ठ १२

२. वही, पृष्ठ १२

३. वही, पृष्ठ २०

४. वही, पृष्ठ २१

५. वही, पृष्ठ ४६

६. वही, पृष्ठ ४६

मनोजयंकर यह सब मान जाता है वह बिम्बा के साथ विह्वल रहकर इस बुद्धि बाद के धारणों का प्रचार करना स्वीकार करता है।

इसी धिखा के पश्चात् मनोजयंकर भी बुद्धिवादी बनकर बिम्बा का स्वर में बजाकर धानम्ब का स्वर बजाता है। मुरारीलाल के दुक्की होने पर भी वह बंमुरी बजाता है<sup>१</sup> क्योंकि वह उस समस्या से भिन्न न होकर बुद्धि की दृष्टि से विचार करता है। वह मुरारीलाल के साथ उसकी भोग-वृत्ति और इस हृत्पा पर व्यंग्य भी करता है।<sup>२</sup> वह उसे पूर्ण विश्लेषण द्वारा समझता है कि वह बन्धकता को क्यों घाकूट न कर सका।<sup>३</sup> सारी परिस्थिति को समझा और सत्य को तार-तार करके देखना ही बुद्धिवाद है। इसके बाद वह डाक्टर से भी मानसिक चिकित्सा पर तर्क करता है। वह असत्य को धीरे धीरे स्वीकार करने को तैयार नहीं। तत्पश्चात् मनोरमा के यह स्पष्ट कर देने पर कि तुम्हारा मेरे साथ अविवाहित रहना प्रवृत्ति के प्रतिकूल है और तुम्हारी उस प्रवृत्ति का कारण तुम्हारा मोह या और इस तरह तुम्हारा विकार बना रहेगा। उचित नहीं है कि तुम बन्धकता को ग्रहण कर लो वह बुद्धिवादी होने के कारण स्वीकार कर सता है। स्पष्ट है कि दोनों पात्र बुद्धिवादी हैं।

इन दोनों बुद्धिवादी पात्रों द्वारा लिए गए सभी कार्यों को सफल विफलताकर नाटककार यह सिद्ध करना चाहता है कि क्योंकि बुद्धिवाद के आधार पर किए गए समस्याओं के समाधान सफल होते हैं इसलिए बुद्धिवाद उचित दृष्टिकोण है। मनोजयंकर बन्धकता की चिकित्सा में पूर्ण सफल दिखताया गया है यद्यपि बन्धकता का उसी समय उठकर आना कुछ अस्वाभाविक था भी लगता है। मनोरमा बन्धकता (मुरारीलाल की दुक्की) की समस्या का उचित समाधान मनोजयंकर को केवल समझाकर ही कर देती है। मुरारीलाल इस सारी बात को बोरी से सुनकर मान जाता है और घोषित करता है कि "तुमने (नाटककार की व्यंजना में बुद्धिवाद ने) बहुत कर दिया जिसकी मुझे आशा नहीं थी। वह वर्ष की भाव सायब धर बुझेगी।"<sup>४</sup> इस प्रकार नाटककार ने दोनों बुद्धिवादी पात्रों की प्रत्येक स्थिति पर सफल दिखलाया है। केवल एक स्थान पर मनोजयंकर असफल

१ मित्र की होती, पृ० १४

२ पृ० ११

३ पृ० १५

४ पृ० १०

५ पृ० १०

हुया है वह चन्द्रकमा की सूर पर से जाने के पश्चात् भी बुद्धिबाब के द्वारा उसके हृदय को भीत नहीं सका। उसके लिए भी नाटककार ने ठर्क दे दिया है वह अभी पूरा बुद्धिवादी नहीं है। मनोरमा के सिखाने से समझता है। मनोरमा ने बताया था कि उसे खमा करना पहले तुम यह स्वीकार कर लो कि तुम भी मोड़ में हो और वह भी मोड़ में है। भ तुम उससे घबड़े घोर न वह तुमसे बुरी है।<sup>१</sup> वरन्तु वह इसका पूनतया पासन न कर सका। चन्द्रकमा बताती है "मनोज सब तरह से योग्य है, लेकिन उनके भीतर एक प्रकार का संदेह एक प्रकार का अश्वकार है जो मैं समझ नहीं सकती।" स्पष्ट है कि वह अभी पूर्वतया बुद्धिवादी नहीं बना इसके लिए उसकी मानसिक शक्ति उत्तरदायी है। इस प्रकार वहाँ प्रथम में बुद्धिबाब से उचित पात्रों की असफलता का चित्रण कर सिद्धान्त के निपेधारक रूप का प्रतिपादन किया है वहाँ इसमें बुद्धिवादी पात्रों की सफलताओं का चित्रण कर सिद्धान्त के निपेधारक रूप को पुष्ट किया गया है।

(घ) तीसरे उद्देश्य में केवल वही समस्याओं का विचार किया गया है जिनका चित्रण नाटककार ने व्यञ्जना से किया है। प्रत्यक्षतः बौद्धिक ठर्क द्वारा विशेषित समस्याओं को बाद में दिया जायगा। व्यञ्जना द्वारा विशेषित समस्याएँ यो हैं—कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या और विधवा-समस्या।

कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या—कानून द्वारा सुरक्षा की समस्या को नाटककार ने बड़े विकराल रूप में पाठक के सम्मुख रखा है। पचास हजार रुपये लेकर एक ऐसे मोले-आसे व्यक्ति को हत्या करवा देना जिसका इसके विचार कोई अपराध नहीं कि उसके पिता का बहाना हो गया है और वह एक लोभी वृत्ति वाले त्रमीक्षण का पट्टीदार है। समस्या का एक भयंकर पहलू यह भी है कि वह लड़का व्यामात्रय में भाकर अपनी रक्षा के लिए प्रशासन को उत्तरदायी भी बना गया है। और उसका भाग्य कोई भी अपराध भाड़ लेने के लिए भी प्रमाणित नहीं किया जा सका।<sup>२</sup> इस निर्मम अत्याचार को देखकर पाठक का हृदय इस समस्या की भयंकरता से सुन्न हो उठता है।

विधवा समस्या—नाटककार ने इस समस्या के अन्तर्गत विधवा के केवल

१ सिम्बूर की होली पृ. ७०

२ पृ. १००

३ पृ. १०१

४ पृ. १०२

उसी रूप को चित्रित किया है जबकि वह स्वयं पुनर्विवाह के पक्ष में नहीं। उस का जीवन-निर्वाह पुरष की उदारता वासना से किस प्रकार सुरक्षित रहे? यशोवन्ता वास विधवा है। योवनवास्था में उसके लिए समाज में रहने का कोई स्थान नहीं। चाभीस वर्ष के मुरारीलाल की कृपुष्टि से भी वह सुरक्षित नहीं। उसने जीवन यापन के लिए कला को आधार बनाया वह अशक्यता को बिना-कला सिखाने लगी। परन्तु कला भी उसके वैयध्य की रक्षा में असमर्थ है। उसी के घरों में 'केवल अपने को बूझ जाने के लिए मैंने सब तक रंग और कलम से सिलवाड़ किया है' ललित में देखती हूँ कि मेरा हृदय बनी तुम्हा का रहा है अपने निर्बीज चित्र के लिए मैं सबीब जीवन की कामना करती रही उसके साथ मुझे एक प्रकार का सुख और सहवास मिला है लेकिन मुझे इसका घबि कार कहीं था? मैं अपनी आत्मा बेचती रही हूँ जो मैं पहले ही बेच चुकी थी और बुरा भूख भी न मिला था।<sup>१</sup> इसलिए उसने रंग और कूची फेंककर अल्पिकेस बाकर माता सेने का विचार किया है। इस प्रकार वह समस्या उसी विषय की है जो अपने वैयध्य को धावर्ध रूप में निराना चाहती है।

(घ) इस रम्य के सम्भवत उद्देश्य के धर्मिष्यजन के लिए नाटककार ने तर्क चितर्क के माध्यम को अपनाया है। वस्तुतः बुद्धि को प्रभावित करने वाला वह तर्क-चितर्क ही समस्या-नाटक का प्राण है। इस तर्क-चितर्क का प्रयोग नाटककार ने दो दृष्टियों से किया है—प्रथम सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिए, द्वितीय समस्या के निरचन के लिए। सिद्धान्त का प्रतिपादन नाटककार ने समस्या-विवेचन के माध्यम से तर्कों से किया है परन्तु उनका महत्त्व समस्या के विवेचन के आधीन ही माना जाना चाहिए। ऐसे तर्क सभी समस्याओं के विवेचन में मिल जाते हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

“संसार की समस्याएँ जिनके लिए मात्रकल इतना योग्य मन्त्रा है सत्य के बसों पर नहीं गुनगार्य जा सकतीं ये पर्वत हूँ हैं बुद्धि से और समझ उत्तर भी बुद्धि से ही मिलेगा।<sup>२</sup>”

(ङ) नाटककार ने प्रमुख रूप से तर्क-चितर्कपूर्ण विवेचन द्वारा समस्याओं के विरूपण को ही उद्देश्य-रूप में ग्रहण किया है इसलिए उसने मुख्यतः पर नाटक के नाम के साथ समस्या-नाटक मिला है।

जैसा कि पहले भी विवेचन किया गया है नाटक में जिन पात्रों की योजना

१. तिमूर का होली पृ. १६

२. तिमूर की हत्या पृ. ४४

की गई है वे ही समस्याओं की भीमांश करते हैं। वे जहाँ-वहाँ उभरते देखते हैं वही ठरक द्वारा उसका विवेचन करते हैं जिससे नाटक में कई समस्याओं का समावेश हो गया है। सारे नाटक को एक मूल समस्या पर केन्द्रित करना अनुचित है। नाटककार ने तीन समस्याओं पर बौद्धिक ठरक-वितर्क द्वारा प्रकाश डाला है।

बिरलतन नारीत्व की समस्या—प्रथम एक मुख्य समस्या है बिरलतन नारीत्व की समस्या अर्थात् नारी की प्रकृति का सच्चा स्वरूप स्वच्छन्द प्रेम—जिसमें नारी-स्वातन्त्र्य की दुहाई भी जाती है अथवा मर्यादित विवाह में जिसमें सामाजिक मर्यादाओं के अनुकूल नारी को अपने मन की अवस्था समाज की दृष्टि के अनुकूल समर्पण करना पड़ता है। यद्यपि यह समस्या एक वास्तव समस्या है परन्तु भारतीय सामाजिक जीवन पर पामचाय जीवन-दर्शन के बहुत हुए प्रभाव के कारण इसका विवेचन सामयिक यहूत ही अधिक रहता है।

समस्या के विवेचन एवं विवेचन की सफ़लता समस्या के पक्ष एवं विपक्ष में दिए जाने वाले ठरकों की यहनता पर ध्यात होती है। साधारण परिस्थिति में इतना गहरा विवेचन नाटक के लिए असामाजिक होता और नाटक बाह-विवाद माफ़ी का प्रतिरूप बन जाता। इसलिए नाटककार ने गहरा विवेचन का अवकाश निकासने के लिए तथा स्वाभाविकता को स्थिर रखने के लिए दो ऐसे असामान्य पात्रों की योजना की है जो बा विरोधी आदर्शों की सीमाओं को स्पष्ट करते हैं। मनोरमा बालविधवा है वह स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को वैयक्तिक अनुभूति की अनुपस्थिति में भी प्रिय की कल्पना कर सामाजिक आदर्शों के अनुकूल निर्वाह करती है। वह अपने मन की संघर्ष द्वारा सामाजिक मर्यादाओं के मार्ग पर चलती है। दूसरी ओर अश्वमेधा सामाजिक मर्यादाओं की अवहेलना कर अपने मन की अनुभूति एवं परितोष को ही प्राथमिकता देती है। एक ओर सामाजिक मर्यादा (कड़ि) की पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर वैयक्तिक परितोष की। इसी को नाटककार ने अश्वमेधा के पात्रों में इस प्रकार स्पष्ट किया है—“तुम्हारी सबकुछ पहले सामाजिक और फिर मानसिक हुई यही सबकुछी प्रारम्भ में ही मानसिक हो गई।” इस प्रकार दो सीमाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रों द्वारा नाटककार ने ऐसी परिस्थिति का संयोजन किया है जिसमें समस्या का गहराई से विचार होने पर भी नाटकत्व की हानि नहीं हुई।

एक समस्या के विवेचन में नाटककार ने समस्या के मगमग प्रत्येक पहलू

को सनट-सनटकर देखा है। जहाँ तक प्रेम के भीतर प्रकृतिगत सचाई है वह स्वीकार करता है प्रेम करना विधेयत स्त्री के लिए कभी बुराई नहीं स्त्री-जाति की स्तुति केवल इसलिए होती है कि वह प्रेम करती है प्रेम के लिए ही उसका जन्म होता है स्त्री चरित्र की सबसे बड़ी विभूति उसका सबसे बड़ा उत्पन्न प्रेम माना गया है। "प्रेम बक्रीस से राय लेकर

जब से अधिकार-पत्र लेकर तो किया नहीं जाता जो बात स्वतः स्वभाव है प्रकृति है वह तो चरित्र का गुण है अवगुण नहीं।" परन्तु इस प्रेम में सामाजिक मर्यादों की अवहेलना कर केवल मनस्सुख के पापहृ से संयम को छोड़ देना ही समस्या धर्मात् बुद्ध का उद्घाटक है और मन को इस प्रकार जहाँ-तहाँ रूप के लोभ में लीकने देना मानसिक व्यभिचार है 'जो धार्मिक व्यभिचार से भी अधिक भयंकर है।" प्रश्न यह है कि चिरन्तन नारीत्व के उदय के नाम पर नारी-स्वातन्त्र्य के पक्षपाती चिरन्तन पशु-वृत्ति की ओर तो नहीं बढ़ते जाते ? हम समस्या का विस्तार से विस्लेषण करते हुए मिथजी स्वच्छन्द प्रेम को रूप का लोभ सिद्ध करते हुए मनोरमा के चरित्रों में एक देते हैं 'बैसी हँसी बड़ी मुस्कराहट चाँद की सुन्दरता और उसका विकास 'माँकों की बिजली और बालों का उन्माद उस कोटि का इतने बड़े संसार में दूधप न होना ? और तुम्हारी दानधीन प्रकृति बहाँ भी न उलझ जायगी।" इसके प्रतिरिक्त स्वच्छन्द प्रेम धर्मात् लोभ की पार्थिव वृत्ति को धार्मिक-विहीन सिद्ध करते हुए मनोरमा तर्क देती है 'वह स्वतन्त्र स्त्रीत्व के नाम पर कल्पना का स्वर्ग भन ही दिखा दे और अराजकता की तरह सम्भव है कुछ समय के लिए व्यवस्था भी मिटा दे परन्तु यह स्वतः व्यवस्था नहीं हो सकता।"

इस प्रकार रूप के लोभ की वृत्ति का जहाँ तर्कपूव अन्वय किया गया है वहाँ प्रेम के वास्तविक स्वरूप विवाह के पक्ष में भी सुन्दर तर्क उपस्थित किए गए हैं। नाटककार का कथन है कि विवाह वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें ब्रह्मजीव वेद-मन्त्र धार्मिक के सामाजिक संस्कारों द्वारा प्रेम में से सन्देश के उद्गमन की योजना है जिससे पारी-हृदय के प्रकृत विभूति—प्रेम में बहिरोप उत्पन्न होने की सम्भावना ही न रहे। इस सामाजिक व्यवस्था के कारण भ्रिजमने

१ मिथूर का हा० १, १० ५३

२ वही १० ५३

३ वही, १ ५३

४ वही १० ५३

५ वही, १० ५३

का प्रभाव कम होता है अतः प्रेम अधिक चरिष्ठ एवं पुष्ट होता है।

समस्या के विवेचन में नाटककार ने दोनों पक्षों को तटस्थ भाव से प्रस्तुत किया है और तर्क भी यहूएई किये हुए हैं अतः इस समस्या के विवेचन में नाटककार की सफलता को स्वीकार करना अनिवार्य न होगा।

विधवा विवाह-समस्या—दूसरी समस्या जिसका तर्क चिंतनपूर्ण विवेचन किया गया है वह है विधवा विवाह की समस्या। इसका विवेचन मनोरमाकर और मनोरमा के चर्चासाल में हुआ है। मनोरमा वाकविषया है परन्तु वह विधवा-विवाह के पक्ष में बोल नहीं देती। वह विधवा-विवाह को नारी की प्रकृति के प्रतिष्ठित सम्पत्ती है क्योंकि इससे प्रेम में एकक्यता के स्थान पर सन्नेह के प्रतिष्ठित की स्वीकृति है। विधवा-विवाह को स्वीकार करने का अर्थ है विवाह में प्रेम का आधार मानसिक नहीं प्रत्युत शारीरिक भोग-वासना की सृष्टि मात्र है। विधवा-विवाह से विवाह में मानसिक एकक्यता का खण्डन हो जाने से सन्नेहवाद उत्पन्न होगा जो अपने साथ तलाक़ आदि अन्य बुराइयों को भी प्रभाव देगा।

नाटककार ने समस्या के विवेचनार्थक एवं नियन्त्रात्मक दोनों पक्षों को तर्क द्वारा पुष्ट किया है। उसने एक ओर विधवा-विवाह से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर संकेत किया है दूसरी ओर विधवा-विवाह के न होने पर समाज के सम्मुख नारी के भावस की प्रतिष्ठा होनी इसे भी इंगित किया है। मनोरमा इसी दुवारे पक्ष की विवेचना करती हुई कहती है 'तुम जीवन का विधेयता स्त्री के जीवन का दुःख पहेलू भी समझते हो देखने हो उसके जीवन संकल्प है साबना है त्याग और उपस्था है 'यही विधवा का आदर्श है और यह भावस तुम्हारे लिए औरव की बीज है।'<sup>१</sup>

वास्तव में इस समस्या का विवेचन केवल भावस एवं सिद्धांत के स्तर पर हुआ है व्यावहारिक पक्ष को नाटककार ने उठाया ही नहीं है। नारी में केवल प्रेम ही उत्पन्न नहीं स्वाभिमानपूर्ण जीवन की चाह भी उत्पन्न है। परन्तु फिर भी इस आदर्श पक्ष की तर्कपुष्ट विवेचन द्वारा स्पष्ट कर भावस को निश्चित एवं सुरक्षित कर देना कम महत्त्व की वस्तु नहीं। जीवन की प्रगति में भावस का एक विशेष महत्त्व है। वह जीवन की व्यावहारिक समस्याओं को मुलमाने में एक दृष्टिकोण प्रदान करता है। अतः नाटककार का यह प्रयत्न केवल भावस पक्ष को लिए होने पर भी स्तुत्य ही कहा जायगा।



रोगोपचार-समस्या—तीसरी समस्या नाटककार ने रोग के उपचार की उठवाई है। किसी भी प्रकार का रोग होने पर बिना कारणों की जाँच के डाक्टर को बुला लेना बेवकूफ नहीं क्योंकि मानसिक विकिरण प्रणाली के ज्ञान के बिना पारंपरिक विकिरण प्रणाली ध्वंसी है और कई बार मानसिक रोग और पारंपरिक रोग के बाह्य उपसंज्ञा समान होने के कारण डाक्टर मानसिक रोग को पारंपरिक रोग समझकर रोगी के भीरोग शरीर में दवा के माध्यम से रोग ही भर देते हैं। आधुनिक ऐसोरीषी के डाक्टर बेवकूफ पारंपरिक विकिरण के ज्ञान से परिचित हैं इसलिये वे रोग के निदान और उपचार में धन्य हैं क्योंकि 'अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विषमता के कारण होती हैं।' इस विषमता से नाटक का ज्ञानवर्धन होने के साथ उसकी विज्ञान के प्रति निष्ठा को भी ठेस पहुँचती है। विज्ञान की सीमाओं को देखकर वह इसके नवीन आविष्कारों पर, जो अपनी अकारणता के कारण बलात् ही उसके अस्तित्व पर अधिकार करते जा रहे हैं पुनर्विचार के लिए प्रवृत्त होता है।

नाटककार ने रोग के निदान का दूसरा पक्ष भी प्रस्तुत किया है। रोग के मानसिक कारणों का अनुसंधान करना और उनकी प्रकृति से प्रतिकूलता समाप्त कर पुनः प्रकृति के निकट आना। मनोवैज्ञानिक कहते हैं प्रकृति के रास्ते पर सीट आना भीरोग होना दोनों बराबर हैं।<sup>१</sup>

(ब) नाटककार ने इतना बहुमुखी उद्देश्यों और उनकी अभिव्यक्ति के लिए इतनी व्यापक और सुष्ट सामग्री का उपयोग करत हुए भी कथानक के निजी अस्तित्व को बिना अहित नहीं होने दिया यही इस नाटक की सफलता का रहस्य है।

नाटक के कथानक का मूल आधार है—कर्म प्रतिक्रिया स्याम (theory of psychoanalysis) अर्थात् यदि कोई कर्म किया जाय तो बिपत्ती की ओर से छूट जाने पर भी उस कर्म के प्रतिक्रिया से अनुपम मुक्त नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त को नाटक के अन्त में नाटककार मनोवैज्ञानिक के शब्दों द्वारा स्पष्ट करता है 'प्रतिफल मिलता है न? मेरा और रानीकान्त का सपनाच भी तो' 'हम लोगों ने इसके लिए कोई प्रयास नहीं किया। संबंधित वय जो चाहते हैं क्या जानते हैं हमें हममें से किसी का दोष नहीं।'<sup>२</sup>

१ ठिहर की रोग, पृ. ४०

२ वय पृ. ४३

३ वय पृ. ४३

गाटक के कथानक का मायक है मुरारीलाल। सारी कथा इसी को केन्द्र मानकर विकसित होती है। दोष पात्र समझाघोष का उद्घाटन बख्श बिरमपन करते हैं परन्तु सम्पूर्ण कथानक को केन्द्रित नहीं कर सके।

मुरारीलाल ने इस रूप गूढ़ लोभ की पापवृत्ति के बलीभूत हो एक पाप किया। दस हजार रुपये के लिए अपने मित्र की हत्या कर दी। इसमें वह अपनी सतर्कता के कारण समाज और कानून दोनों के फन्दे से बच गया। लेकिन कर्म-प्रतिफल-न्याय के कारण उसे इसका फल भोगना पड़ा। उसका अपने मन में स्थानि हुई। धारयणुला ने अपिभूत हो उसने प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। उसने मित्र के लड़के को उन्मत्त पिला बिलकाकर दामाद बनाया स्वीकार किया। उसका विचार था "कोई भी मुराई प्रायश्चित्त से भिन्न आती है।" परन्तु कर्मों का प्रतिफल इतन से समाप्त नहीं हुआ। उसका फल उसकी लड़की लड़कना को भी भोगना पड़ा। उसने ममोदर्यकर ने बार-बार प्रेम के बहने में रसता पाई। वह स्वयं कहती है "इनके बाप की हत्या आपन हुई और उसका बदला ये मैने रहे मुझे बार-बार ठोकर मार कर।"

इसके पश्चात् इस सारे काण्ड की जो बार और भावृत्ति होती है मुरारीलाल की मौत की वृत्ति पुनः प्रबल हुई और उसने पचास हजार रुपये के बदले रत्नजीवागत की हत्या का व्यवसाय प्रदान किया। हत्या के इस अपराध में भी मृतक ने उससे कोई बदला नहीं लिया। कानून के पत्र से भी वह मुक्त था परन्तु ईश्वरीय विधान ने उनका संवित कर्मों ने उसमें इस पचास हजार का बदला चुका लिया। उसकी मान मर्यादा लपट हो गई, क्योंकि उसकी लड़की ने प्रसवताम में जाकर एक मारे गए लड़के के तलवे सहसाए। वह स्वयं स्वीकार करता है "दुनिया जान गई कि मरी लड़की प्रसवताम में एक मारे हुए लड़के की गहानुभूति में बड़ी तक लिपि गई थी मैं कल किस मुह से कचहरी आऊँगा।" इसका प्रतिफल और भी घातक मिला। उसकी लड़की न दीवता बरबा में ही बंधव्य का जामा पहन लिया और अब वह उसके घर में रहना भी स्वीकार नहीं करती। ममोदर्यकर जिसे वह लड़कों की तरह पाल रहा था वह भी उध छोड़ गया। और मुरारीलाल पुनर्जन्म बसहाय्य व्यवसाय में दोष रह जाता है। उसे अपने कर्मों का प्रतिफल प्रतिपत्ती की धार स नहीं कर्म-न्याय से ही

मिसा। इस सिंहास का आख्यान ही मूल कथानक का कसेबरा है, और यही इसके सौन्दर्य का आधार है।

पात्र

नाटक में आए हुए प्रमुख पात्र भी पाठक के हृदय में अपना अधुना प्रभाव छोड़ जात है, कई बार तो कथानक मूल जाता है परन्तु पात्र और उनकी प्रकृति अपना गहरा प्रभाव बनाए रखते हैं। इसीलिए पात्रों की विवेचना भी वस्तु-पद के अन्तर्गत करना समीचीन है।

नाटक में प्रमुख रूप से चार चरित्र हैं—मनोरमा अम्बरकला मनोजसकर और मुत्तरीलाल। इनमें से मुरारीलाल को छोड़ देप हीनों चरित्र असामान्य है और व्यक्ति-वैशिष्ट्य के अन्तर्गत आते हैं। मनोरमा कामविधवा है परन्तु भारतीय आदर्शों की आख्याता है, बड़ा सुन्दर लड़कें कर सकती है और शौचिकता में विश्वास रखती है। इस चरित्र की योजना नाटककार ने केवल अपने उद्देश्य की दृष्टि से ही की है, यह चरित्र आदर्श की पराकाष्ठा है।

मनोजसकर अपने पिता की हत्या का रहस्य न जान सकने के कारण एक विशेष प्रकार की कुण्ठा से पीड़ित है जिससे उसके जीवन का विकास रुक जाता है वह पढ़ नहीं सकता उसे मानसिक रोग हो जाता है पुनः की उत्थिपति तक आती है। परन्तु बाद में वह मनोरमा से शौचिकता की शिक्षा पाकर जीवन को समुचित कर लेता है अम्बरकला के प्रेम को पुनः प्राप्त करना चाहता है परन्तु मानसिक रोग के प्रभाव के कारण सफल नहीं हो पाता। स्पष्ट है कि वह भरा मान्य चरित्र है।

अम्बरकला का चरित्र भी व्यक्ति-वैशिष्ट्य के अन्तर्गत आता है। वह रानी कात्त के रूप पर मोहित होकर साप्ताहिक मर्यादाओं की पूर्णतया अवहेलना कर देती है। वह हृदय से आत्यधिक प्रभावित है, और मानसिक अनुभूति की ही विचारों में प्राथमिकता देती है।

हीनों चरित्र व्यक्ति-वैशिष्ट्य के अन्तर्गत होने के कारण चरित्र के रूप में उन जीवन के अधिक निकट नहीं परन्तु इनकी उचितता जो कि इनके चरित्र का आख्यान करती है, उन जीवन के अपेक्षाकृत अधिक निकट है। मनोरमा और अम्बरकला जमा विवेक और हृदय का संस्कार और भावना का समाज और व्यक्ति का अथवा प्राचीन और नवीन का प्रतिनिधित्व करती हैं और इस प्रकार का हम प्रत्येक हृदय में होता है। इन दोनों के व्यक्तित्व के माध्यम से यह हमें कुछ अधिक सुसंरित करके स्पष्ट किया गया है।

मुत्तरीलाल का चरित्र वर्ग-प्रतिनिधि चरित्र है उसमें अष्ट वर्ग के वैशिष्ट्य

## हिन्दू की हाली

के सभी व्यवहारा विद्यमान हैं। वह अपने स्वार्थ के लिए, लोभ-भ्रष्टि के घापीन होकर न्याय का यमा घोट देता है। लोभ की भाँति उसकी काम-मावना भी उसे अपने घापीन कर कुर्म करने के लिए प्ररित करती है। माहिर घसी भयवन्तसिंह घोर हलन्धरसिंह भी धर्म के लिए धर्म करने में नहीं चूकते। इन चारों चरित्रों के द्वारा नाटककार समाज के उस सम्प्राप्त धर्म के चरित्रों के चरित्र को घनाकरण करने में सफल हुआ है जो समाज में सम्य सिद्धि एवं सुसंस्कृत बड़े जाते हैं।

बन्धुपल में नाटककार के जेथों की बहुमुखी चर्चा के पश्चात् भी नाटक में घाए हुए स्फुट एवं तीव्र धर्मों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। उनका अपना स्वतन्त्र महत्त्व है। सम्पूर्ण नाटक में इनकी पर्याप्त संख्या है। उदाहरण के लिए दो तीन धर्म दिए जाते हैं—

“पुरष धर्म के लोभ होते हैं—विधेय” त्रिधर्मों के सम्बन्ध में मृत्युधम्या पर भी मुन्बर रोज़ी इनके लिए सबसे बड़ा लोभ हा जाती है।”  
 “मावकल का कानून हो ऐसा है। इसमें सदा नमको नहीं बी जाती जो कि अपराध करता है सदा तो केवल उसको होती है जो अपराध छिपाना चाहता है।”

“मह लमा तुम नहीं मीय रही हो। तुमको जो मीने बी० ए० तक घयेजी जा बी है तुम्हारी बड़ी पड़ाई लमा मीय रही है। जाघो मीनर मावकल की गिला में घखों का बिलबाक घूब बिलबाया जाता है।”

## निष्कर्ष

### कथानक विम्यास

जैसा कि बन्धुपल के विवेचन में सिद्ध किया गया है मूल कथा मुरारीलाल को नेत्र मावकर की बिकसित हुई है। मुरारीलाल न एक पाप किया है और उसका उसे प्रतिफल मिलता है। इस कथानक का विम्यास संस्कृत नाट्यशास्त्र की पद्धति पर नहीं धीका जा सकता है क्योंकि इसमें नायक के सम्मुख जो धर्म नहीं। इसका विम्यास तो पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसर हुआ है जिस

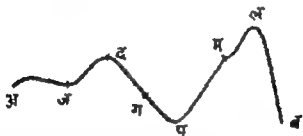
१ हिन्दू की हाली, १० ४१

२ वही १० ४१

३ वही, १ १४

प्रारम्भ से अन्त तक दृग्गन्ध विद्यमान रहता है और कथा के विकास से साथ इसकी तीव्रता भी बढ़ती जाती है कभी एक पक्ष सफल होता दिखाई देता है तो कभी दूसरा । यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि मुरारीलाल में यक्षि वा हत्याएँ करवाई हैं परन्तु मनोजयंकर के पिता की हत्या का रहस्य अन्त में खुलता है इसलिये कथानक के विन्यास-क्रम की दृष्टि से केवल रमणीकान्त की हत्या का कृत ही सम्मुख आता है । अतः उनको ही प्रमुख कृत मानना चाहिए ।

कथानक का विन्यास रेखाओं के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—



प्रथम अंक में मुरारीलाल द्वारा बस ह्तार रुपये स्वीकार करके श्रमा के लिये अवसर प्रदान करने तक की स्थिति कथोत्पात (Exposition) है । वह रेखाचित्र में आरंभ की स्थिति है । यह उदका कर्म है ।

इसके द्वारा उसे बड़ी सुनमता है बस ह्तार राप्ते मिल गए और बामीत ह्तार का मिलने का आश्वासन मिला । मुरारीलाल की दृष्टि से यह आरंभ की स्थिति है अतः रेखाचित्र में यह स्थिति 'अ' है, 'ग' बिन्दु लाने का होने के कारण ऊपर है । इसके पश्चात् अग्रकथा उस भारे गए लड़के पर आतंक हो गई है वह पुनः हानि हुई अतः रेखा नीचे की ओर घूमती है यह स्थिति 'प' है । यही प्रथम अंक समाप्त होता है । यहाँ तक आकर उमज्ज्वल स्पष्ट हो जाती है ।

द्वितीय अंक में अग्रकथा की अस्वस्थता के कारण मुरारीलाल के पाप की प्रतिक्रिया स्पष्ट प्रतिकलित होती दिखाई देती है । पाठक को लगता है कि पाप मुरारीलाल को से बुरा । यह स्थिति 'प' बिन्दु की है । आकर और मनोजयंकर के आर्तनाप में अग्रकथा की अस्वस्थता का रूप अग्रकथा प्रतीत होता है ।

इसके पश्चात् पुनः कथानक में मोड़ आता है । अग्रकथा स्वस्थ हो जाती है और मनोजयंकर तथा अग्रकथा पुनः भारी जीवन के लिये समझौता करने

क सिप मेर पर बस देते हैं। सारी समस्या सुलभ जाती है। मुरारीनाथ का पच प्रबल हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका पाप उसे पच गया है वह स्थिति य बिन्दु की है।

इस पाप को पचा नेन पर वह पुन पाप करता है। वह पानीस हजार घोर स्वीकार कर लेता है। यह उसकी दृष्टि से साभ है। यत यह बिन्दु न की स्थिति है। यही दूसरा धक समाप्त होता है।

इसके उपरान्त तीसरे धक में उलझन मन्मीर रूप धारण कर लेती है घोर चन्द्रकला मारे गए मङ्क के हाथों सिन्दूर सपनाकर बबल्य स्वीकार कर लेती है। मुचरीनाथ की मात-मर्त्यादा समाप्त हो जाती है क्योंकि अस्तित्व में सभी इस बटना को जान जाते हैं। इसके घटितरिक्त चन्द्रकला धब इसके पास रहना भी स्वीकार नहीं करती। यह पाप का प्रतिक्रम है जिसके कारण रेखा-बिन्दु पुन न पच पा जाता है। इस प्रकार नाटक पृथक्का एक नासदी का रूप धारण कर लेता है।

इस विन्यास द्वारा स्पष्ट है कि नाटक में केवल एक मोड़ है जहाँ कथानक मजबूती एवं असफलता की सीमाओं को स्पष्ट करता है। इसलिए यह स्वीकार करना पड़ेगा कि नाटककार ने इसे तीन धकों में विभाजित कर क्या मक के साथ उचित सामञ्जस्य स्थापित किया है।

इस मूल वृत्त के घटितरिक्त नाटककार ने एक अन्य वृत्त भी सहायक-रूप में चित्रित किया है—मनोजगंकर घोर चन्द्रकला क सम्बन्ध को लेकर। इस वृत्त का विन्यास भी पारंपार्य नाट्यशास्त्र के विधान के अनुकूल है घोर इनका भी सामञ्जस्य तीनों धकों में सुन्दर ढंग से हुमा है।

मनोजगंकर घोर चन्द्रकला भाभी पति-पत्नी क रूप में एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। धारम्य में दोनों एक-दूसरे की बिन्ता करते हैं यह स्थिति का परिचय प्रथमा कहा जाता है। इसके पश्चात् मुरारीनाथ घोर चन्द्रकला के मातृनाथ में इसकी घिबिलता का आभास हा जाता है घोर प्रथम धक के अन्त में चन्द्रकला रजनीकान्त पर धाकू हो जाती है। यहाँ उलझन धारम्य होती है। दूसरे धक के धारम्य में एक-दूसरे से दूर हो जाते हैं क्योंकि चन्द्रकला रजनीकान्त के मोह में अस्वस्थ हो गई है। यह द्वन्द्व की एक सीमा है। परन्तु पुन स्वस्थ हो वह दोनों परस्पर समझीते का विचार करते हैं जिससे नवानक पुनछ छोर छू जाता है। यहाँ दूसरा धक समाप्त होता है घोर तीसरे धक में पुन दोनों एक दूसरे से संध्या भिन्न हो जाते हैं यह नासदी की स्थिति है। इस प्रकार इस कथा का रेखाचित्र भी मूल कथा के समानात्म्य ही बसेमा।

इस प्रमुख और सहायक कृत के प्रतिरिक्त नाटककार ने अन्य कई कृतों का उपयोग भी कथानक के विकास के लिए किया है जैसे रत्ननीकान्त और मयबन्तसिंह का कृत रत्ननीकान्त और हरमन्वर्गसिंह का कृत मुघलीमान द्वारा मनोज्ञचक्र के पिता की हत्या का कृत और मनोरमा का कृत । ये सब कृत संस्कृत नाट्यशास्त्र की पारिभाषिक शब्दावली में 'प्रकरी' कहे जा सकते हैं । इनका कथा की गति देने से भिन्न अपना कोई उत्सव नहीं ।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि नाटककार ने मूल कथानक के प्रतिरिक्त पाँच अन्य कृतों का उपयोग किया है । वस्तुतः इन सब कृतों का सामंजस्य करने में नाटककार सफल हुआ है । नाटक इतना सम्बद्ध है कि कहीं भी छिपितता का आभास नहीं होता । किसी भी प्रसंग का बौद्धिक तर्क बितर्क होने के बावजूद मूल कथानक से बिच्छेद नहीं किया जा सकता । यद्यपि इस नाटक के कथानक को बीना कथानक न कहकर सुवटित (Organic) कथानक ही कहा जाएगा जो कि नाटक का एक प्रमुख गुण होता है ।

नाटक के कथानक में कथा की गति में तीव्रता होना नाटक के लिए आवश्यक गुण है । इसकी यति की तुलना उस पर्वतीय निर्झर से की जाती है जो झूट गति से निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है । इस तीव्रता का विचार दो दृष्टियों से किया जाता है—एक कार्य में तीव्रता बूझते, कथानक के बाह्य-संगठन में तीव्रता । जहाँ तक कार्य का सम्बन्ध है सिन्धूर की होली की कथा झूट गति से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है । छिन्नी घटनाएँ एक ही दिन में घटित हो जाती हैं और अन्त में फल की प्राप्ति हो जाती है । बाह्य-संगठन में जहाँ तक पूर्ण संवाद है वहाँ गति में कुछ स्थिरता अवश्य पायी है परन्तु वे नाटक की घटनाओं के अस्वाभाविक प्रतीत हुए जाने लोगों को स्वाभाविक रूप प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं । इन सबों के बिना कथानक में अस्वाभाविकता या जाती । इसके अनिश्चित कार्य की जो कथानक का वास्तविक रूप है, यदि इतनी तेज है कि बाह्य-संगठन में जाने वाली निश्चित स्थिरता विशेष प्रभाव नहीं डालती ।

कथानक में मुख्य और दुस्य की योजना ही कथानक की सफलता का रहस्य है । संस्कृत नाटकों में इसका विचार रस की दृष्टि से होता था परन्तु पाश्चात्य नाटकों में इसका आधार नाटकीय स्थिति—इन्द्रमय स्थिति की योजना में है । सिन्धूर की होली का कथानक-विधान पूर्णतः पाश्चात्य के प्रभावित है यद्यपि इसमें इन्द्रमय स्थिति की अनुकूलता की ओर भी ध्यान रखा गया है । प्रथम चक्र में विरक्त और हत्या ही इन्द्र का आधार है दोष इन्द्रमय स्थितियों

बीसे मनोजशकर-अन्द्रकला-सम्बन्ध, मनोजशकर के पिता सम्बन्धी रहस्य का परिचय मान कराया गया है। दूसरे धंक में मनोजशकर और मनोरमा के मध्य प्रेम पर दृष्ट है और अन्द्रकला के राम के उपचार पर तीव्र दृष्ट है। तीसरे धंक में अन्द्रकला और मनोरमा के मध्य घाटनों का तीव्र दृष्ट है। इन साह-उद्घों के साथ पाठों के प्रात्यरिक प्रस्तुति का भी मजबूत विश्वास हुआ है।

कथा के मुख्य भाग का संकेत भी उपयुक्त पाठों को स्वाभाविक रूप से कथ पर लाकर कराया गया है जिससे कथा का प्रेम भी वहीं वहीं टूटता और न ही कथा में वही इस बात का आभास होता है कि यह बात नाटक में प्रथम धंक से केवल कथा कोटन के लिए कही गई है। मिश्रण के पूरे नाटकों में यह विशयता नहीं है।

नाटक में कथाविन्यास की योजना इस प्रकार होनी चाहिए जिससे उसमें घाटोपांत कीतुहल का निर्वाह हो सके ताकि पाठक की रोचकता बनी रहे। नवानक-वैचित्र्य का आशय मने बात बताना-प्रधान कथानकों में यह विवेचना स्वाभाविक रूप से होती है। सिन्धूर की होली में कथानक-वैचित्र्य होने के कारण कीतुहल की स्थिति विविध है। मनोजशकर के चरित्र के दृष्ट के कारण इस कीतुहल में और भी वृद्धि हुई है। प्रथम धंक में मन्त्री घटनाओं एवं चरित्रों का परिचय ही उत्प्रेरणा उत्पन्न करने वाला दिया गया है। दूसरे धंक में उत्प्रेरणा और अधिक बढ़ जाती है और सारी उत्प्रेरणा का अन्त जानने को पाठक को बतला दिया है। अन्तिम धंक में इस उत्प्रेरणा को अन्त भी बढ़ी बुधनता से किया गया है। मनोजशकर के चरित्र में कुछ रहस्य है इस कीतुहल को आसक्त रखने के लिए मुरारीनाम जब दान करता है उद्भिन्न हो जाते हैं। माहिर प्रती वह बात करते हैं उत्प्रेरणा बढ़ाते हैं और अन्तिम धंक में माहिर प्रती की उद्भिन्नता में यह घोषणा कि दान प्रत्यय की बात है नाटककार द्वारा कीतुहलबन्धक वातावरण बनाए रखने में सफल होता है।

जमा कि इस नाटक की रिया के निर्माण में स्पष्ट किया जा चुका है यह नाटक मद्रास एक घटना-प्रधान है। घटना की दृष्टि से कथानक का विश्व बन दिया जा चुका है। उत्प्रेरणा की दृष्टि से भी विश्व बन जाता अन्तिम है। इस नाटक में समस्याएँ, जिनका बौद्धिक विवेचन नाटककार को अर्पित है, तीन हैं—विभक्तन मारील विभक्तन-विवाह और रोचकता।

कथानक-नाटक के कथानक में नाटककार को दो बातें धर्मोद्घाटी हैं— प्रथम समस्या के विवेचन में बौद्धिक तर्क-विचार के लिए आवश्यक प्रदान करना द्वितीय उसे बाध-विवाह मोट्टी का रूप में बन जाता है। इन दोनों के सम्बन्ध में



नाटक की सफलता निहित है। इस नाटक में समस्या के विवेचन के लिए नाटककार ने सम्पूर्ण कथानक का साधन नहीं लिया। उसने विशिष्ट पात्रों तथा घसापात्रों घटनाओं के स्वाभाविक विषय द्वारा ऐसी स्थितियों की योजना की है जिनमें बहुत तथा गम्भीर तर्क विकसित होने पर भी समीक्षा एवं स्वाभाविकता विद्यमान रहती है। नाटक में इस प्रकार की तीन स्थितियों की योजना की गई है जिनमें नाटककार बहुत अर्थों में सफल हुआ है।

प्रथम निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि कथानक-विषय की दृष्टि से नाटक सफल है। उसमें एक सफल कथानक के लगभग सभी गुण विद्यमान हैं।

**चरित्र विवेचन**

जैसा कि वस्तुपदा में विवेचन किया जा चुका है नाटककार ने इस नाटक में दो प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोरमा बगदकता तथा मनोज शंकर के चरित्र व्यक्ति-वैविध्य के आधार पर स्थित हैं और मुरादीमान, बाहिर प्रचो इरतम्बनसिंह, मयवन्तसिंह तथा डाक्टर के चरित्र वर्गगत विशेषताओं से युक्त हैं। प्रथम वर्ग के चरित्र घसाधारण हैं और दूसरे वर्ग के साधारण। दोनों वर्गों के चरित्रावन की रीति में भिन्नता होती है प्रथम इनका अन्तर्गत प्रसंग विवरण दिया जायगा।

व्यक्ति-वैविध्य के अन्तर्गत आने वाले चरित्रों में स्वाभाविकता आने के लिए नाटककार का उनकी मानसिक प्रक्रिया का रूप अधिक विस्तार से दिखाना आवश्यक होता है। परन्तु समस्या-नाटककार के लिए यह कार्य और भी कठिन होता है। साधारणतः चरित्रों का उद्घाटन संवाद और विषयों के माध्यम से होता है परन्तु बौद्धिक चरित्रों में ये साधन भी अपना सीमित महत्त्व रखते हैं। संवाद जब तर्क-वितर्क का रूप धारण कर लेता है तो मनुष्य कह कर बातें ही नहीं कहता जिन्हें वह स्वयं स्वीकार करता है और उन पर आधारित करता है। प्रश्न यह तर्क के लिए भी तर्क देता है। तर्क-वितर्क में अपने विचारों को प्रतिपादित कर सकने में असमर्थता प्रकट करना मानव विशेष रूप से व्यक्तिवारी मानव के प्रहृष्ट न अनुकूल नहीं। इसलिए तर्क में प्रतिपादित विचारों को एक सीमा तक ही उसके चरित्र के वर्णन में स्वीकार किया जा सकता है। इसी प्रकार विचारों भी बौद्धिक चरित्रों के चरित्र-उद्घाटन में अतिरिक्त योग नहीं करती क्योंकि बौद्धिक चरित्र प्रायः कार्य की दृष्टि से निरक्षर होते हैं। वे काम में अपना विचार ही प्रकट करते हैं। इतिहास प्रसिद्ध नामों की तरह उनका चरित्र में कर्मवीरता नहीं होती। प्रथम इस प्रकार के चरित्रों के चरित्र उद्घाटन के लिए नाटककार के पास एक मात्र

साधन प्रकटपत्र है। अन्तर्गत दिवाने का सबसे प्रथम साधन है स्वयंसाधन। परन्तु आधुनिक नाटककार ने स्वानाधिकार के नाम पर इसका भी बहिष्कार कर रखा है। वह संवादों तथा प्रत्येक संवाद के साथ किए गए सांत्विक एवं मूक अभिनय के आधार पर ही चरित्र का उद्घाटन करता है। सांत्विक एवं मूक अभिनय की भी पाठ्य भाषा में एक सीमा है। पाठ्य भाषा में अधिक विस्तृत मूक अभिनय पाठक के हृदय पर प्रभाव डालने की क्षमता इतिहास मात्र रख जाता है। इन सब सीमाओं के अन्तर्गत ही नाटककार बौद्धिक चरित्रों के चरित्र का उद्घाटन करता है।

मनोरमा का चरित्र सबसे अधिक बौद्धिक होने के साथ-साथ आदर्श की पराकाष्ठा पर स्थित है। परन्तु नाटककार ने अपने दौलत द्वारा कहीं भी इसका मानवीय रूप प्रकट नहीं होने दिया। चन्द्रकला जब उसके व्यक्तिगत पर, उसके कर्मों के विवेचन पर ध्यान देती है तो वह दयालु हो उठती है। उसे इस बात के उत्तर देने के लिए पुनः आश्चर्यचकित प्रभाव का संभव करना पड़ता है। नाटककार ने उसके चित्र में सांत्विक एवं मूक अभिनय का भी प्रयोग किया है। वह दुष्क न दुष्क तरीकों में भी व्यक्तिगत-गुण नहीं। इन तरीकों का प्रभाव एवं दोषपूर्ण उसके व्यक्तिगत का उद्घाटन करना है। मनोरमा के चरित्र में ममता के निर्वाह होने का एक कारण यह भी है कि वह विद्वान् चरित्र है। उसके चरित्र में जिन विषयों का नाटककार ने ध्यान दिया है वह अन्त तक उनकी क समुचित व्याख्या करती है।

चन्द्रकला के चरित्र में आदर्श की पराकाष्ठा दिखाई गई है। वह सामाजिक वर्गों की पुनर्स्थापना कर स्वच्छन्द प्रेम का नम्र मोमा तक पहुँच जाती है जहाँ उसके भाग्य के साथ बचपन ही आता है, किन्तु वह नम्र वैधव्य का भी विरोध नागरीय का उद्भव मानती है। इसलिये समाचार चरित्र की अस्वाभाविक बनने से बचाने के लिए नाटककार ने उसकी पृष्ठभूमि पर मनोवैज्ञानिक कारणों की ओर उसका ध्यान उपयुक्त भाषावली की मूर्ति की है। चन्द्रकला की मित्र-हीना वास्तविकता का कारण में वह अभी स्वच्छन्द प्रेम के विचारों का बीच उसके हृदय में संलग्न होना स्वाभाविक है। इसके प्रति रिक्त पड़ा होने पर उसकी यौन-आवृत्ति सर्वथा निष्कृत हुई। जिसके लिए उसके हृदय में माँ की प्रति के रूप में प्रेम के ऐसी स्वप्न बनने पर वह उसकी विधि की परवाह न कर उसे दूर रखा रहा। यह एक लकी परिस्थिति है जिसमें कोई भी अविश्वसनीय बुद्धि का दुर्वाच्य मानविक मूर्ति की अविश्वसनीय प्रकृति में ही निहित है। इस मानवसात्विक पृष्ठभूमि के विचार के कारण

ही उससे चरित्र में स्वाभाविकता का निर्वाह हो पाया है।

चित्रित व्यक्ति अपने मन की दुर्बलता को किस चतुराई से छिपाता है, यह भी चन्द्रकला के चरित्र द्वारा नाटककार ने बड़ी सफलता से स्पष्ट किया है। वह चित्रित होने के कारण तर्क करना जानती है। वह रत्ननीकान्त पर मोहित होन पर इसे बड़े चतुराईपूर्ण बचनों से छिपाती है। मनोरमा के उसके प्रेम के बारे में पूछने पर वह उत्तर देती है—

‘‘मन जानती हूँ मैं किस प्रेम करती हूँ प्रेम तो बार से तो हो नहीं सकता और फिर जब प्रथम दर्शन में प्रेम का समय भी नहीं रहा। वह तो मुझ दुसरा या जब हृदय का रस संचित रहता था और धवावास किसी और वह उठता था। जब तो व्यय की भाषा सचब से अधिक हो गई है। उसके साथ प्रेम की नहीं विनोद की बात हो सकती थी उसके साथ दिनबाढ़ हो सकती थी तबीयत बहकाई या सफरी थी।’’

चित्रित व्यक्ति के चरित्र के इस रीतुरेपन का निर्वाह नाटककार ने आद्योपान्त बड़ी कुशलता से किया है। चन्द्रकला एक बार तो सफरा के कारण प्रेम को छिपाती है और दूसरी और आत्माभिमान से मुक्त तर्क करती है और अपने प्रेम की स्पष्ट घोषणा करती है। आधुनिक विद्या से उत्पन्न होने वाले यहबाद की घुंमटूनी में विचार करने पर इस अस्वाभाविकता का भी निराकरण हो जाता है। मन यह कहने में किञ्चित् भी संकोच नहीं कि नाटककार ने चन्द्रकला जैसे अस्वाभाविक प्रतीत होने वाले चरित्र के चित्रण में भी सफलता प्राप्त की है। इस सफलता का एक कारण यह भी है कि चन्द्रकला चित्रित चरित्र है।

मनोरमाचर ही नाटक में एक मात्र विकसित चरित्र है। इसके चरित्र में नाटककार मनोरमा की विद्या द्वारा परिचय लाया है। वह धारम्भ में अपने पिता की आत्महत्या का कारण न जान सकने के कारण मानसिक प्रगति से पीड़ित या जिसके कारण उसके जीवन का विकास ही रुक गया था। परन्तु बुद्धिवादी तर्कों से इतना दीप्त परिवर्तित होकर उधवा जीवन की मनुष्यता कर बना पाठक की अस्वाभाविकता लगता है। इतनी दीप्त प्रभावित होने के लिए यद्यपि उसकी मनोरमा के प्रति आसक्ति को भी धाँवर बनाया जा सकता है परन्तु अपने प्रति इतना अनुत्तरदायी हो जाने वाला व्यक्ति अपने रोम का स्वयं उपहार करता या और चन्द्रकला के रोग के विस्लेषण में इतने

स्विर तथा एकीकृत विचार रखता है। अस्वामाधिक-सा प्रतीत होता है। मास्त्व में मानसिक चोप के उपचार की समस्या के विस्तारण का अधिक विस्तृत एवं गम्भीर रूप देने के लोभ की नाटककार संवरण न कर सका जिसके कारण मनोजर्जर के चरित्र में कुछ अस्वामाधिकता या गई है। अस्तुत जसा कि नाटक के सैद्धान्तिक विवेचन में स्पष्ट किया या चुका है विकसनशील चरित्रों का निर्बाह नाटक के सीमित आकार और साधनों में सम्भव नहीं यह ता उपस्था की वस्तु है। अस्तुत मनोजर्जर के चरित्र में आई हुई कतिपय अस्वामाधिकताएँ नाटक में उद्देश्य के आग्रह के कारण ही हैं। यद्यपि इन अस्वामाधिकताओं का व्यक्ति-वैशिष्ट्य के अन्तर्गत सूक्ष्म विवेचन द्वारा निपट करवा भी किया या सकता है, तो भी समय प्रभाव के रूप में पाठक को अस्वाभाविकता ही लटकती है।

वर्ण्य विवेचताओं से मुक्त पात्रों में भुधरीलाल हरमन्दनसिंह नयनमन्द सिंह और डाक्टर हैं। वर्ण प्रतिनिधि पात्र पाठक के लिए परिचित होते हैं अतः उनके व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए नाटककार को अधिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इन्हें नाटककार अपने उद्देश्य के लिए ही प्रयुक्त करता है। डाक्टर का चरित्र इसी सेमी का है। नयीचार नयनमन्दसिंह भी केवल वर्ण्य विवेचताओं का प्रतिनिधित्व करता है। हरमन्दनसिंह और भाहिर असो के चरित्र में व्यक्तिगत विवेचताओं का भी समावेश होने के कारण अन्तर्द्वार का मकम विवर्ण हुआ है। दोनों की भावनाएँ उन्हें पाप करने से रोकती हैं परन्तु अन्त में मन के आकर्षण में वे घुटन टेक देते हैं।

वर्ण-प्रतिनिधि चरित्रों में सबसे सुन्दर एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन भुरारीलाल का है। उसके मन की लोभ-वृत्ति और वया की भावनाओं का इन्हें बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। उसने लोभ की पापवृत्ति के अर्थात् होकर प्रयत्न किया की। उसने उसे धारमवृत्ति हुई और उसने प्रार्थित करने का विधान कर दिया मनोजर्जर को उल्लेख शिला दिलाकर बामाद बनाना स्वीकार कर उसने आश्वरसा कर ली। परन्तु लोभ की वृत्ति जो पहले प्रबल रूप में थी मर कैसे मकती थी। अब वह मनोजर्जर के विनायक जाने के लोभ की भीमी घाड़ लेकर आई। भुरारी घाड़ अपने कानून की भी—यदि वह मारा भी गया तो रायमाहूब तो कानून की सीमित शक्ति के कारण छुट ही जाएँगे। अब लोभ-वृत्ति प्रकटन की परन्तु भीने आचरण में। परन्तु जब उसे पता चला कि इत्या हो चुकी होनी तो उसका मानवीय रूप पुनः प्रबल हो गया एक निरपराध व्यक्ति मारा या रहा है, वह यह सहन नहीं कर सकता। लोभ-वृत्ति तीसरी बार फिर प्रबल

हुई, अब आबरण का क्या भिन्न था इस प्रकार बन लेकर ही चमसाहब जैसे हत्यारे, पापी व्यक्ति को बन्ध दिया जा सकता है और राजनीकान्त के बच जाने पर वह रपया उसे ही ब दिया जायगा। परन्तु चासीस हजार लेकर उसरी हत्या के लिए अपराधी को झूट दे दी गई थी। मानवीय नृति उसके मर जाने के परचात् उसके सरस बमान से पुनः प्राप्त हुई परन्तु तब तो सब निरर्थक था। इस प्रकार बीबी और राजकी-नृति का स्पष्ट द्रष्टा दिसाजाकर नाटककार मुरारी लाल के चरित्र चित्रण में पूर्णतः सफल हुआ।

नाटककार न सभी चरित्रों का विवेचन सहानुभूतिपूर्ण किया है। चरित्रों के दुष्कर्मों की वृष्णभूमि का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर वह उनके दुष्कर्मों के लिए समाज को उत्तरदायी ठहराता है। उसके विचार में कोई भी पुरुष अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी नहीं उसे जिस आतावरण में संस्कार मिले वह उसके अनुकूल आबरण करेगा ही। इस प्रकार व्यक्ति का दोष सामाजिक व्यवस्था पर डाल दिया गया है। मनोरमा नाटककार के राजनीकान्त पर मोहित होकर मानसिक रायी होने के कारणों का विवृतपण कर साथ दोष परिवर्धन पर आसती है। वह कहती है—

ऐसा अनुमान करना कि यह राजनीकान्त को अपने पुरुष के रूप में प्रेम करने लगी है ठीक नहीं है। उसके रूप पर उसकी हँसी और उसकी सरलता साथ ही साथ उसके सुन्दर शरीर का भी मोहक प्रभाव पड़ा था जो समय ब साथ-साथ समय भिन्न जाता सक्रिय उसका पापस हो जाता और वह भी सांकातिक रूप में जिसमें बहुत कुछ दोष मुरारीलाल महाशय का है वह सब मिसरकर पहाड़ हो उठता वह सम्हाल नहीं सकती। बहुत कुछ दुपई तो मेरे बिच से हुई।”

इस मारे विवेचन के बदलाव कहा जा सकता है कि नाटककार चरित्र-चित्रण में बहुत संचालन सफल है। केवल मनोज्ञशर के चरित्र को छोड़कर दोष में तो उसकी सक्षमता निर्विवाद है।

संवाद

संवाद के मूलतः दो धर्म हैं—एक भाव दूसरा भाषा। भाव कथानक को गति देता है पत्रिका स्पष्ट करता है और उद्देश्य का व्यक्तित्व करता है। भाषा पात्रानुसृत एवं विषयानुसृत होकर स्वाभाविकता को बनाए रखती है।

इस प्रकार संवाद का प्रथम कार्य है कथानक को गति देना। ऐसा संवाद

वा कथानक के विकास की दृष्टि से विषयान्तर हो सुन्दर एवं कलात्मक होने पर भी स्थाप्य है। सिन्दूर की होली के संवादों में प्रयुक्त शी मेर है। मुरारी-लाल की मूल कथा से सम्बद्ध संवादों में कथा के विकास को गति देने का कुल विद्यमान है परन्तु उर्ध्व-वितरक के स्थानों पर प्रयुक्त संवाद बोद्धिक तर्कों का सारसम्बन्ध बनाता है। यद्यपि इनकी विषयानुसंगता असंदिग्ध है।

संवाद का दूसरा प्रभाव कर्म है चरित्र को स्पष्ट करना। चरित्र के अन्त-हृदय को स्पष्टता के लिए यथावकाशी नाटककार स्वयं माया की अपेक्षा मूल अमिनय को प्रथम देता है। परन्तु मुकुटा की अभिव्यक्ति से तबिन्ध्य का प्रभाव है। इसलिए नाटककार एक सीमा तक ही इसका उपयोग कर सकता है। मन में चरित्रता है इनका आशय तो मूल अमिनय में हो जाता है परन्तु उसमें क्रिस्-क्रिस् प्रकार के विचार उठ रहे हैं, यह स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अन्त-नाटककार को अन्तर्हृदय को स्पष्ट करने के लिए मुख्य रूप से संवाद का ही आश्रय लेना पड़ता है। मिथजी ने इस दृष्टि से संवादों की योजना कई सफल बन से की है। नाटककार पहले पात्र से अन्तर्हृदय का एक पक्ष किसी साधारण पात्र के सम्मुख प्रस्तुत करता है और फिर किसी पवित्रोप के कारण वही पात्र दूसरा पक्ष भी स्वयं ही प्रस्तुत करता है। मुरारीलाल के अन्तर्हृदय को स्पष्ट करने के लिए पहले उसका ब्या का माथ बोधता है—

मुरारीलाल—“हूँ जकर ऐसी बात थी। उतक बेहरे से घँतानी टपक रही थी। और मानुष होता वा उतकी भी शय से बह मारा गया होया। मनुष्य का स्वाध इनके लिए आदमी क्या नहीं कर जानता? (कमीड की आस्तीन समेटकर) इधर देखो मेर रोये पूर गए हैं। उसे तिर में बरकर धा रहा है। क्या समझते हो घबर बह मारा गया तो समझें पैरी बजह”

माहिर धनी—“मैंने बहुत कहा वा बह आचकी बजह से मारा गया होया। जानून क इर में इस बैईमान की हिम्मत इतनी नहीं होती।”

और इस प्रकार माहिर धनी ठाग दाप दिए जाने पर मुरारीलाल एकरम बदन जाता है और कानून की विषयता आदि के तर्कों द्वारा अपने को निर्दोष सिद्ध करने लगता है। नाटक के सम्मुख उसके दोनों माथों के रूप धा जाते हैं और अन्तर्हृदय भी स्पष्ट हो जाता है।

इस प्रकार नाटक में स्वाभाविकता भी बनी रहती है और अन्तर्हृदय के स्पष्ट हो जाने से चरित्र का व्यक्तिगत भी विरलतनीय एक मानवीय बन जाता है।

संवाद का दूसरा कर्म है—माया। माया का विषयानुसंग एवं पात्रानुसंग होना स्वाभाविकता के निर्बोह के लिए आवश्यक है। नाटक में दो प्रकार के विषय

है—एक भाव प्रधान को गुराहीलास के कथानक से सम्बद्ध हैं और दूसरे को समस्या से सम्बद्ध हैं। दोनों की भाषा में भी विषय के अनुसूचित भिन्नता है। भाव प्रधान शब्दावली में श्लोकवाचक की भाषा का अधिक प्रयोग है जिसमें श्लोकवाचक के उद्गार आदि अन्य भाषाओं के शब्द भी आ गए हैं जैसे बयान प्रभावित मुमकिन लगता है बस्तावेज हसी-हृष्टमय आदि। यह शब्दावली कटफने वाली नहीं प्रत्यक्ष स्वाभाविकता के निर्वाह में यह नाटक का गुण ही नहीं बल्कि बुराई।

तार्किक स्वभाव पर भाषा अधिक परिष्कृत और संस्कृतनिष्ठ है क्योंकि यहाँ पर भाव की अपेक्षा विचार का प्राधान्य है। परन्तु इस शब्दावली में भी नाटकीयता का गुण लुप्त नहीं हो पाया।

लगभग सभी पात्र शिक्षित हैं इसलिए पात्रों की भाषा में भिन्नता का प्रश्न ही नहीं उठता। केवल विषय के अनुसार उनकी भाषा में भेद आ गया है। जैसे माहिर अपनी उद्देश्य के समय प्रत्यक्ष को 'परमय' कहता है।

संवाद में नाटकीयता होना संवाद का सर्वप्रथम गुण है। यद्यपि यह कथा नष्ट रहेस्य एवं चरित्रों को अभिव्यक्त करने का साधन है परन्तु इस माध्यम में भी उसका एक निजी सीध है जिसके कारण उसे एक विशेष महत्त्व प्राप्त है। इस सीध में निम्नलिखित बहुत घटकों में बँटा है। उनके संवादों में एक विशेष प्रकार की मोहकता है जिसके कारण पाठक को शैक्षिक तर्क-वितर्क भी घसरता नहीं। संवाद में हृदय को एवं पस्तिष्क को केन्द्रित करने की इस प्रकार की क्षमता है कि पाठक नहीं भी ऊँचा नहीं। इसी संवाद-मुच्यता के कारण ही वे नाटक के अभिनेता भावों को मुख्य-कथा के सम्बन्धित रखते हुए भी उसके प्रभाव की व्यवस्था पाठक को करवा देते हैं।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि 'सिन्धूर की होमी' निम्नलिखित के सामाजिक नाटकों में सर्वश्रेष्ठ कृति है। नाटककार इसमें अपने उद्देश्य की व्यवस्था के साथ नाट्यकता को भी धन्य रखने में सफल हुआ है।

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार



## उपसंहार

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मिथजी न नाटकों की आलोचना करते हुए लिखा है— 'नाटक का जो नया स्वल्प लक्ष्मीनारायण की ओर से माए उसमें काव्यत्व का अवयव भरसक नहीं आने पाया है ।' यद्यपि विचारणीय है कि क्या वस्तुतः मिथजी के नाटकों की परम्पराएँ भारत की न होकर योरोप की हैं ? आचार्य शुक्ल और उनके कई परवर्ती आलोचकों ने उन्हें पाश्चात्य प्रभाव में क्यों देखा ? मिथजी के साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व इसे स्पष्ट कर देना समीचीन होगा ।

भारतेन्दु के कई वर्षों पश्चात् प्रसाद की अप्रतिम प्रतिभा ने हिन्दी नाटक की सृष्टि करने वाली धारा को अपनी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कृतिओं से एक नया जीवन प्रदान किया । उनके नाटकों में झूठ उज्ज्वल घटीत की छाँटी ने और अलख स्वोत्तरी प्रकाशित पड़ी रसात्मक सुबेचना में समाज की काँची दूर तक अनुभूतिमय बना दिया । उत्थान की इस महीन चकाची से अभिवृत्त समाज में मिथजी के लम्बे मयार्च और शीघ्रतापूर्व नाटकों को उचित सम्मान मिलना अधिक सम्भव भी न था । आदर्शवादी धारा के चरम विकास के ठीके कमारों पर पड़े हिन्दी-समाज की ग्रंथ गति । प्रकाशित मयार्चवादी धारा सुप्त प्रायः सभी और उसने मिथजी की वसात्मकता और आदर्शवाद को विदेश में प्रकाशित मयार्चवादी धारा से सम्बन्ध कर दिया । मयार्चवादी धारा कि आचार्य शुक्ल जैसे विद्वान् आलोचकों ने इसे विरक्त कर देया और अधिकांश परवर्ती आलोचकों ने उसी निर्मूलक तरीके पर चलते रहे । धन मिथजी के कर्मों में ही उनही तथ्यांकित न सम्बन्ध स्पष्ट कर देना सम

मिथजी की नाट्यकला के  
भारतेन्दु-काल में ही समाज की

उपसंहार

प्रारम्भ हो गया था। यथायथादी एव यथायथादी दोनों धाराओं के अधिकारी  
नाटकों में समाज के प्रति सम्बन्धता पाई जाता है। त्रिबन्दी-नाम के कई नाटकों  
में तो हम प्रबन्धन के धार्मिक के कारण बलागत प्राप्त भी हुआ है। यद्यपि  
मिथली की हम प्रबन्धन का हस्तक्षेप और दाँ का प्रमुखत्व कहना तक मन्द  
नहीं।

मिथली ने हस्तक्षेप और दाँ की नीति सामयिक समस्याओं का अपने नाटकों  
का विषय बनाया। परन्तु हिन्दी-नाटककार भारत-नाम से ही इस धोर  
प्रवृत्ति का अनुसरण किया। भारत-नाम के ये समस्याएँ स्थूल थीं जैसे बेरोज़गारी-समस्या  
विधवा-विवाह-समस्या नाट्य-विषय आदि। परन्तु युग-चिन्तन के विकास के  
कारण मिथली के नाटकों में इन्होंने स्वच्छन्द प्रसन्नता से मूल्य समस्याओं का  
रूप धारण कर लिया। यद्यपि यह स्तर की ओर यह प्रयास स्वाभाविक  
विकास का सूचक है दाँ आदि के अनुसरण का नहीं।

मिथली के नाटकों में नग्न यथार्थ को देखकर भी धार्मिक अधिक चौक।  
परन्तु विज्ञान और उद्योग से उत्पन्न शैक्षिकता में समाज का बड़ा बदलाव का  
धार उत्पन्न होता है एव स्वाभाविक प्रवृत्ति है। नाटकों में इसका बीज मिथली  
से पूर्व भी मिलते हैं। राधाकृष्णन के 'कुत्ता बना नाटक की शक्ति  
इमाना धर्म के स्वाभाविक धर्म का नियन्त्रण न कर सकने के कारण पर-मुक्त  
सम्बन्ध के सुभाव का स्वीकार कर लेती है। नाटककार ने इसका मान भी  
पहले विधवा-विवाह नाटक' रखा था। इसका धार्मिकता करने हुए डा० बच्चन  
मिश्र लिखते हैं "विधवा-विवाह नाटक में जो यथार्थवादी दृष्टिकोण दिखाई  
पड़ता है वह वास्तव में धार्मिकता में बल दिया गया है। लक्ष्य है कि धार्मिक  
धीरे-धीरे इस दुःख में धार यथाय के प्रति भी लक्ष्य जादृक् होन मय है।  
पर सामाजिक कठिनाई के लिये तिरस्कार की शक्ति उनमें न पाई थी।" यद्यपि  
यथार्थ की धार उत्पन्नता का युग की प्रवृत्ति मानना ही अधिक समीचीन है।  
विशेषी प्रभाव का भ्रम उत्पन्न करने वालों प्रमुख प्रवृत्ति है नाटकों में  
व्याप्त शैक्षिकता। यह मिथली के नाटकों में तोल रूप में चिह्नित है। प्रथम  
उनके कई पात्र बुद्धिमान हैं दूसरे उनका समझा पर विचार करने का बुद्धि  
काय शैक्षिक है और तामरे उनसे संवादों में शैक्षिक-तत्त्व-विज्ञान की दार्शनिक  
की गई है। जहाँ तक पात्रों की बुद्धिबलता का प्रश्न है इसका समाधान यथाय  
धार के धार्मिकता दिया जा सकता है। जब उन्हें समाज के सामाजिक धर्म का विज्ञान

## उपसंहार

शाश्वत रामचन्द्र शुक्ल ने मिथजी के नाटकों की आलोचना करते हुए लिखा है— नाटक का जो नया स्वरूप लक्ष्मीनारायण जी योरप से लाए उसमें काव्यात्मक का प्रबल भरसक महीं धाने पाया है । 'यत' विचारणीय है कि क्या वस्तुतः मिथजी के नाटकों की परम्पराएँ भारत की न होकर योरप की हैं ? शाश्वत शुक्ल और उनके कई परवर्ती आलोचकों ने उन्हें पाश्चात्य प्रभाव में क्यों देखा ? मिथजी के साहित्य का मूल्यांकन करने से पूर्व इसे स्पष्ट कर देना समीचीन होगा ।

भारतेन्दु के कई वर्षों पश्चात् प्रभाव की अप्रतिम प्रतिभा ने हिन्दी नाटक को उतन बहने वाली धारा को अपनी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक कृतियों से एक नया जीवन प्रदान किया । उनके नाटकों में अद्भुत उज्ज्वल प्रतीक की ओकी न और ध्वज झीत-सी प्रवाहित गहरी रसात्मक संवेचना ने समाज को काफी दूर तक अनुभूतिमय बना दिया । उत्थान की इस नवीन लड़ाई से अभिभूत समाज में मिथजी के मूल मयार्थ और वीरिष्णुपूर्ण नाटकों को उचित सम्मान मिलना अधिक सम्भव भी न था । आदर्शवादी धारा के चरम विकास के ऊँचे कमारों पर लड़े हिन्दी-समाज को मंद प्रति से प्रवाहित मयार्थवादी धारा मुप्त प्राय लगी और उसने मिथजी की कलात्मकता और जापककता को बिदेय में प्रवाहित मयार्थवादी धारा से सम्मिश्र कर दिया । यह एक संयोग ही था कि शाश्वत शुक्ल जैसे विद्वान् आलोचक ने भी इसे बिदेयी प्रभाव के प्रत्यक्ष रूपा और अधिकतर परवर्ती आलोचक भी शुक्लजी के कथन की पृष्ठभूमि में उसी लीक पर चमके रहे । यत मिथजी विषयक इस प्रचलित धारणा को निमूल करने के लिए उनकी लघुकथित बिदेयी विषयताओं का पूर्ववर्ती नाटक-परम्परा में सम्भाव्य स्पष्ट कर देना समीचीन होगा ।

मिथजी की नाट्यकला की प्रमुख विशेषता हैं समाज के प्रति जापककता । नागनेन्दु-नाम में ही समाज की कृतियों की नाटक के माध्यम से रखने का प्रयास

असंहार

प्रारम्भ हो गया था। यथायथादी एवं प्रादुर्भावदी दोनों धाराओं के अधिकांश नाटकों में समाज के प्रति नम्रता पाई जाती है। त्रिबेदी-काल के कई नाटक में तो इस प्रवृत्ति के आधिक्य के कारण क्लृप्तता का ही रूप है। परन्तु मिश्रजी की इस प्रवृत्ति का इष्टतम धीरे धीरे का प्रसरण कहना ठीक सत्य नहीं।

मिश्रजी ने इष्टतम धीरे धीरे की नीति सामयिक समस्याओं का अपने नाटकों का विषय बनाया। परन्तु हिन्दी-नाटककार भारतन्दु-काल से ही इस धारा प्रवर्तन हुआ करता था। भारतन्दु-काल में ये समस्याएँ स्थूल थी जसे बप्पा-ममत्ता विषय-विवाह-ममत्ता गरीबी-मिता आदि। परन्तु युग-विस्तार के विकास के कारण मिश्रजी के नाटकों में इन्होंने स्वच्छन्द प्रगतिशील मूल्य समस्याओं का रूप धारण कर लिया। परन्तु स्थूल से सूक्ष्म की ओर यह प्रयास स्वाभाविक विकास का सूचक है धीरे धीरे के अनुकरण का नहीं।

मिश्रजी के नाटकों में मान्यता को हलकरी की आलापन प्रवृत्ति थी। परन्तु विज्ञान धीरे उद्योग से उद्भूत बौद्धिकता में समाज का कटु पर्याय की धारा उद्भूत होना एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति है। नाटकों में इस बीच मिश्रजी से पूर्व भी मिलते हैं। राष्ट्रीयता का नाटक की नायिका यथायथा धीरे के स्वाभाविक धर्म का नियन्त्रण न कर सकने के कारण पर-मुक्त सम्बन्ध के सुन्नाह का स्वीकार कर लेती है। नाटककार ने इसका नाम भी पहले विषय-विवाह नाटक रखा था। इसकी आलापना करने हुए का सम्बन्ध मिश्रजी के विषय-विवाह नाटक में जा यथायथा की दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है वह बाद में आकाशवाणी में बदल गया है। सत्यता है कि आकाशवाणी धीरे धीरे के इस धारा में धीरे धीरे के प्रति भी सकारात्मक होन मय है। पर सामाजिक कठिनाई के गुणे निरस्कार की दृष्टि उनमें से पाई की। पर यथायथा की धारा उद्भूतता का युग की प्रवृत्ति मानना ही अधिक समीचीन है। विदेशी प्रभाव का प्रभु उत्पन्न करने वाली प्रमुख प्रवृत्ति है नाटकों में व्याप्त बौद्धिकता। यह मिश्रजी ने नाटकों में तीन रूप में विद्यमान है। प्रथम उनके कई पात्र बुद्धिवादी हैं दूसरे उनका समस्या पर विचार करने का दृष्टिकोण बौद्धिक है और तीसरे उनके संवादों में बौद्धिक तर्क-विनय की मात्रता की गई है। जहाँ तर्क-पात्रों की बुद्धिवादिता का प्रभु है तथा समाहार यथायथा बाद के आकाशवाणी में जा सकता है। जब उद्भूतता के सामाजिक रूप का विज्ञान

धमीष्ट या तो युग के अनुकूल बौद्धिक चरित्रों का सख्त प्रतिपक्ष ही था। बुद्धिवादी दृष्टिकोण को भी इस्लाम और धर्मों की अपेक्षा तरकामीन युग की प्रवृत्ति के रूप में समझना अधिक संभव है। जब जीवन के प्रत्येक पहलू पर बुद्धि के दृष्टिकोण से बिचार करने का प्रयत्न था तब धर्मसमाज द्वारा किया जा रहा था तो इन समस्याओं के बुद्धिवादी में इस्लाम और धर्मों का प्रभाव रहना कहाँ तक मुक्तिप्रद होगा। संसारों की तर्कहीनता भी धर्मवाद और युगानुप्राणित बुद्धिवाद से—जिसमें धर्मसमाज की धार्मिक-प्रवृत्ति का विशेष योग है—प्रभावित मानी जा सकती है। इसके प्रतिरिक्त नाटककार के सभी नाटक न बौद्धिकता लिये हैं न तर्क-प्रधान हैं। मुक्ति का रहस्य और 'राजयोग' बौद्धिकता-प्रधान नहीं 'गिन्तूर की होली' में मुसलीमान का कृत सर्वथा बौद्धिकता-रहित है। अतः सम्पूर्ण इतिहास को बर्बाद धर्मों के प्रभाव में लिखा गया कहना भी प्रबल है।

इसके प्रतिरिक्त हीमी की दृष्टि से बिना पीठ का नाटक एक घंटा में एक दृश्य को रखना तीन घंटों का नाटक भिन्नता इत्यादि विधेयताएँ पारंपारिक धर्मवाद की धारा के समान होने के कारण सबसे प्रभावित नहीं जाती हैं। परन्तु एक तो ये बातें बहुत ऊपरी हैं और इनका विशेष महत्त्व नहीं हमारे इन्हें भी पारंपारिक परम्परा से उधार लाया गया है। ऐसा धारणपूर्वक नहीं कहा जा सकता क्योंकि ये तो धर्मवाद में सहज विकास के लक्षण हैं। एक घंटा में एक दृश्य रखने की प्रवृत्ति हमें मिश्रजी से पुनः किछोरीसाल बीस्वामी के 'मयक मंजरी' नाटक में भी मिलती है।

यही यह स्पष्ट कर देना भी अप्रासंगिक न होना कि लक्ष्मीनारायण मिश्र और धर्मों के नाटकों में कई भेद इससे स्पष्ट हैं कि इनके नाटक के स्वरूप को किसी प्रकार भी योरप से लाया गया नहीं कहा जा सकता। इस्लाम तथा धर्मों ने तर्क द्वारा रूढ़ि का विरोध किया है यदि मिश्रजी उन्हीं के अनुकरण पर नाटक रचना में प्रवृत्त होते तो बहुसंख्य की रूढ़ियों के विरोध में ही नाटक लिखते और भारत के रूढ़िप्रसक्त समाज में इसके लिए सामग्री का खपन भी अधिक सुपम होता। परन्तु मिश्रजी ने ही इसके विपरीत सामाजिक धार्मिकों का प्रतिपादन किया है। इस्लाम और धर्मों ने समाज और व्यक्ति के द्वन्द्व में व्यक्ति की विजय का समर्पण किया है। परन्तु मिश्रजी ने व्यक्ति की प्रवृत्ति को पशु प्रवृत्ति बताकर सामाजिक संस्कारों को इसके नियन्त्रण का एक प्रमुख साधन बताया है। इस प्रकार दोनों में व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व दिखाने में समानता अवश्य है परन्तु दोनों के दृष्टिकोणों में यौमिक भेद है। इसके प्रतिरिक्त दोनों की आधार की दृष्टि में भी

मेव है। हाँ न समाज में वैचारिक जागृति आने के लिए उपहास को प्रमुख माध्यम बनाया है परन्तु मित्रजी ने उपहास को इतना अधिक महत्व नहीं दिया। उन्होंने व्यंग्य विचार तर्क और अनुप्रास सभी का समान लेकर अपने विचारों का प्रतिपादन किया है।

इस सब विवेचन के पश्चात् कहा जा सकता है कि लक्ष्मीनारायण मिश्र की परिस्थितियों और उनसे उद्भूत प्रेरणाएँ योसिफ हैं उनकी परम्पराएँ हिन्दी की अपनी परम्पराएँ हैं। ऐसा कहना कि वह नाटक का कोई नया स्वरूप पारचात्य से लाए, उनके साथ और हिन्दी नाटक की अवधारणाओं द्वारा क साथ सम्पाद करना होगा। उन पर उठना ही पारचात्य प्रभाव मानना समीचीन होगा जिसका कि हिन्दी की अन्य साहित्यिक बाराहों पर एक हिन्दी के अन्य साहित्यिकारों पर माना जाता है। अपने निरंक व्यक्तित्व का बनाए रखते हुए दूसरे के प्रभाव का ग्रहण करना एक गुण है विकास का चिह्न है। अब इतना ही प्रभाव हुआ नाटककार पर इम्पेन जो प्रायः नाटककारों का माना जाता चाहिए।

इस प्रकार हमारे के स्वरूप में उन्हें सारग्रास्य मान लेने के पश्चात् उनके विषय में प्रचलित अन्य कई भ्रान्तियाँ स्वतः स्पष्ट हो जाती हैं। उनकी भार दीपका के प्रति निष्ठा का समझने में घासोचको को जो अन्तर्बोध दिखाई पड़ता रहा वह भी निरून हो जाता है। उनका मूल्यांकन करते हुए यह कहना कि उन्होंने हाँ की परम्परा को अपनाया परन्तु वह पूर्ववत्ता कुटिकारी न हो एक स्वतः विरामक हो जाता है।

### सामाजिक नाटकों के मूल्यांकन का निष्कर्ष

#### समस्या-प्रधान नाटक—

मित्रजी के समस्या-प्रधान नाटक दो हैं—‘संघर्ष’ और ‘घापी रात’। ‘संघर्ष’ में स्वच्छन्द प्रेम की समस्या का विवेचन करते हुए उस पर मर्यादित प्रेम भर्त्सना विवाह की विजय दिखाई है। इस प्रेम के उद्भावक कारणों के रूप में नाटककार ने अनपेक्ष विवाह तथा महिमना का भा विपक्ष विचार किया है। और इस बहु विषय व विषय में पुरुष की उद्दाम वासना पर भी व्यंग्य किये गए हैं। पारम्परिक कृति होने के कारण शिल्प-दृष्टि से नाटक सिद्ध है। ‘घापी रात’ में स्वच्छन्द प्रेम की समस्या के साथ भारी की दृष्टि का भी विचार किया गया है। यह अपने अभ्यास प्रयोग द्वारा एक कुटिल पुरुष के गुण में उद्वेग हावी है। समस्या-विवेचन में भारतीय और पारचात्य नाटो-

मादर्यों का तुलनात्मक विश्लेषण बड़े तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है। दूसरी समस्या यौन कृच्छार्थों है। उत्पन्न व्यक्तिवादी साहित्य के सामाजिक मूल्यों की है। नाटक-कार स्वयं कवि द्वारा इस साहित्य को जलवाकर सिद्ध करता है कि घसतुमित र्भक्त द्वारा रचित सभी साहित्य मिथ्या है। चित्त-पक्ष में नाटककार ने कई मने प्रयोग किए हैं जिनमें उसकी प्रतिभा का धाभास झलकता है। यद्यपि नाटक में जटिलता का जाने के कारण यह इनमें प्रयुक्त हो सफल है।

**विचार प्रदान नाटक**

य नाटक तीन है—'राज्य का मन्दिर' 'मुक्ति का रहस्य' 'राजयोग'। 'राज्य का मन्दिर' में नाटककार ने सामाजिक बुद्धिवादी युग की प्रवृत्तियों को प्रतीक बना कर नारी की समस्या का बौद्धिक व्याख्यान किया है। नारी को राज्य मानव और दैवता के मध्य विद्यमान ब्रह्मण्ड को व्यक्तित्व उत्पन्न की प्रवेष्टा सम्पूर्ण नारी-जाति के उत्थान के लिए प्रेरित किया है। बौद्धिक दृष्टि से नारी के उद्बोधन का स्वर प्रति प्रबल है। इस नाटक में राज्य और मानव के चरित्रों के संर्जन में नाटककार की अपूर्व विचारक कल्पना का परिचय मिलता है। चित्त की दृष्टि से नाटक में कई गूढ़ताएँ हैं। एवं जटिलता भी का गई है। 'मुक्ति का रहस्य' में जीवन में अतिरिक्तता का बहिष्कार कर यथाप को अवदान का प्रारम्भ है। प्रेम में रोमान को अतिशयता प्रदान करने वाली धामादेवी और उसे धाम्याग्निष्ट रूप देने वाला उमागकर दोनों समफल होत हैं। यथार्थ भूमि पर नहीं होकर अपने पाप को स्वीकार करने में ही समस्या सुलझती है यह दूसरा दूसरा प्रतिपाद है। कथानक-निरूपण चरित्र-विवरण संवाद सभी दृष्टियों से नाटक सफल है। 'राजयोग' में नाटककार व्यञ्जित करता है—सत्य को मत छिपाओ। छिपाने से यह मानसिक द्रव्य का रूप धारण कर मिला और स्थिति सब के विधान को रोक देता। नाटक में जगता गजराजनिह धनुर्मुनिह आदि सभी प्रमुख पात्रों की यही समस्या है। अन्त में सभी अपने अपराध को स्वीकार करत हैं और समस्या सुलझ जाती है। चित्त की दृष्टि से नाटक सफल है।

**घटना एवं समस्या प्रधान नाटक**

'सिन्दूर की होमी' का सम्पूर्ण कृत मुगरीमाल की कथा का केन्द्रित करक जमना है जिसमें कम-ज्याद-निष्ठा (Theory of nemesis) का बड़ा सुन्दर व्याख्यान है। नाटक का दूसरा पक्ष पात्रों द्वारा समस्याओं पर किए गए तर्क पूर्ण विश्लेषण से सम्बन्ध है। मुख्य रूप से स्वच्छन्द प्रेम विधवा-विवाह और राणीनकार की समस्याओं पर गहरा एवं तटस्थ विश्लेषण किया गया है। इन

उपसंहार

अतिरिक्त नाटक के बीच कृतों से भी प्रथम कई सिद्धान्तों की सफल व्याख्या की गई है। मनोरमा और मनोजसंकर के प्रत्येक काय को सफल विन्यासकर बुद्धिवाद की सफलता का उद्घाटन किया गया है। माहिर प्रसी और मनोज संकर की ग्रन्थ का विन्यास कर उनके व्यक्तित्व के प्रबन्ध विकास का विन्यास किया है। इसके अतिरिक्त कानून द्वारा मुरजा की समस्या तथा विन्यास के जीवन-नापन की समस्या का भी विन्यास किया है। शिल्प की दृष्टि से भी यह नाटक मियजी के सामाजिक नाटकों में सर्वोत्कृष्ट है। इतने बहुमुखी उद्घाटन और बीच कृतों का कथानक-विन्यास में बड़ी कुशलता से सामंजस्य किया गया है। इन्द्र कीतुल्लभ सम्बद्धता यादि उत्तम कथानक के सभी गुण इसमें विद्यमान हैं। चरित्र-विन्यास में मुरागीमान का चरित्र नाटककार की प्रभुत्व सृष्टि है। व्यक्तिवादी चरित्रों में जन्मकला के दोहरे व्यक्तित्व का सफल निर्वाह है। संवाद में प्रौढ़ता के अतिरिक्त एक निजी मौल्य है। मित्रार्थ रूप में 'सिन्धूर की होली' सामाजिक नाटकों में सर्वोत्कृष्ट रचना है।

### मियजी का योगदान

मियजी ने विन्यास एवं दोनों ही दृष्टियों में हिन्दी नाटक धारा को समृद्ध किया घट दोनों का पुष्पक पुष्पक विन्यास करना समीचीन है।

अस्तुपक्ष

समाजवाद—यथार्थवाद में प्रतिपाद्य है कि जो बहू है धर्मोशन है समाज की दृष्टि से अपेक्षित है उनका भी उद्घाटन करना। नाटककार अपना तत्त्व बर्णन कर समाज को उसके प्रति जागरूक करता है। वह हमें अपना काष्ठ मत ज्ञान न करके समाज का रूपन क सम्मुख खड़ा कर देता है। मियजी ने जाय विन्यास की दृष्टि में समाज की सामना-कृति, मोम-कृति और दूसरे की लताओं से अपना स्वार्थ निष्ठ करने की कृति का बड़ा सुन्दर उद्घाटन किया है। सामना-कृति का उद्घाटन 'मध्यामी' 'माथी रात' और 'सिन्धूर की होली' में करते हुए नाटककार ने इसके संभव एवं पक्ष-परिष्ठा का भी विन्यास किया है। सोप की कृति का मुरागीमान और रायमात्र माध्वनिष्ठ के माध्यम से प्रभावित किया है। स्वाय का कृति का प्रभाव 'राष्ट्र का मन्दिर' में मूर्ती-चरक चरित्र द्वारा हुआ है। इस प्रकार नाटककार ने बहू यथार्थ को समाज के सम्मुख खड़ा हुए उसे विचार करने के लिए प्रवृत्त किया है।

विचार-प्रेरण—हिन्दी नाटक के विन्यास में समाजवादी का मित्रार्थों के समावेश का योग भी मियजी का है। समाजवाद का मित्रार्थ है धनराज



को छिपाने से यह मानसिक ब्रंशि का रूप धारण कर लेता है और व्यक्तित्व के विकास को रोक देता है। इस सिद्धान्त का निरूपण नाटककार ने मनोमर्दकर, माहिर घनी धनुसूदनसिंह बजरामसिंह और चम्पा के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से किया है। इन सब पात्रों के मन की ग्रंथियों का भिन्न प्रकट हो जाने पर इनका जीवन स्वस्थ हो जाता है। इन सिद्धान्तों को फायद के वासनाधों के समय के सिद्धान्त की पृष्ठभूमि में बड़ी सुयमता से समझा जा सकता है।

‘रासल के मन्दिर’ में नारी-उद्बोधन का स्वर भी बड़ा प्रबुद्ध है। नारी को अपने आचरण तथा विकास के लिए, अपने ही नहीं सम्पूर्ण नारी-जाति के उद्धार के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा है।

जीवन की घटितरंजना के बहिष्कार की प्रेरणा भी मुक्ति का रहस्य’ में बड़े सफल ढंग से व्यक्त की गई है। प्रेम को रोमांस का रूप देने वाली भाषा बेबी और उसे अभौतिक रूप देने वाला उमासंकर दोनों ही सफल दिखाए गए हैं। और अन्त में भासादेबी और डाक्टर के विवाह के द्वारा दोनों पर समुचित समर्थ की विजय दिखाने में नाटककार सफल हुआ है।

‘राम के मन्दिर’ में मुनीरकर के तर्कों द्वारा व्यक्तिवाद और विमूर्त की होमी’ में बजराम के तर्कों द्वारा प्रकृतिवाद का भी धार्मिक स्वरूप स्पष्ट हो गया है। इस प्रकार नाटककार ने प्रकारान्तर से व्यक्तिवाद (Individualism) और प्रकृतिवाद (Naturalism) के स्वरूप से भी पाठकों को परिचित करा दिया है।

इस प्रकार नाटककार ने मित्र मित्र विचारों का विस्तारण उपस्थित कर हिन्दी नाटक की समृद्धता में विशेष योग दिया है।

समस्या—नाटककार ने नाटकों में समस्याओं का विषय दो माध्यमों से किया है—व्यंजना द्वारा एवं तर्क द्वारा। व्यंजना द्वारा नाटककार ने विवाह समस्या, स्याम द्वारा सुरक्षा की समस्या, अनमेल विवाह की समस्या और छह मिरा की समस्या का विषय किया है। और तर्क द्वारा स्वच्छन्द प्रेम की समस्या, विवाह विवाह समस्या तथा रीढ़ोपचार की समस्या का विवेचन किया गया है। व्यंजना द्वारा विभिन्न समस्याओं में जहाँ एक ही पक्ष का उद्घाटन हुआ है वहाँ तर्क द्वारा विवेचन समस्याओं में नाटककार समस्या के तटस्थ द्वितीय विवेचन में सफल हुआ है।

पात्र—नाटककार ने चरित्र-श्रुति में मुनास्वर और रघुनाथ के माध्यम से धार्मिक व्यक्तिवादी मानव की प्रवृत्तियों का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। इन चरित्रों में अष्ट वर्ग के प्रोफेसरों, उद्योगियों और व्यापारियों के

चरित्र को प्रभावित करने का सकल प्रयास किया है।

नाटकों में आत्म का धारण यद्यपि अधिक नहीं किया गया तो भी यम तब प्राप्ति हुए जिन अपनी शरीरता के कारण बहुत महत्व रखते हैं।

प्रियमस

कथानक-विम्वार की दृष्टि से नाटककार की कला का चरम विकास सिमर की होनी में हुआ है। इसने अधिक उद्देश्यों को व्यक्त करते हुए तथा पत्र कलों का निर्वाह करते हुए भी कथानक इतना सुनक्ति है कि न ही किसी मंत्र का बिम्बेय किया जा सकता है और न ही उसमें कोई न्यूनता भक्तकी है। सुख और दुःख का विभाजन भी इस कुशलता से किया गया है कि इन्द्र नाटकीय स्थितियों की पूर्णता का स्वाभाविक रूप से समावेश हुआ है। हिन्दी नाटक में सकल स्वयं के ऐसे उत्कृष्ट उदाहरण कम ही दृष्टिगोचर होते हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी नाटककार की कला का चरम विकास सिमर की होनी में हुआ है। शीत-चित्रण के चित्रण में कल्पना का चरित्र प्रमुख बना है। उसकी प्रभावशालिता की सर्वोच्चानिक पृष्ठभूमि देते हुए नाटककार ने उसके चरित्र को कहीं भी छिपित नहीं होने दिया। उसके चरित्र के दोहरान का उद्घाटन भी बड़ी कुशलता से किया गया है। कर्त-चरित्रों में मुरारिनाम के चरित्र का चित्रण नाटककार की अपूर्व चित्रण शक्ति का परिचायक है। शीत तथा व्याप और शीत तथा व्याप के इन्द्र के उद्घाटन में नाटककार ने मानव की सुदम प्रवृत्तियों को मुखरित किया है।

संवाद की दृष्टि से नाटककार की देन अपूर्व है। प्रत्येक विषय साधारण प्रकृति प्रभावधारण का प्रभाव प्रकृति शक्ति-प्रभाव सरस प्रभाव और सरस प्रभाव प्रकृति शक्ति में स्वाभाविकता एवं समीपता बनाए रखने में नाटककार सकल है। विषयों के नाटकीय संवाद कथानक को पठि देने और चरित्र को स्पष्ट करने के प्रतिरिक्त नाटकीयता के कारण एक मिथी सौन्दर्य भी रहते हैं। उनके दृष्ट-दृष्ट भावों का विम्वार भी इस प्रकार का होता है कि उसकी चरमता में भी साहित्यिक परिभाषा प्रकल्प रहती है।

शैली की दृष्टि से राखस के मन्दिर में प्रतीक शैली का बड़ा प्रयोजन किया गया है। परन्तु इसमें शैली का प्रयोग 'प्रतीक जन्मोद्भव' और 'कामना' की तरह स्पष्ट न होने के कारण पात्रों में मनीषता का भी पुरा-पुरा निर्वाह हुआ है।

मनीषता—इस विषयवाचों के प्रतिरिक्त कला की दृष्टि से नाटककार

ने कुछ महीन प्रयोग भी किए हैं जिनमें नहीं वह पूर्णतया सफल है और नहीं सफल ।

कथानक-विश्लेष की दृष्टि से नाटककार ने 'बाघी रात' में एक महीन प्रयोग किया है । सम्पूर्ण कथानक में कार्य एवं गति का पूर्णतया अभाव है, प्रत्येक के द्वारा किए गए कठिण तथ्यों के उद्घाटन के अतिरिक्त नाटक में कोई घटना नहीं घटती । रोप सम्पूर्ण कथानक का विश्लेष केवल तर्क पर आधारित होता है । जैसे तो मिश्रजी के रोप नाटकों में भी कार्य को मुख्य भाग में रख कर कथानक का विकास हुआ है परन्तु इस नाटक के संवादों में भी अधिकांश भाव सैद्धांतिक तर्क का है । इससे कथानक में कौतूहल एवं रोचकता में कमी आ जाना स्वाभाविक है परन्तु नाटककार ने वस्तु विश्लेष की योजना एवं संवादों की भाटकीमत्ता के कारण हमका कई क्षणों में परिहार किया है ।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी नाटककार ने बाघी रात में एक महीन प्रयोग किया है । भाव प्रधान नाटकों में अर्थात् हिन्दी की सावर्णिकी धारा के नाटकों में नाटककार चरित्रों की योजना इस दृष्टि से करता है कि प्रेक्षक का मायक के साथ तात्कालिक हो जाता है । उनके अत्यंत बर्णन उसे सहानुभूति होती है और वह प्रतिभाषक को अपना प्रतिद्वंद्वी बना लेता है । युग चिन्तन के विकास के साथ इस धारणा में परिवर्तन हुआ और यह माना जाने लगा कि कोई भी पात्र मूल रूप से हैब या बाल्य नहीं सबसे दुर्प्रवृत्तियों और दुर्प्रवृत्तियाँ समभाव से विद्यमान हैं । उसकी कौन सी प्रवृत्ति का दायित्व बिरास हुआ है यह उसकी परिस्थितियों एवं परिवेश पर निर्भर है । अतः प्रत्येक व्यक्ति के दुर्गमों के लिए सामाजिक व्यवस्था को उत्तरदायी माना गया । इस दृष्टिकोण के आधार पर नाटककार प्रत्येक पात्र का चित्रण उसके दुर्गमों के बाधक गहानुभूतिपूर्ण करता है । मिश्रजी के रोप सभी सामाजिक नाटकों में चरित्र-चित्रण के लिए इसी पद्धति का अनुसरण किया गया है । गिरधर की हानी में गुराहीमास जैसा अपराधी पात्र जिनमें भोम ने कारण दो हत्याओं में योग दिया भी गहानुभूतिपूर्ण नहीं । वैधानिक प्रवृत्ति के साथ साथ चिन्तन-धारा का और अधिक बिरास हुआ । मानव-चरित्र की मूल्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण गहानुभूति की अपेक्षा तटस्थ दृष्टि से पिछार द्वारा किया जाना दायित्व-व्यक्तिगत प्रतीक हुआ । अतः गहानुभूति का स्थान विकार में ले लिया । नाटककार प्रत्येक पात्र के चरित्र को उसके स्वभावों और दुर्गमों को तटस्थ दृष्टि से वर्णित करने लगा । चरित्र चित्रण की इस अनुशासन प्रवृत्ति का प्रयोग नाटककार ने 'बाघी रात' में किया है । नाटक के दोनों प्रमुख

चरित्रों—मायावती और प्रकाशचन्द्र—के साथ हमें कोई सहानुभूति नहीं होती और न ही कोई घृणा होती है। हम उनके चरित्र के परिवर्तनों को केवल ठट्ठे से दृष्टि से विचार करते हैं। चरित्र-विमर्श की इस प्राबुधित्वपूर्ण प्रकृति को हिन्दी नाटक में उपस्थित करने का येम केम दूसरी नाटक की है।

चरित्र विमर्श में स्वगत के बहिष्कार के कारण उत्पन्न होने वाली सम्प्लुता के परिहार के लिए नाटककार ने 'राजस का मन्दिर' और 'घाबी रात' में एक नवीन रीति का प्रयोग किया है। ऐसे प्रसंगों में पात्र स्वयं अपने चरित्र के विषय में प्रतीक कथा के माध्यम से पापी बर्तन कह देता है। इस प्रकार कथा कहने में बहुत एक ओर मूलम अन्तर्प्रकृतियों का उद्घाटन होता है। वही चरित्र में स्वाभाविकता भी बनी रहती है। 'राजस का मन्दिर' में धरकरी एक देखा की कहानी के माध्यम से अपनी सारी समस्या को प्रकाशन्तर से स्पष्ट कर देती है। 'घाबी रात' में मायावती अपने प्रवास की पूर्णता की तथा धारमत्तता की बात राधा और रानी की कथा के माध्यम से कह देती है। इन कथाओं से कथानक के विकास में भी सहायता मिली है। नाटककार का यह नवीन प्रयोग दोनों ही नाटकों में सफल है।

स्वाभाविकता के विचार से 'घाबी रात' में नाटककार ने दो खंडों को एक साथ एक ही समय में दिखाया है। प्रथम खंड में मायावती और प्रकाशचन्द्र तथा प्रेम और राधाचरण के संवाद साम-साम चलते हैं। परन्तु इससे प्रसंग में सम्प्लुता घटने के कारण नाटककार को इस प्रयोग में सफल नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी नाटक में स्वगत की पद्धति का व्यापक रूप से बहिष्कार सर्वप्रथम इन्हीं के नाटकों में हुआ। यद्यपि 'प्रसाद' की ने नियतमात्र्य और सर्वमात्र्य प्रादि का प्रस्ताभाविकता के कारण बहिष्कार किया था तथापि स्वगत का प्रयोग उन के समग्र सभी नाटकों में मिलता है। वस्तुतः स्वगत प्रस्ताभाविक होते हुए भी चरित्र-विमर्श के लिए एक अधिष्ठान का उपकरण है। इसके बिना मन की मूलम अन्तर्प्रकृतियों का विवेचन असम्भव नहीं तो कठिन प्रचरण है। इन प्रस्ताभाविकता के बहिष्कार से साधारण नाटककार सफल नहीं हो सकता। केवल मिथ्या ही अपनी अग्रिम प्रतिभा के कारण स्वगत के प्रसार में असाधारण यत्नाओं एवं असाधारण चरित्रों के व्यापक अन्तर्गुह के विमर्श में सफल हुए हैं। मुरारीलाल के चरित्र का स्वगतविहीन व्यापक अन्तर्गुह उनकी कुशलता का परिचायक है।

नाटकों की सर्वप्रथम गद्य-शैली मिथ्या के योगदान का साक्ष्य सबसे

संयुक्त रूप है। जैसे तो इस काल तक गद्य-शैली में मिला-मिला शैलियों का परिष्कृत रूप प्रचलित हो चुका था परन्तु नाटक के क्षेत्र में इसी स्वाभाविक समीप और नाटकीय शैली का प्रयोग इससे पूर्व न हुआ था। प्रसाद के नाटकों में शैली का परिष्कृत रूप मिलता है परन्तु उसमें नाटकीयता के गुण की पूर्ति कई प्रसंगों में काव्यत्व से की गई है। मिश्रजी की गद्य-शैली की प्रमूल विशेषता है नाटकीयता। प्रायः वाक्य छोटे-छोटे हैं और विषय की गति के अनुसार परस्पर सम्बद्ध हैं। जहाँ वाक्य लम्बे भी हैं वहाँ भी उनमें मात्र के प्रवाह के समुच्चय स्थान-स्थान पर स्वाभाविक गति है, जिससे पात्रों का स्वयं स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रवाह में कहीं विचलितता नहीं। इसी में स्वाभाविक जीवन का गुण होने के कारण वाक्यों में व्यंग्य विशेष समुदा विप्रता प्रादि गुणों का सहज समावेश हुआ है। व्यंग्यशक्तियों के प्रयोग ने इसमें विशेष योग दिया है। 'सिमरु' की होली में धागे पृष्ठ के भी कई संवाद हैं परन्तु वही भी ऐसा प्रतीत नहीं होता कि पात्र बिचार प्रेषण के लिए बोल रहा है। कुछ तर्क के स्थानों पर भी नाटककार पाठक को ऊबने नहीं देता। एक सिद्धांतपरक वाक्य के विन्यास के प्रवाह को देखिए—

मनोरमा—“कित तरह भी। यही तो समाज का भावना है। सभी और पुरुष का सम्मिलित जीवन नून कुछ लोगों का न तो कोई शक्ति न समूह और न तत्ताक। किसी भी परिस्थिति में समझौता और सार्वजनिक। इस प्रकार समाज की स्थिति दुःख है। सम्भव है इसमें भी बुराई हो लेकिन जीवन निरन्तर जाता रहा है? बिबाह-विवाह और तत्ताक को बुराईयों से से एक को पसन्द करना पड़ेगा। नहीं तो लोगों बुराईयों तो समाज को निरस्त करेगी।”

इस प्रकार तर्क-प्रधान जैसे जीवन स्थलों पर भी नाटककार ने सूत्र को धमिलाने करने की शैली के साथ-साथ नाटकीयता का अपूर्व समावेश किया है। साधारण स्थलों पर तो इसका और भी परिष्कृत रूप दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार निष्कर्ष-रूप में कहा जा सकता है कि मिश्रजी के सामाजिक नाटकों में हिन्दी भाषा-साहित्य को विषय एवं शैली दोनों दृष्टियों से समृद्ध किया है। इस योगदान का महत्त्व और भी बढ़ जाता है जब हम उनकी पूर्वजानीय मर्यादावादी चारा की प्रतिक्रिया देना का अवलोकन करते हैं। इन्होंने कई परम्पराओं को जगमगाते और कई परम्पराओं को विकसित करके हिन्दी नाटक की मर्यादावादी चारा को सुम-चिन्तन के समानान्तर खड़ा करने में अपूर्व सहयोग दिया है।

उपसंहार

हिन्दी नाटक की प्रगति और मिश्रजी  
मिश्रजी ने सामाजिक नाटकों द्वारा न केवल हिन्दी साहित्य को समृद्ध ही  
किया प्रस्तुत कई परम्पराओं का निर्माण कर परवर्ती नाटकों के लिए मार्ग भी  
प्रस्तुत किया। परन्तु हिन्दी नाटक के विकास की मात्रा वृद्धि के कारण और उस  
में भी सामाजिक नाटकों की ओर हिन्दी नाटककार की पराकृतता के कारण  
परम्परा की दृष्टि से इनके योगदान का उचित मूल्यांकन नहीं किया जा  
सकता। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि इन नाटकों के प्रभाव के कारण परवर्ती  
सभी आदर्शों के नाटकों में 'प्रभाव' और ही० एम० राय की भावुकता का  
निकट और प्रतिरोधना की अपेक्षा यथार्थता और समाजज्ञान को अधिक प्रथम  
मिला। हिन्दी नाटक-कारों में विद्या-परिचलन का यह क्षेत्र मिश्रजी के सामाजिक  
नाटकों को सहज ही दिया जा सकता है।

हिन्दी नाटक की यथार्थवादी धारा में मिश्रजी का स्थान सर्वोच्च है।  
क्योंकि इस धारा के अधिकांश नाटक स्पष्ट समस्याओं तक ही सीमित हैं जो  
कुछ इने-विन नाटक सूत्र समस्याओं को लेकर बने हैं जब पृथ्वीनाथ धर्मा का  
'दुविधा' उपेन्द्रनाथ धरक का 'स्वर्ग' की मन्त्रक और 'छटा बेटा' उदयचक्र मठ  
का 'नया समाज' आदि में भी चिन्मन की दृष्टि से अपसाहस प्रौढ़ नहीं बड़े जा  
सकत।

बैने तो यथार्थवादी और आदर्शवादी धारा के नाटककारों की परम्परा  
तुलना युक्तियुक्त नहीं क्योंकि दोनों धाराओं की प्रकृति मूलतः भिन्न है परन्तु  
यदि हम प्रकार का प्राप्ति किया भी जाय तो दोनों धाराओं के आधारभूत भेदों  
को दृष्टि में रखकर ही किया जाना चाहिए। आदर्शवादी धारा में मिश्रजी की  
तुलना केवल प्रसाद के नाथ ही की जा सकती है। तुलना में प्रथम निरूप  
वृत्तियों के सामाजिक मूल्य का होता है। इस दृष्टि में दोनों की रचनाओं को एक  
ही दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। एक दृष्टि की उन्मुखता में भी प्रस्तुत कर  
समाज के गुणों का विनाशक लिए दिया देना है दूसरा वर्तमान की दृष्टियों की  
छान-बीन कर उनका विकराल रूप की सीमांसा कर उन्हें दूर करने की प्रयास  
देता है। एक की पद्धति विरोधात्मक है दूसरे की विरोधात्मक एक दूसरे का विनाश  
चाहता है दूसरा दृष्टि से तुलना मनीषी नहीं। यदि सामाजिक मूल्य को धीरे-धीरे का  
है यद्यपि इस दृष्टि से तुलना मनीषी नहीं। यदि सामाजिक मूल्य को धीरे-धीरे का  
आधार लोकप्रियता को माना जाय तो निस्सन्देह प्रसार की ही वृत्तियों को इस  
दृष्टि से श्रेष्ठ कहा जायगा। परन्तु यह भी स्पष्ट कर देना सामाजिक नहीं  
कि नाटककार प्रसार की लोकप्रियता में कई अर्थों तक बहिःप्रसाद का भी

योग है।

हमारा मित्र मनोविज्ञान का है अर्थात् मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीवन की पकड़ किसकी पकड़ी है। हम मित्र में भी कोई एकपक्षीय निर्णय नहीं दिया जा सकता क्योंकि दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार रखते हैं। एक मानव एकदृष्टि देखनेवाला जैसे महान् धार्मिक चरित्रों को मानवीय रूप देने में सफल है तो दूसरा मुरारोन्मात जैसे भ्रष्ट चरित्र के मानव-रूप को विस्मृत नहीं होने देता। तीसरा मित्र साक्षीय है। कला की दृष्टि से मित्रजी का कथानक-संयोजन अधिक सुसम्बद्ध पूर्ण एवं सुनिश्चित है। चरित्र चित्रण में भी मानव-मन की सूक्ष्म अन्तःप्रवृत्तियों का उद्घाटन हुआ है यत् मित्रजी को प्रसाद जी की तुलना में किसी भी प्रतिपक्षी के कलाकार नहीं कहा जा सकता। यत् सभी दृष्टियों से किन्तु करते हुए यही कहना समीचीन है कि दोनों अपने अपने क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष-रूप में केवल इतना ही कह सकत हैं कि धार्मिकवादी धारा में जो स्थान प्रसाद को प्राप्त है वही स्थान यथार्थवादी धारा में मित्रजी को प्राप्त है।

## सदस्य ग्रन्थ-सूची

हिन्दी

- १ अमिनब नाट्यशास्त्र
- २ भरतमुद्रा का काव्यशास्त्र
- ३ भाषात्मिक साहित्य
- ४ भाषात्मिक हिन्दी नाटक
- ५ भाषात्मिक हिन्दी साहित्य का विकास
- ६ काव्य और कला तथा अन्य विषय
- ७ काव्य के रूप
- ८ नाट्य विमर्श
- ९ मैं इनसे मिला (भाग १)
- १० रूपक रहस्य
- ११ हिन्दी नाटक
- १२ हिन्दी नाटक साहित्य का पालोचनात्मक अध्ययन

- १३ हिन्दी साहित्य
- १४ हिन्दी साहित्य का इतिहास

अंग्रेजी

- 15 An Introduction to the study of literature

Hudson  
Williams

- 16 Drama From Ibsen to Eliot
- 17 Encyclopaedia Americana
- 18 Plays Pleasant & Unpleasant
- 19 Poetry and Drama
- 20 Quintessence of Ibsenism
- 21 The Art of Drama
- 22 The Aspects of Modern Drama

Bernard Shaw  
T S Eliot  
Bernard Shaw  
Ronald Peacock  
Chandler

पं० सीताराम बतुर्वेदी

डा० नगेन्द्र

नन्दबुसारे बाबूपयी

डा० मदेन्द्र

डा० श्रीकृष्णलाल

जयसंकर प्रसाद

गुलाबराय

गुलाबराय

परसिंह धर्मा 'कमलेश'

राममनोहर दास

डा० बल्लभसिंह

डा० वेदपास प्रमोद विमल

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामचन्द्र शुक्ल



- 23 The European Theories of Drama  
 24 The Making of Literature  
 25 The Twentieth Century Drama  
 26 Wordsworth Poetry & Prose  
 27 World Drama

B. H. Clark  
 Scott James  
 Hudson (L)  
 Oxford  
 Allardyce Nicol

संस्कृत

- २८ काव्य प्रकाश  
 २९. काव्यालंकार  
 ३०. ब्रह्मेन्द्रविरचितम्  
 ३१. नाट्यशास्त्र

सम्मट  
 भामह  
 कुल्लुक  
 भरत मुनि

